ममता कालिया की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन

MAMTA KALIYA KI KAHANIYON KA VISHLESHNATMAK ADHYAYAN

Thesis Submitted to

COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY

for the award of the Degree of

DOCTOR OF PHILOSOPHY

In

HINDI

Under The Faculty Of Humanities

By

NEETHU GEORGE

नीतु जॉर्ज

Prof. Dr. K. Ajitha
Head of the Department

Prof. Dr. R. Sasidharan
Supervising Guide

Department of Hindi
COCHIN UNIVERSITY OF SCIENCE AND TECHNOLOGY
COCHIN – 682022

JUNE 2019

CERTIFICATE

This is to certify that the thesis entitled **"MAMTA KALIYA KI KAHANIYON KA VISHLESHNATMAK ADHYAYAN"** *is a bonafide record of research work carried out by* ***Ms. Neethu George*** *under my supervision for Ph.D (Doctor of Philosophy) Degree and no part of this has hitherto been submitted for a degree in any university. All the relevant corrections and modifications suggested by the audience during the pre-synopsis seminar and recommended by the Doctoral Committee of the candidate has been incorporated in the thesis.*

Prof. Dr. R. Sasidharan
Supervising Teacher
Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Cochin – 682 022

Cochin

DECLARATION

I hereby declare that the thesis entitled **"MAMTA KALIYA KI KAHANIYON KA VISHLESHNATMAK ADHYAYAN"** *is the outcome of the original work done by me under the guidance of* ***Dr. R. Sasidharan****, Professor, Dept. of Hindi, Cochin University of Science and Technology and no part of this thesis has been included in any other thesis submitted previously for the award of any degree in any other university.*

Neethu George
Research Scholar
Department of Hindi
Cochin University of Science & Technology
Cochin – 682 022

Cochin

प्राक्कथन

वर्तमान समय अत्यंत अमानवीय होता जा रहा है। व्यक्ति या समाज में करुणा, सहानुभूति और मानवता की भावना कम होती जा रही है। धन कमाना और लाभ उठाना मनुष्य का एकमात्र लक्ष्य बन गया है। जीवन की इस रफ्तार में मनुष्य, मनुष्य नहीं रह गया है। वह यांत्रिक बन गया है। अर्थ केन्द्रित धर्म, राजनीति और उनके उपकरणों ने मानव जीवन को और भी संघर्षपूर्ण बना दिया है। ऐसे मानव जीवन का और समाज की असली दस्तावेज़ हैं ममता कालिया की कहानियाँ। 'छुटकारा', 'सीट नम्बर छह', 'एक अदद औरत', 'बोलनेवाली औरत', 'मुखौटा', 'निर्मोही', 'उसका यौवन', 'जाँच अभी जारी है', 'प्रतिदिन', 'थोडा सा प्रगतिशील', 'खुशक़िस्मत', 'काके दी हट्‌टी', 'थिएटर रोड के कौवे' आदि उनके प्रमुख कहानी-संग्रह है। ममता कालिया ने अपने जीवन, समय और समाज से ही साहित्य के लिए प्रेरणा हासिल की है। भूमण्डलीकरण की खतरनाक स्थितियों से उपजे उपभोक्तावाद, बाज़ारवाद जैसे षड्‌यंत्रों से उत्पन्न अर्थ केन्द्रित व्यवस्था और उससे जूझते हुए आम आदमी के जीवन संघर्ष के प्रति ममता कालिया सजग हैं। एक महिला रचनाकार होने के नाते उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री को प्रमुख स्थान दिया है। स्त्री को पुरुष के बराबर स्थान और अधिकार प्राप्त करने के लिए और स्त्री की अस्मिता को सुरक्षित रखने के लिए उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा आवाज़ उठाई। साथ ही साथ समाज के हर पहलुओं को अपनी रचनाओं का विषय बनाया है। मैंने अपने शोधकार्य में ममता कालिया की कहानियों का विश्लेषण कर वर्तमान परिस्थितियों के कारणों को ढूँढने का प्रयास किया गया है। इस शोध विषय का

शीर्षक है **'ममता कालिया की कहानियों का विश्लेषणात्मक अध्ययन'**। अध्ययन की समग्रता को ध्यान में रखते हुए इसे पाँच अध्यायों में विभक्त किया गया है।

पहला अध्याय है - **'समकालीन हिंदी कहानी और ममता कालिया'**। इस अध्याय में हिंदी कहानी का प्रारंभ, विभिन्न कहानी आन्दोलन जैसे नई कहानी, अकहानी, सचेतन कहानी, सक्रिय कहानी, समकालीन कहानी पर संकेत किया गया है। इसके बाद समकालीनता, आधुनिकता, समकालीन साहित्य, उसकी प्रमुख प्रवृत्तियाँ और समकालीन दौर के प्रमुख कहानीकारों पर विचार किया गया है। इसके बाद ममता कालिया के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

दूसरा अध्याय - **'ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ'**। इसके तहत भारतीय समाज और संस्कृति पर नवउपनिवेशिक शक्तियों का प्रभाव विशेषकर परिवार, वृद्धलोग, बाल जीवन, अध्यापक, चिकित्सक आदि पर जिस तरह हुआ है इस पर ममता कालिया की कहानियों के द्वारा विचार किया गया है। आगे नवउपनिवेश के प्रमुख हथियार भूमण्डलीकरण और उपभोक्तावाद से उत्पन्न बाज़ार की संस्कृति, दिखाने की प्रवृत्ति, विज्ञापन की संस्कृति आदि पर चर्चा करके हमारी भाषा पर नवऔपनिवेशिक शक्तियों का जो हमला है उस पर भी विचार किया गया है। आगे शहर और गाँव के बीच का द्वन्द्व, प्रकृति, धार्मिक शोषण, जातिभेद आदि पर ममता जी ने जो खुला चित्रण किया है, उसकी चर्चा की गयी है।

तीसरा अध्याय है **'ममता कालिया की कहानियों में आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ'**। इसमें भारत की नई आर्थिक नीति, भूमण्डलीकरण के प्रमुख

घटक- उदारीकरण, निजीकरण, नवउदारवाद की चर्चा करते हुए भूमण्डलीकरण के समर्थक संगठन और नीतियों का संकेत किया गया है। इसके बाद ममता कालिया की कहानियाँ का विश्लेषण करते हुए बेरोज़गारी, आर्थिक विपन्नता, आर्थिक लालच से अंधे बने मानव की ओर संकेत किया गया है। आगे राजनीति पर विचार करते हुए वर्तमानकालीन राजनीतिक दौर, भ्रष्टाचार, राजनीतिज्ञों का खोखलापन, राजनीति और धर्म का गठजोड आदि पर चर्चा करने के साथ पुलीसवालों और समाचार पत्रों की मूल्यहीनता पर भी विचार किया गया है।

चौथा अध्याय है **'ममता कालिया की कहानियों में स्त्री'**। इसमें भारतीय समाज में स्त्री, स्त्री अस्मिता, परिवार में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलू, स्त्री की स्वतंत्रता की चाह, यौन संबन्धों में स्वतंत्रता, दहेज प्रथा का विरोध, कानूनी सुरक्षा आदि पर ममता कालिया की कहानियों के द्वारा विचार किया गया है। साथ ही साथ नौकरी के क्षेत्र में और धर्म में स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों, शोषणों और उसकी प्रतिक्रियाओं का खुला चित्रण किया गया है।

पाँचवाँ अध्याय है **'ममता कालिया की कहानियों की शिल्पगत विशेषताएँ'**। इसमें शिल्प का अर्थ और परिभाषा देते हुए ममता कालिया की कहानियों का रचना-शिल्प पर विचार किया गया है। इसके लिए उनकी कहानियों की कथावस्तु, शैली, भाषा, प्रतीक आदि पर चर्चा की गयी है।

इन अध्ययन से निकले निष्कर्षों को इस शोध-प्रबन्ध के अंत में **'उपसंहार'** में प्रस्तुत किया गया है। इसमें हिंदी साहित्य के क्षेत्र में ममताजी का स्थान, उनकी कहानियों की सफलता और वर्तमान परिस्थितियों के प्रति ममता कालिया की सजगता आदि पर संकेत किया गया है।

प्रस्तुत शोध प्रबंध हिन्दी विभाग के आदरणीय आचार्य डॉ. आर. शशिधरन के सतर्क पथ प्रदर्शन तथा निर्देशन से संपन्न हुआ है। पहले उनके प्रति मैं हृदय से आभार प्रकट करती हूँ।

हिन्दी विभाग की आचार्या एवं अध्यक्षा तथा प्रभारी कुलसचिव डॉ. के. अजिता जी ने जो मेरे विषय विशेषज्ञ भी हैं, वे मेरी बडी मदद की है। उनके प्रोत्साहन सहयोग और समर्थन के लिए मैं उनके प्रति आजीवन कृतज्ञ रहूँगी।

हिन्दी विभाग के अन्य गुरुजनों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने मेरी सहायता की। प्रस्तुत शोध तैयार करने के लिए आवश्यक सामग्री जुटाने में अपने विभाग पुस्तकालय और कोच्चिन विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय से बहुत सी सहायताएँ मिली। इनके अधिकारियों के प्रति भी मैं आभारी हूँ।

अंत में अपने माता-पिता और दो बहनों को मैं हृदय से कृतज्ञा ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मुझे प्रेरणा देकर इस शोध प्रबन्ध की पूर्ती में सुविधाएँ दी।

सविनय

नीतु जॉर्ज

हिन्दी विभाग
कोच्चिन विज्ञान व प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय
कोच्चिन-682022

तारीख :

अनुक्रमणिका

पृष्ठ संख्या

पहला अध्याय 1-72

समकालीन हिंदी कहानी और ममता कालिया

1.0 प्रस्तावना

1.1 हिंदी कहानी का प्रारंभ

1.2 स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी

1.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी : विभिन्न कहानी आन्दोलन

1.3.1 नई कहानी

1.3.2 अकहानी

1.3.3 सचेतन कहानी

1.3.4 सहज कहानी

1.3.5 समांतर कहानी

1.3.6 जनवादी कहानी

1.3.7 सक्रिय कहानी

1.4 समकालीन कहानी

1.4.1 समकालीनता

1.4.2 आधुनिकता

1.4.3 समकालीन परिवेश

1.4.3.1 सामाजिक परिवेश

1.4.3.2 आर्थिक परिवेश

1.4.3.3 राजनीतिक परिवेश

1.4.3.4 सांस्कृतिक परिवेश

1.4.4 समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

1.4.4.1 नवउपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ
1.4.4.2 सांप्रदायिकता का विरोध
1.4.4.3 स्त्री विमर्श
1.4.4.4 दलित विमर्श
1.4.4.5 आदिवासी विमर्श
1.4.4.6 पारिस्थितिक विमर्श
1.4.4.7 लोकचेतना
1.4.4.8 वृद्ध विमर्श
1.4.4.9 बाल विमर्श
1.5 समकालीन कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर
1.5.1 उदय प्रकाश
1.5.2 पंकज बिष्ट
1.5.3 काशीनाथ सिंह
1.5.4 दूधनाथ सिंह
1.5.5 गिरिराज किशोर
1.5.6 संजीव
1.5.7 मधुकर सिंह
1.5.8 विजयमोहन सिंह
1.5.9 नासिरा शर्मा
1.5.10 चित्रा मुद्गल
1.5.11 मृदुला गर्ग
1.5.12 मृणाल पाण्डे
1.5.13 चन्द्रकांता
1.5.14 मैत्रेयी पुष्पा
1.5.15 ममता कालिया
1.5.15.1 जीवन परिचय

1.5.15.2 रचना संसार
1.5.15.2.1 कविता
1.5.15.2.2 कहानी
1.5.15.2.3 उपन्यास
1.5.15.2.4 नाटक
1.5.15.2.5 बाल साहित्य
1.5.15.2.6 आलोचना
1.5.15.2.7 संस्मरण
1.5.15.2.8 सम्मान एवं पुरस्कार
1.6 निष्कर्ष

दूसरा अध्याय 73-176
ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ
2.0 प्रस्तावना
2.1 ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ
2.1.1 समाज
2.1.2 संस्कृति
2.1.3 समाज और संस्कृति का अंतर्संबन्ध
2.1.4 साहित्य, समाज और संस्कृति
2.2 ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक संदर्भ
2.2.1 परिवार
2.2.1.1 पारिवारिक व्यवस्था का महत्व
2.2.1.2 विघटित पारिवारिक व्यवस्था
2.2.1.2.1 अर्थ के अनुसार
2.2.1.2.2 बदनामी के अनुसार
2.2.1.2.3 आत्मीयता के अभाव के कारण
2.2.1.2.4 अनैतिक संबन्ध
2.2.1.3 आस्थाहीन पीढ़ी

2.2.2 वृद्ध जीवन का कटु यथार्थ

2.2.2.1 उपेक्षा और तिरस्कार

2.2.2.2 जीवन साथी की विदाई

2.2.2.3 पीढ़ियों का अंतराल

2.2.2.4 आर्थिक तंगी

2.2.2.5 सेवा निवृत्ति

2.2.3 बाल जीवन

2.3 ममता कालिया की कहानियाँ : सांस्कृतिक संदर्भ

2.3.1 नवउपनिवेश का समय

2.3.2 बाज़ार की संस्कृति

2.3.3 विज्ञापनों की दुनिया

2.3.4 मॉडलिंग की दुनिया

2.3.5 आडंबरप्रियता और दिखावे की प्रवृत्ति

2.3.6 अंग्रेज़ी भाषा का असर

2.3.7 नगर जीवन

2.3.7.1 नगर जीवन के प्रति आकर्षण

2.3.7.2 व्यस्तता और ऊब

2.3.7.3 नगर और गाँव के बीच का द्वन्द्व

2.3.8 प्रकृति और सहजीवि प्रेम

2.3.9 धार्मिक शोषण

2.3.9.1 सांप्रदायिकता

2.3.9.2 जातिभेद और दलित

2.3.10 दायित्वहीनता

2.3.10.1 साहित्य के क्षेत्र में

2.3.10.2 चिकिल्सा के क्षेत्र में

2.3.10.3 शिक्षा के क्षेत्र में

2.4 निष्कर्ष

तीसरा अध्याय 177-272

ममता कालिया की कहानियाँ : आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ

3.0 प्रस्तावना

3.1 भारत की नई आर्थिक स्थिति

3.2 भूमण्डलीकरण

3.2.1 भूमण्डलीकरण के प्रमुख घटक

3.2.1.1 उदारीकरण

3.2.1.2 निजीकरण

3.2.1.3 नवउदारवाद

3.2.2 भूमण्डलीकरण के समर्थक संगठन और नीतियाँ

3.2.2.1 अंतराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्वबैंक

3.2.2.2 गैट

3.2.2.3 विश्व व्यापार संगठन

3.3 भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था से त्रस्त भारतीय समाज : ममता कालिया की कहानियों में

3.3.1 बाज़ारवाद

3.3.2 बेरोज़गारी से त्रस्त युवा पीढ़ी

3.3.3 आर्थिक विपन्नता

3.3.3.1 आर्थिक संकट से ग्रस्त परिवार

3.3.3.2 आर्थिक अभाव से त्रस्त जीवन की सांध्या वेला

3.3.4 कम वेतन

3.3.5 डॉक्टरों की आर्थिक लालच

3.3.6 कलाकारों और साहित्यकारों की आर्थिक विषमता

3.4 राजनीति

3.4.1 स्वतंत्रता के बाद भारत के राजनीतिक परिवेश

3.4.2 वर्तमानकालीन राजनीतिक दौर

3.4.3 भ्रष्टाचार

3.4.4 ममता कालिया की कहानियों में राजनीति
3.4.4.1 राजनीतिज्ञों का आर्थिक लालच
3.4.4.2 राजनीतिज्ञों का खोखलापन
3.4.4.3 प्रतिष्ठा के प्रति लालच
3.4.4.4 सत्ता का दुरुपयोग
3.4.4.5 राजनीति और धर्म के साथ गठजोड
3.4.4.6 राजनीति और शैक्षिक क्षेत्र
3.4.5 भ्रष्टाचार सरकारी कार्यालयों में
3.4.6 पुलीसवालों की अमानवीयता
3.4.7 समाचार पत्रों की मूल्यहीनता
3.5 निष्कर्ष

चौथा अध्याय 273-357

ममता कालिया की कहानियों में स्त्री

4.0 प्रस्तावना
4.1 भारतीय समाज में स्त्री
4.2 स्त्री अस्मिता
4.3 साहित्य में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति
4.4 ममता कालिया की कहानियों में अभिव्यक्त स्त्री अस्मिता
4.4.1 परिवार में स्त्री
4.4.1.1 पति-पत्नी संबन्ध में स्त्री
4.1.1.1.1 अस्तित्व का संघर्ष
4.1.1.1.2 मानसिक अलगाव
4.1.1.1.3 पत्नी शरीर मात्र नहीं है
4.4.1.1.4 पति की शंकालू दृष्टि
4.4.1.2 ससुराल में अस्तित्व का संघर्ष
4.4.1.3 स्त्री का द्वन्द्व : पति और भाई के बीच
4.4.1.4 विवाह प्रथा का निषेध

4.4.2 समाज में स्त्री
4.4.2.1 स्वतंत्रता की चाह
4.4.2.2 स्त्री पर अत्याचार
4.4.2.3 यौन संबन्धों में स्वतंत्रता
4.4.2.4 शिक्षा की शक्ति
4.4.2.5 दहेज प्रथा
4.4.2.6 मीडिया और विज्ञापन
4.4.2.7 कानून की सुरक्षा
4.4.3 धर्म और स्त्री
4.4.3.1 अंधविश्वास
4.4.3.2 व्रत
4.4.3.3 शारीरिक शोषण
4.4.4 नौकरी और स्त्री
4.4.4.1 शारीरिक शोषण
4.4.4.2 आर्थिक विषमता
4.4.4.3 दोहरी भूमिका
4.4.4.4 समाज का नज़रिया
4.4.4.5 घरवालों का नज़रिया
4.4.4.6 नौकरीपेशा नारी और सहकर्मी लोग
4.4.4.7 अकेलापन
4.5 निष्कर्ष

पाँचवाँ अध्याय 358-398
ममता कालिया की कहानियों की शिल्पगत विशेषताएँ
5.0 प्रस्तावना
5.1 शिल्प
5.2 ममता कालिया की कहानियों में शिल्प
5.2.1 कथ्य

5.2.2 भाषा
5.2.2.1 प्रतिरोधी भाषा
5.2.2.2 व्यंग्यात्मक भाषा
5.2.2.3 अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग
5.2.2.4 फारसी, उर्दू, अरबी शब्दों का प्रयोग
5.2.2.5 चिकिल्सा संबन्धी शब्द
5.2.2.6 मुहावरों का प्रयोग
5.2.2.7 प्रतीक
5.2.3 शैली
5.2.3.1 वर्णनात्मक शैली
5.2.3.2 आत्मकथात्मक शैली
5.2.3.3 पूर्वाभास शैली
5.2.3.4 संवाद शैली
5.2.3.5 उद्धरण शैली
5.2.3.6 मनोविश्लेषणात्मक शैली

5.3 निष्कर्ष

उपसंहार 399-404

संदर्भ ग्रन्थसूची 405-419

परिशिष्ट 420-421

पहला अध्याय

समकालीन हिंदी कहानी और ममता कालिया

पहला अध्याय
समकालीन हिंदी कहानी और ममता कालिया

1.0 प्रस्तावना

ममता कालिया समकालीन हिंदी साहित्य की सशक्त हस्ताक्षर हैं। कवि, कहानीकार, उपन्यासकार, बाल साहित्यकार, नाटककार, आलोचक, संस्मरणकार के रूप में उनकी पहचान तो है, लेकिन कहानीकार के रूप में उनकी पहचान खासी है। उन्होंने अपने जीवन, समय और समाज से ही साहित्य के लिए प्रेरणा हासिल की है। यथार्थ ही उनके साहित्य की सबसे बडी विशेषता है। उनका समग्र साहित्य यह साबित करता है कि वे एक सृजनधर्मी साहित्यकार हैं। महिला रचनाकार होने के नाते उन्होंने अपने साहित्य में स्त्री को प्रमुख स्थान दिया है। उन्होंने स्त्रियों को पुरुष के बराबर स्थान और अधिकार प्राप्त करने के लिए अपने साहित्य के द्वारा आवाज़ उठायी। उनके कथा साहित्य के केन्द्र में स्त्री है। फिर भी समाज के हर पहलुओं को भी उन्होंने अपनी रचनाओं में स्थान दिया है। सुगठित कथानक, कम पात्र, सुन्दर संवाद योजना, सार्थक शीर्षक आदि उनकी कहानियों की उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। समकालीन हिंदी साहित्य में इस सृजनधर्मी साहित्यकार का क्या स्थान है, आगे इस पर विचार करने की कोशिश है।

1.1 हिंदी कहानी का प्रारंभ

साहित्य की सर्वाधिक, सशक्त, समृद्ध एवं लोकप्रिय विधा है कहानी। कहानी को अंग्रेज़ी में 'शोर्ट स्टोरी' और बंगला में 'गल्प' शब्द का प्रयोग किया जाता है। कहानी का सामान्य अर्थ है 'कहना' अर्थात् किसी घटना का रोचक ढ़ंग से वर्णन। कहने और सुनने की परंपरा अति प्राचीन है। लेकिन आज की कहानी इस परंपरा से भिन्न है। अब कहानी एक साहित्यिक विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। भारतीय कहानी की परंपरा अत्यन्त संपन्न है। यह इतिहास, पुराण, रामायण, महाभारत आदि कथाओं का अक्ष्य भण्डार हैं। इसके साथ ही साथ पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों से भारत के ही नहीं, विश्व के भी कहानी साहित्य समृद्ध हुआ है। ये कहानियाँ विश्व भर की भाषाओं में अनूदित भी हुई हैं। आज कहानी का जो रूप है, उसके निर्माण में इन कहानियों ने परोक्ष रूप से सहायता दी है। इसलिए ही कहा जा सकता है कि आधुनिक हिंदी कहानी की जडें तो पंचतंत्र, हितोपदेश और जातक कथाओं में है। आधुनिक युग में खड़ीबोली हिंदी गद्य का विकास हुआ है। कहानी ने इसमें महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। स्वतंत्रता के पूर्व से ही कहानी हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण विधा बन गयी है।

1.2 स्वतंत्रतापूर्व की हिंदी कहानी

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में आधुनिक हिंदी कहानी का आविर्भाव हुआ है। लेकिन उस समय की कहानियों में संस्कृत कहानियों का अनुवाद और रूपांतरण अधिक मात्रा में दिखाई पड़ता है। लल्लूलाल के 'बैताल पचीसी' और 'प्रेमसागर',

सदल मिश्र की 'नासिकेतोपाख्यान', सदासुखलाल की 'सुखसागर' आदि इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इस दौरान मुंशी इंशा अल्ला खाँ की 'रानी केतकी की कहानी' प्रकाशित हुई है। कुछ आलोचक इस रचना को हिंदी की पहली कहानी मानते हैं। लेकिन इन कहानियों में किसी रचना को मौलिक कहानी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि इनके कथासूत्र संस्कृत से जुडे हैं और इनमें आधुनिक कहानी के मूल तत्वों की कमी भी है। हिंदी कहानी के अविर्भाव में कविवचनसुधा, हरिचन्द्र मैगज़ीन, हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, छत्तीसगढ़ मित्र आदि पत्रिकाओं ने विशेष योगदान दिया है। आधुनिक हिंदी कहानी के विकास में सन् 1900 में 'सरस्वती' पत्रिका का प्रकाशन एक महत्वपूर्ण घटना है। कुछ आलोचक 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित किशोरीलाल गोस्वामी की 'इंदुमती' को हिंदी की पहली कहानी के रूप में माना जाता है। लेकिन इसमें शेक्सपियर की 'टेम्पेस्ट' का प्रभाव सिद्ध हुआ है। माधवराय सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी', लाला भगवानदीन की 'प्लेग की चुडैल', रामचंद्र शुक्ल की 'ग्यारह वर्ष का समय', बंग महिला की 'दुलाईवाली', गिरिजादत्त वाजपेयी की 'पंडित और पंडितानी', चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की 'उसने कहा था', वृन्दावनलाल वर्मा की 'राखीबन्द भाई' आदि इस समय की प्रमुख कहानियाँ हैं। लेकिन इसमें पहली मौलिक कहानी किस है, इसके बारे में विद्वान गण में एकमत नहीं है। लेकिन यह कह सकता है कि हिंदी कहानी लेखन की मौलिक परंपरा का सूत्रपात इन सभी कहानियों के ज़रिए हुआ है। 'इंदु' पत्रिका के प्रकाशन हिंदी कहानी के विकास पथ का महत्वपूर्ण मोड था। जयशंकर प्रसाद अपनी पहली कहानी 'ग्राम' के साथ कहानी जगत् में प्रवेश किया। प्रसाद के साथ प्रेमचंद और गुलेरी भी हिंदी कहानी के आधारभूत जडों को और भी मज़बूत कर दिया है।

हिंदी कहानी के क्षेत्र में प्रेमचंद का पदार्पण एक महत्वपूर्ण घटना है। उन्होंने हिंदी कहानी को मानव जीवन से जोड़ दिया है। "प्रेमचंद का आना हिंदी कहानी के हलचलों भरे इतिहास में शायद सबसे महत्वपूर्ण घटना है - एक तरह की कथा-क्रांति जिसे कह सकते हैं। मानो प्रेमचंद के आने के साथ ही हिंदी कहानी की सारी बिखरी हुई शक्तियाँ और संभावनाएँ एकाकार होकर अपना एक दीप्त शिखर तलाशने के लिए बेचैन हो उठीं।"[1] सन् 1916 में प्रेमचंद जी का 'पंच परमेश्वर' प्रकाशित हुई। इस कहानी के प्रकाशन से हिंदी कहानी को एक नवीन दिशा और सुदृढ़ आधार मिला। तब से लेकर हिंदी कहानी में भारतीय जन जीवन के विराट फलक देखने को मिलते हैं। समाज के उच्चवर्ग से लेकर निम्नवर्ग तक अर्थात् कृषक-ज़मींदार, कर्जदार-महाजन, धनी-निर्धन, ब्राह्मण-शूद्र तथा शासन वर्ग के कर्मचारी जैसे सभी लोगों के चित्र उनकी कहानियों में अंकित हुए हैं। कृषक और श्रमिक वर्ग को वाणी देने का महत्वपूर्ण कार्य प्रेमचंद ने किया है। यथार्थ के धरातल से उभर होने के कारण उनकी कहानियों की भाषा सरल, सहज, आकर्षक और प्रवाहपूर्ण है। 'बलिदान', 'आत्माराम', 'बूढ़ी काकी', 'विचित्र होली', 'हार की जीत', 'शतरंज के खिलाडी', 'पूस की रात', 'होली का उपहार', 'ठाकुर का कुआँ', 'ईदगाह', 'बडे घर की बेटी', 'मुक्तिमार्ग', 'कफ़न' आदि उनकी प्रमुख कहानियाँ हैं। सन् 1916 से लेकर सन् 1936 तक की सामाजिक, राजनीतिक घटनाओं और उस समय के परिवेश एवं परिवर्तनों का अंकन प्रेमचंद से बहत्तर ढ़ंग से कोई दूसरा नहीं किया है।

---

1. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - बीसवीं सदी का हिंदी साहित्य - पृ. 103

स्वतंत्रतापूर्व के दूसरे प्रमुख कहानीकार हैं जयशंकर प्रसाद। सन् 1910 में प्रकाशित 'ग्राम' नामक कहानी के माध्यम से प्रसादजी ने हिंदी कहानी के क्षेत्र में पदार्पण किया है। उनके व्यक्तित्व पर भारतीय संस्कृति और बौद्ध दर्शन का प्रभाव अधिक मात्रा में था। इसलिए ही उनकी रचनाओं में बौद्ध दर्शन की करुणा, त्याग, बलिदान और भारतीय संस्कृति का आदर्श एवं उदारता भी विद्यमान है। 'छाया', 'प्रतिध्वनि', 'आँधी', 'आकाशदीप', 'इंद्रजाल', 'पुरस्कार', 'प्रतिमा', 'प्रलय' आदि कहानियाँ उनकी भावात्मकता, इतिवृत्तात्मकता, कल्पनाशीलता, चिंतनशीलता का प्रमाण है। प्रसाद की कहानियों में प्रेमचंद की रचनाओं के समान समाज के प्रति गहरा दिलचस्पी नहीं है। प्रेमचंद और प्रसाद के कहानियों के भिन्नता व्यक्त करते हुए नगेन्द्र जी ने इस प्रकार लिखा है "प्रेमचंद जीवन की वास्तविक घटनाओं और समस्याओं को लेकर आदर्श की प्रतिष्ठा कर रहे थे, जबकि प्रसाद मनुष्य के भीतरी भाव-द्वन्द्व को व्यक्त करने में लीन थे। प्रेमचंद मुख्यतः वर्तमान के दुःख-दर्द, हार-जीत और न्याय-अन्याय की कहानी कह रहे थे, जबकि प्रसाद अतीत में कल्पना के सहारे रम रहे थे। ....व्यक्ति को केन्द्र में रखकर लिखी जानेवाली कहानियों का उद्‌भव प्रसाद से और समाज के व्यापक हितों को दृष्टि में रखकर लिखी जानेवाली कहानियों का उद्‌भवस्रोत प्रेमचंद से स्वीकार किया जाना चाहिए।"[1] लेकिन यह कह नहीं सकता है कि प्रेमचंद अपने युग की सामाजिक-राजनीतिक हलचलों के प्रति उदासीन थे। सच्चाई यह है कि उन्होंने उन हलचलों पर गहरी नज़र तो नहीं डाली है।

---

1. नगेन्द्र - हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ. 501, 502

इसी समय में ही चंद्रधरशर्मा गुलेरी ने अपनी तीन कहानियों (युद्ध का काँटा, सुखमय जीवन, उसने कहा था) के द्वारा ही हिंदी साहित्य जगत् में अपना नाम अंकित किया। इस युग के अन्य कहानीकारों में विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (ताई, शांति, पत्नी, पुरस्कार, काकी, न्याय), सुदर्शन (हार की जीत, सदासुख, एथेंस के सत्यार्थी, सूरदास), पाण्डेय बेचैन शर्मा उग्र (दोजख की आग, कलाकार, चिनगारियाँ, उसकी माँ, सनकी अमीर, जल्लाद), उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। कहानी के इस युग में जैनेन्द्र, इलाचंद्र जोशी एवं अज्ञेय के नाम विशेष महत्व रखते हैं। उन्होंने हिन्दी कहानी को मनोवैज्ञानिक धरातल प्रदान किया है। 'खेल', 'साधू का हठ', 'एक रात', 'चलित चित्र', 'बिल्ली का चाचा', 'पत्नी', 'जाहूवी' जैसी प्रसिद्ध कहानियों के द्वारा एक सफल कहानीकार के रूप में जैनेन्द्र जी का नाम प्रतिष्ठित हुआ। इलाचंद्र जोशी की प्रसिद्ध कहानियाँ है - 'सजनवाँ', 'उपेक्षिता', 'चरणों की दासी', 'जीत या हार' और अज्ञेय की कहानियाँ हैं - 'कडियाँ', 'शांति हंसी थी', 'प्रतिध्वनि', 'रोज़', 'ताज की छाया' आदि।

इसके बाद हिंदी कहानी में मार्क्सवादी विचारधारा का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। यशपालजी की कहानियों में प्रगतिवाद और क्रांतीकारी जीवन की झाँकी मिलती है। उनकी 'ज्ञानदान', 'अभिशप्त', 'तर्क की तूफान', 'वो दुनिया', 'फूलों का कुर्ता', 'पर्दा' आदि कहानियों में मार्क्सवादी सिद्धान्तों का गहरा छाप परिलक्षित होता है।

1.3 स्वातंत्र्योत्तर हिंदी कहानी : विभिन्न आन्दोलन

स्वतंत्रता प्राप्ति और देश विभाजन से हिंदी साहित्य में गहरा असर पडा है। इनके तहत एक नई पीढ़ी के रचनाकारों का उदय हुआ। वे स्वाधीनता के पश्चात् आदर्शों और समता का ध्वंस देखकर मोहभंग में पड गए। उन दिनों में समाज, साहित्य, राजनीति, परिवार सब कहीं असंतोष का वातावरण था। यह असंतोष और मोहभंग तत्कालीन परिस्थिति के प्रति कुछ करने और कहने का उत्साह उनमें भरा और उसका सृजनात्मक विस्फोट तत्कालीन कहानी में भी देखा जा सकता है। इस विस्फोट के प्रतिफल से विभिन्न आन्दोलनों का उदय हुआ है। डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय इस संदर्भ में लिखा है "यद्यपि सन् साठ के बाद कहानी पूर्णतः तो स्वस्थ नहीं है और न लेखक कला-संचेतना के प्रति अधिक जागरूक ही दृष्टिगोचर होते हैं, तो भी आज कहानी की संभावनाएँ काफी उभर चुकी है और वह गतिरोध तोड़ रही है। यह आज जीवन को सूक्ष्म दृष्टि से देखकर, जीवन का साक्षात्कार कर, उसके प्रति आस्था व्यक्त कर नये आयाम ढूँढ़ने का प्रयास कर रही है और कलात्मक स्तर प्राप्त कर मनुष्य और समाज के पारस्परिक संबन्धों में समन्वय उपस्थित करने की ओर उन्मुख है। उसकी यह तलाश जारी है।"[1] इस तलाश के विभिन्न सोपान है प्रत्येक कहानी आन्दोलन।

1.3.1 नई कहानी

हिंदी कहानी का पहला रचनात्मक आन्दोलन है नई कहानी। उसका आरंभ लगभग 1950-1955 तक के समय के हुआ है। नई कहानी के उन्नायकों

---

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ. 9

में कमलेश्वर, मोहन राकेश और राजेन्द्र यादव का नाम प्रमुख है। इसके अतिरिक्त निर्मल वर्मा, अमरकांत, भीष्म साहनी, मार्कण्डेय, कृष्णा सोबती, मन्नू भण्डारी, शेखर जोशी, महीप सिंह, श्रीकांत वर्मा, कृष्णबलदेव वैद्य, फणीश्वरनाथ रेणु, मोहन राकेश आदि का नाम इस आन्दोलन में विशेष उल्लेखनीय है। देश की स्वतंत्रता के बाद साहित्य का दृष्टिकोण बदल दिया है। यथार्थ और जीवन की वास्तविकताओं का अंकन कर नई कहानी पिछली कहानी से अपने को अलग कर दिया। आदर्शों और विचारों की ढाँचे में कहानी का रूपायन करने को नई कहानी एकदम विरोध किया है। नए भावबोध पर आधारित जीवन के यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना नई कहानी अपना लक्ष्य समझता है। इसलिए वह केवल बाहरी परिवेश के चित्रण करने के बदले परिवेश के दबाव में बनते-बिगडते मानव मूल्यों, रिश्तों, संवेदनाओं की कथा कहती है। कमलेश्वर ने ठीक ही कहा है - "नई कहानी ने जीवन की सारी संगतियों, विसंगतियों, जटिलताओं और दबावों को महसूस किया है। यानी नई कहानी पहले और मूल रूप में जीवनानुभव है, उसके बाद कहानी है।"[1] अनुभूति की प्रामाणिकता, यथार्थ का चित्रण, परिवेश के प्रति जागरूकता, व्यक्तिवादी विचारधारा, भावुकता का नष्ट, आधुनिकता, शिल्प के प्रयोग में परिवर्तन आदि नई कहानी की प्रमुख विशेषताएँ हैं। तत्कालीन समाज के मानव जीवन का संघर्ष, नौकरी के लिए परेशानी, बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार, हताशा, उदासीनता, यौन संबन्धों और रिश्तों में आये बदलाव, मूल्यों का परिवर्तन आदि इस दौर की कहानियों का मुख्य कथ्य है। अमरकांत की 'डिप्टी कलक्टरी', 'दोपहर का भोजन' में बेरोज़गारी

1. कमलेश्वर - नयी कहानी की भूमिका - पृ. 28

की हताश और मोहभंग का चित्रण हमें देख सकते हैं। तत्कालीन अर्थव्यवस्था की बुराइयों का खुला पर्दाफाश है मोहन राकेश की 'मंदी', 'वारिस', 'फटा हुआ जूता', 'राजा निरबंसिया', कमलेश्वर की 'जोखिम', मार्कण्डेय की 'आदर्श कुक्कुट गृह' आदि कहानियाँ। हरिशंकर परसाई की 'भोलाराम का जीव', 'एक फरिश्ते की कथा', 'सड़क बन रही है' और मोहन राकेश की 'परमात्मा की कुत्ता' समाज में मौजूद भ्रष्टाचार और अन्याय को व्यक्त करता है। फणीश्वरनाथ रेणु की 'जलवा', 'आत्मसाक्षी', 'पुरानी कहानी : नया पाठ', कमलेश्वर की 'लाश', मार्कण्डेय की 'नौ सौ रुपये और ऊँट दाना' आदि राजनीतिक नेताओं का छल-कपट, अवसरवादिता, बेईमानी आदि को व्यक्त करती है। इसके साथ संबन्धों में आए परिवर्तन, पति-पत्नी के बीच का तनाव मन्नू भण्डारी की 'ऊँचाई', कमलेश्वर की 'आसक्ति', 'ऊपर उठता हुआ मकान', भीष्म साहनी की 'खून का रिश्ता', उषा प्रियंवदा की 'ज़िंदगी और गुलाब के फूल', कृष्णा सोबती की 'बादलों के घेरे', राजेन्द्र यादव की 'कमज़ोर लड़की', 'छोटे-छोटे ताजमहल', शिवप्रसाद सिंह की 'ताड़ी घाट का पुल' आदि कहानियों में स्पष्ट दिखते हैं। इन कहानियों के द्वारा व्यक्ति और संबन्धों में आए उलझन को भी नयी कहानीकारों ने प्रस्तुत किया है। धीरे-धीरे नई कहानी में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ सक्रिय होने लगीं। इसका परिणति अकहानी के रूपायन का कारण बन गया।

1.3.2 अकहानी

स्वतंत्रता के पश्चात भारतीय जनता में जो उल्लास और उत्साह की स्थिति थी, वह धीरे-धीरे समाप्त होने लगी। जनता में मोहभंग और निराशा की

स्थिति उत्पन्न हुई। क्योंकि जनता में स्वतंत्र भारत के बारे में जो सपने थे, वे सब टूटने लगे। सब कहीं भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, निराशा, अविश्वास दिखाई देने लगा। "अकहानी पारिवारिक सामाजिक, नैतिक और साहित्यिक मूल्यों के विघटनात्मक स्वरूप की अभिव्यक्ति है। अकहानी में व्याप्त मूल्यहीनता देश के राजनीतिक, सामाजिक जीवन के अवमूल्य से संबन्ध रखती है।"[1] निराशा भरे उस वातावरण में हिंदी कहानी की जिस नई धारा का सूत्रपात हुआ, उसे आलोचकों और कहानीकारों ने 'अकहानी' नाम से अभिहित किया। अकहानी पश्चिम के 'एंटी-स्टोरी' का रूपांतरण है। सूर्यप्रकाश दीक्षित ने अकहानी का विश्लेषण करते हुए कहा है - "अकहानी का 'अ' केवल एक विशेषण ही नहीं बल्कि एक व्यक्ति की निरर्थकता, भाषा और भावों की अपूर्णता और व्यक्तित्व की विसंगति को प्रश्रय देता है।"[2] मानवीय संबन्धों और भावों में पनपते घृणा, नफरत, ऊब, संबन्धों का विघटन और काम का विकृत रूप, अकेलापन, भय, निरर्थकता बोध आदि अकहानी का मुख्य विषय है। श्रीकांत वर्मा, गंगाप्रसाद विमल, दूधनाथ सिंह, रवीन्द्र कालिया, सतीश जमाली, जगदीश चतुर्वेदी, ज्ञानरंजन, रमेश बक्षी, महेन्द्र भल्ला, प्रयाग शुक्ल आदि इस धारा के प्रमुख कहानीकार है। अकहानी परंपरागत धारणाओं और शिल्प की ढ़ाँचे से कहानी को पूर्ण रूप से मुक्त कर दिया। रवीन्द्र कालिया की 'अकहानी' नामक कहानी अकहानी आन्दोलन का परिचायक है। उन्होंने इसमें

---

1. हेतु भारद्वाज - हिंदी कथा साहित्य का इतिहास - पृ. 86
2. डॉ. सूर्यप्रकाश दीक्षित - हिंदी कहानी : दो दशक की यात्रा, संपादक : नरेन्द्र मोहन, रामदरश मिश्र - पृ. 189

कहानीपन का सारे तत्वों को पूरी तरह तहस-नहस किया है। दूधनाथ सिंह ने अपनी 'दुःस्वप्न' नामक कहानी में 'मैं' को केन्द्र बनाकर अकहानी और उसके जीवन दर्शन का असली नमूना प्रस्तुत किया है। अकहानीकार व्यक्ति स्वतंत्रता की पराधीनता के कारण के रूप में सामाजिक बन्धनों को मानता है। लेकिन सच्चाई यह है कि व्यक्ति स्वतंत्रता की अधिकतर चाह कभी-कभी अराजक स्थितियों तक पहूँचाता है। यह जनता में नकारात्मक दृष्टि को पैदा करती है। यह समझकर अकहानी के संबन्ध में कमलेश्वर जी ने इस प्रकार लिखा है "सत्तर प्रतिशत कहानियों के नायक आत्महत्या की धमकी देते दिखाई देते हैं। पर एक प्रतिशत भी निर्णय की इस स्वतंत्रता का उपयोग नहीं करते। आत्महत्या के लिए गुहार देते हुए ये नायक कुछ भी स्वीकार करने की मुद्रा में नहीं हैं। इसके लिए सब रिश्ते बेमानी, सब आत्मीय घटियल, सब औरतें मादाएँ, सब संबन्ध निरर्थक, सब प्रश्न बेमानी, सब आकांक्षाएँ अर्थहीन और सब प्रयोजन व्यर्थ हो गए हैं।"[1] अकहानी तेज़ी से ठंडी होने का कारण ही यही है।

1.3.3 सचेतन कहानी

वास्तव में सचेतन कहानी आन्दोलन फ्रांस और जर्मनी के एक्टिविस्ट मूवमेंट का भारतीय संस्करण है। सचेतन कहानी का प्रारंभ 1964 में प्रकाशित 'आधार' के 'सचेतन कहानी विशेषांक' के प्रकाशन से माना जाता है। डॉ. महीप सिंह के 'सचेतना' नामक पत्रिका इस आन्दोलन को गति प्रदान की। सचेतन

---

1. कमलेश्वर - धर्मयुग, 28 मार्च 1967 - पृ. 52

कहानी के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए महीप सिंह इस प्रकार लिखा है "सचेतना एक दृष्टि है।वह दृष्टि, जिसमें जीवन जिया भी जाता और जीना भी जाता है।"[1] अर्थात् सचेतन कहानी के केन्द्र में मानव जीवन है। यह सातवें दशक की कहानी की जड़ता को तोड़कर जीवन को जीने और जानने की चेष्टा पर बल देती है। सचेतन कहानी निराशा, कुंठा, ऊब, अकेलापन, विसंगति, अनास्था, मृत्युभय आदि को नकारकर जीवन की ओर उन्मुख करती है। महीप सिंह का वक्तव्य है "सचेतन कहानी सक्रिय भावबोध की कहानी है, वह ज़िन्दगी की स्वीकृति की कहानी है। पश्चिम की भौंडी नकल और ओढ़ी हुई मानसिकता से प्रेरित होकर ज़िन्दगी की व्यर्थता, नितांत अकेलापन और बनावटी घुटन का वह प्रदर्शन नहीं करती है। और वास्तविकता यह है कि जिन लेखकों ने ऊब, अकेलापन, अजनबीपन की बातें की, वे कभी अपने व्यक्तित्व का उचित नियमन नहीं कर सके। जिससे उनकी अभिव्यक्ति भी सदैव संगतहीन, धुँधली और असंबद्ध ही रही है।"[2] हिमांशु जोशी, मधुकर सिंह, कमल जोशी, सुधा अरोरा, योगेश गुप्त, कुलभूषण आदि इस आन्दोलन के प्रमुख कहानीकार हैं। जीवन को जीने और जानने के बजाय मूल स्थापनाओं में कोई नवीनता न होने के कारण यह आन्दोलन बहुत जल्दी ही समाप्त हो गया।

1.3.4 सहज कहानी

सहज कहानी आन्दोलन का सूत्रपात अमृतराय ने 1968 में 'नई कहानियाँ' पत्रिका के माध्यम से किया है। उन्होंने जीवन की प्रस्तुति सहज रूप में करने पर

---

1. महीप सिंह - सचेतन कहानी : रचना और विधान - पृ. 14
2. वही - पृ. 12

बल दिया है। सहज अभिव्यक्ति के द्वारा जीवन के कटु यथार्थों और व्यवस्था की भ्रष्टता को प्रस्तुत करना सहज कहानी का लक्ष्य है। सहज कहानी के संदर्भ में अमृतराय जी ने वैचारिक स्तर पर जो विचार किया है, उन विचारों को रचनात्मक स्तर पर समर्थन नहीं मिला है। अमृतराय के बाद डॉ. सुशीलकुमार फुल्ले ने सहज कहानी को आगे बढ़ाने के लिए सतत कोशिश करने पर भी 'नई कहानियाँ' पत्रिका बन्द होने के साथ-साथ यह आन्दोलन भी समाप्त हो गया।

1.3.5 समांतर कहानी

समांतर कहानी का विकास कमलेश्वर के 'सारिका' नामक पत्रिका द्वारा 1972 में हुआ है। समांतर कहानी के केन्द्र में आम आदमी की ज़िंदगी है। आम आदमी के संघर्षों के साथ चलकर उनकी स्थितियों और समस्याओं को पहचानकर उसे प्रतिष्ठित करने का प्रयास समांतर कहानी ने किया है। भूमिहीन किसान, कारखानों में काम करनेवाले मज़दूर, बेरोज़गार आदि समांतर कहानी का केन्द्र है। डॉ. विनय की राय में "वस्तुतः यह कहानी मानवीय द्वन्द्वों-अन्तर्द्वन्द्वों के चित्रण के माध्यम से समय की भयानकता से जूझते संघर्षरत मानव की जिजीविषा का संकेत करती है।"[1] समांतर कहानी आम आदमी के जीवन की परिस्थितियों, समस्याओं, तकलीफों, कमज़ोरियों और शक्ति को भी रेखांकित कर उसमें नई चेतना भरने का प्रयास किया है। कमलेश्वर जी का वक्तव्य है "परिवर्तित विचार और मूल्य ही 'संस्कारग्रस्तता' का पर्याय हो सकते हैं। परिवर्तित विचार यह मूल्य शूल्य में से

---

1. डॉ. विनय - समकालीन कहानी : समांतर कहानी - पृ. 67

नहीं आते। वे मनुष्य को उन्हीं स्थितियों और विषमताओं में से स्वयं प्राप्त करने होते हैं, जहाँ उसके अस्तित्व की शर्तों को पैदा किया जाता है। यही पर हरेक को जीने की शर्तों और विषमताओं में से स्वयं प्राप्त करने होते हैं, जहाँ उसके अस्तित्व की शर्तों को पैदा किया जाता है। यही पर हरेक को जीने की शर्तों और अपनी जीने की उपेक्षाओं का रिश्ता तय करना पडता है।"[1] कमलेश्वर के साथ बहुत से साहित्यकार इसे और पनपने में सहयता दी। इनमें प्रमुख है इंब्राहिम शरीफ, ललित मोहन अवस्थी, जितेन्द्र भाटिया, मधुकर सिंह, अनीता आलोक, स्वदेश दीपक, सुधा अरोरा।

1.3.6 जनवादी कहानी

जनवादी आन्दोलन हिन्दी साहित्य में प्रगतिशील आन्दोलन का विकसित रूप है अर्थात् यह प्रगतिवाद का नया संस्करण है। जनवादी कहानी में वर्ग संघर्ष और शोषण के विरुद्ध सक्रिय प्रतिरोध की भावना दिखाई पडती है। वामपंथी विचारधारा से संपन्न जनवादी कहानी का उदय सातवें दशक के अंत में माना जाता है और इसका स्पष्ट पहचान आठवें दशक में ही बन पाई है। इसके पहले समान्तर कहानी के केन्द्र में भी आम आदमी था। लेकिन आम आदमी के खिलाफ में या उसके शोषक के रूप में कौन उपस्थित है, इसका साफ उत्तर देने में समांतर कहानी उतना सफल नहीं था। कारखानों के मालिक, ज़मींदार, बॉस आदि तक अपराधी का खोज साधारणतः खतम् हो जाता है। लेकिन असली अपराधी का

---

1. कमलेश्वर - सारिका, फरवरी 1975 - पृ. 413

नकाब उतारने को सर्वप्रथम कार्य जनवादी कहानी ने पूरा किया है। जनवादी कहानी में वर्ग संघर्ष की चेतना पूर्ण रूप से रूपायित हुआ है। थके और हारे गए पात्रों के स्थान पर संघर्षशील, जीवंत और सक्रिय पात्रों के सृजन करने में यह आन्दोलन बल दिया। जनवादी कहानीकार शोषण के विरुद्ध लड़ाई करने के साथ-साथ जनसंघर्ष को कमज़ोर करनेवाले अन्तर्विरोधों को उजागर करते हुए मुक्ति की लडाई लडने की रास्ता का भी संकेत दिया है। रमेश उपाध्याय की 'देवी सिंह कौन', नमिता सिंह की 'समाधान', श्रीहर्ष की 'भीतर का भय', नीरज सिंह की 'करिश्मा', मधुकर सिंह की 'लहू पुकारे आदमी', सुरेश कांटक की 'एक बनिहार का आत्म निवेदन', विजेन्द्र अनिल की 'विस्फोट' आदि कहानियाँ इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय हैं। पूर्ववर्ती कहानी आन्दोलनों के निराशा भरी दृष्टि को हटाने के लिए जनवादी कहानीकारों अपनी कहानियों में आशावाद का प्रवेश जबरदस्ती के साथ किया है। यह जबरदस्ती कहानी को पूर्ण सच्चाई से अलग कराया। फिर भी जनवादी कहानी के संदर्भ में वेदप्रकाश अमिताभ का यह कथन बिल्कुल सही है कि "इन कथाकारों निम्न वर्ग के भविष्य को निर्धारित करने के लिए हाथ में मशाल जला रखी है।"[1]

1.3.7 सक्रिय कहानी

सक्रिय कहानी का आरंभ राकेश वत्स ने 1975 में किया है। सक्रिय कहानी समांतर कहानी और जनवादी कहानी से काफी निकट है। सक्रिय कहानी

---

1. वेदप्रकाश अमिताभ - हिंदी कहानी एक अंतर्यात्रा - पृ. 76

का आविर्भाव ऐसे समय में था कि जब देश के शासन की बागडोर जनता से पार्टी तक पहूँचाता है लेकिन पार्टी के आन्तरिक कलहों, स्वार्थी और महत्वाकांक्षी नेताओं के कारण यह साबित हुआ कि जनता की उम्मीदें निरर्थक है। आज़ादी के बाद भी जनता की स्थिति आज़ादी के पहले से अलग नहीं था। ऐसी स्थिति में इन विसंगतियों के विरुद्ध जनता को सक्रिय कराने की आवश्यकता पर सक्रिय कहानी आन्दोलन की शुरुआत हुई। सक्रिय कहानी के संबन्ध में राकेश वत्स का मन्तव्य है कि "सक्रिय कहानी का सीधा और स्पष्ट मतलब है आदमी की रचनात्मक ऊर्जा और जीवंतता की कहानी। उस समय और अहसास की कहानी जो आदमी को बेबसी, वैचारिक निहत्थेपन और नपुंसकता से निजात दिलाकर पहले स्वयं अपने अन्दर की कमज़ोरियों के खिलाफ खडा होने के लिए तैयार करने की ज़िम्मेदारी अपने सिर पर लेती है। जो साहित्य की इस सार्थकता के प्रति समर्पित है कि साहित्य संकल्प और प्रयत्न के बीच की दरार को पाटने का एक जरिया है।"[1] अर्थात् जनता में संघर्ष की चेतना जगाकर उनमें व्याप्त चुप्पी, समझौता परस्ती और आत्मस्वीकार की भावना को तोडने पर सक्रिय कहानी ने ज़ोर देती है। राकेश वत्स की इस दिशा में सुरेन्द्र सुकुमार, रमेश बतरा, सच्चिदानंद धूमकेतु, चित्रा मुद्‌गल, श्रवण कुमार, अब्दुल बिस्मिल्लाह, श्रीकांत, धीरेन्द्र अस्थाना, राजेश कुमार, नवेन्दु आदि अत्यंत सक्रिय हुए हैं। सक्रिय कहानीकार व्यक्तिवाद का विरोध करते हैं। व्यक्तिगत विचारों, स्वार्थ और लोभ को समाज के हित के रूप में बदलाने में इनका योगदान महत्वपूर्ण है। शोषण के विरुद्ध लडाई करने के लिए

---

1. राकेश वत्स - सक्रिय कहानी की भूमिका - पृ. 11

आम आदमी को सक्रिय और सचेत बनाने में सक्रिय कहानी की अवधारणाओं ने पर्याप्त पुष्टि की है।

1.4 समकालीन कहानी

नई कहानी के दौर समाप्त होते-होते उसमें एक प्रकार की जड़ता और रूढ़ीग्रस्तता आ गयी। इसे तोडने के लिए हिन्दी कहानी में विभिन्न आन्दोलनों का जन्म हुआ। लेकिन आधुनिकता मानव पर केन्द्रित थी। इसलिए इन आन्दोलनों ने व्यक्ति की स्वतंत्रता और विचारों को प्रधानता दी है। समकालीनता में इस केन्द्रियता नष्ट हो गया है। समकालीन कहानी में कोई भी हाशिए पर नहीं है। समकालीन कहानी का कथ्य में इतना वैविद्यपूर्णता है कि मानव जीवन की कोई भी समस्या, चिंता या विचार ऐसा नहीं है जो इसका विषय न बनाया गया है। निम्न मध्यवर्गीय लोगों की आर्थिक विषमताएँ, बढ़ती महँगाई, भ्रष्ट शासन प्रणाली, सांप्रदायिकता, दलित और आदिवासी लोगों का जीवन स्थितियाँ, स्त्री पर बढ़ते हो रहे शोषण आदि से लेकर उपभोग संस्कार, बाज़ार की तानाशाही, विज्ञापन और मॉडलिंग की दुनिया में अंधा हुआ युवा पीढ़ी तक सारी की स्थितियों पर समकालीन कहानी चर्चा करती है। डॉ. पुष्पपाल सिंह के मुताबिक "पिछले दो दशकों की कहानी में कहानीकार की जो चिंताएँ प्रमुख रही है, उनमें देश पर इलेक्ट्रॉनिक मीडिया द्वारा हो रहे सांस्कृतिक आक्रमण, उपभोक्तावाद के चलते पैसे की अंधी दौड़ का मुँह फाड़ती हमारी नित्य नई आवश्यकताएँ, विज्ञापन जगत् द्वारा आवश्यकताओं पर सृजन, उसको पाने की उत्कट आकांक्षाएँ, मूल्यों के टूटने की पीड़ा, राजनीति का

बढ़ता अपराधीकरण, जोड़-तोड़ की राजनीति आदि पर प्रमुखता से लिखा गया। इस पर आज हिंदी कहानी का फलक अन्यन्त व्यापक है।"[1] समकालीन कहानीकारों अपने परिवेश और समस्याओं के प्रति सचेत है। वर्तमान संदर्भ में नवउपनिवेशवाद और भूमण्डलीकरण के कारण व्यक्ति की अस्मिता संकटग्रस्त हो रही है। ऐसी स्थिति से जागृत होकर समकालीन कहानीकारों की एक लंबी पंक्ति ही अस्मिताविहीन व्यक्ति जीवन और बदलते सामाजिक परिवेश पर ध्यान देकर उपस्थित हैं। इसमें उल्लेखनीय नाम है - उदय प्रकाश, संजीव, संजय, शिवमूर्ति, धीरेन्द्र अत्साना, स्वयंप्रकाश, ओमप्रकाश वात्मीकि, अलका सरावगी, गीतांजलि श्री, ममता कालिया, मृदुला गर्ग, राजी सेठ, सुधा अरोरा आदि। समकालीन परिस्थितियों और उस समय के कहानीकारों को जानने के पहले समकालीनता पर विचार करना अधिक समीचीन है।

1.4.1 समकालीनता

समकालीन शब्द 'सम' उपसर्ग और 'कालीन' विशेषण के योग से बना है। 'सम' उपसर्ग का अर्थ है 'एक ही' और 'कालीन' का अर्थ है 'काल में' या 'समय में'। तब समकालीनता का अर्थ हुआ 'एक ही समय में होनेवाला'। प्रामाणिक हिंदी कोश में समकालीन शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया गया है - "एक ही समय में होनेवाला या वर्तमान कालिक।"[2] समकालीन शब्द की भावबोधक संज्ञा है

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - कथामंजरी की भूमिका - पृ. 19
2. रामचन्द्र वर्मा - प्रामाणिक हिंदी कोश - पृ. 914

समकालीनता। अंग्रेज़ी में काण्टेंपेररी (contemporary) शब्द समकालीनता या समसामयिकता के पर्याववाची शब्द के रूप में प्रयुक्त किया जाता है, जिसका अर्थ है 'एक ही समय का, अपने समय का या समवस्यक'।

केवल एक ही काल में रहने से कोई भी समकालीन नहीं बन सकते। समकालीनता को कालपरक अर्थ में देखने पर वह तत्कालिकता बन जाएगा। समकालीनता और तत्कालिकता में अन्तर है। तत्कालिकता शब्द सिर्फ उसी समय का द्योतक है। डॉ. नगेन्द्र मोहन ने इस प्रकार कहा है - "समकालीनता का अर्थ किसी कालखण्ड या दौर में व्याप्त स्थितियों और समस्याओं का चित्रण, निरूपण या बयान भर नहीं है, बल्कि उन्हें ऐतिहासिक अर्थ में समझना, उनके मूल स्रोत तक पहूँचना और निर्णय ले सकने का विवेक अर्जित करना है। समकालीनता तात्कालिकता नहीं है।"[1] इसलिए कहा जा सकता है कि समकालीनता को एक ही समय में या सम काल में रहने के साथ-साथ उसमें समय के परे जाने की क्षमता भी होती है।

समकालीनता अपने समय के साथ सार्थक सरोकार है। अपने समय की समस्याओं और चुनौतियों का मुकाबला करना समकालीनता का लक्षण है। मधुरेश के अनुसार "समकालीन होने का अर्थ समय के वैचारिक और रचनात्मक दबावों को झेलते हुए, उनसे उत्पन्न तनावों और टकराहटों के बीच अपनी सृजनशीलता द्वारा अपने होने को प्रमाणित करना।"[2] समकालीनता वर्तमान जीवन के विभिन्न

---

1. डॉ. नरेन्द्र मोहन - समकालीन कहानी की पहचान, प्रस्तावना - पृ. 7
2. मधुरेश - हिंदी कहानी का विकास - पृ. 176

आयामों का समुच्चय है। समकालीनता अपने युग की वास्तविकता और यथार्थ को परखने की साथ ही साथ क्रांतीकारी रवैया भी है। डॉ. जितेन्द्र वत्स के राय में "समकालीनता एक काल में साथ-साथ जीना नहीं है। समकालीनता अपने काल की समस्याओं और चुनौतियों में भी केन्द्रीय महत्व रखनेवाली समस्याओं के समझ से उत्पन्न होती है।"[1] इसलिए कहा जा सकता है कि समकालीनता में अपने समय की समस्याओं और चुनौतियों की समझ निहित होती है। समकालीनता का मूल स्वर प्रतिरोध है। इन समस्याओं, चुनौतियों और विसंगतियों के प्रति विद्रोह या प्रतिरोध जाहिर करना समकालीन बनने के लिए ज़रूरी है।

समकालीनता वर्तमान जीवन प्रणाली की जटिलता को उसकी पूरी समग्रता के साथ व्याख्यायित, परिमार्जित और प्रतिक्रियान्वित करती है। समकालीनता का संबन्ध केवल वर्तमान से नहीं, इसमें वर्तमान, अतीत और भविष्य इन तीनों का जोड होती है। सुरेन्द्र चौधरी की राय में "समकालीनता की आत्मा को उन अंतरालों से झाँकने की ज़रूरत है, जिनसे होकर या तो वह अतीत का अंग बन जाती है या फिर भविष्य की संभावना। समकालीनता की इस दुहरी दुनिया के भीतर ही रचना की कुछ संभावनाएँ पैदा होती हैं।"[2] समकालीनता में वर्तमान की जटिलता है, अतीत का अनुभव है और भविष्य की आकांक्षा भी है।

समकालीनता आधुनिकता से उत्पन्न होती है। आधुनिकता मानव पर केन्द्रित थी। व्यक्ति की स्वतंत्रता और अस्तित्व को कायम रखना आधुनिकता का

---

1. जितेन्द्र वत्स - साठोत्तर हिंदी कहानी में राजनीति - पृ. 48
2. सुरेन्द्र चौधरी - हिंदी कहानी : प्रतिक्रिया और पाठ - पृ. 180

लक्ष्य है। औद्योगीकरण और वैज्ञानिकता ने मानव को प्रकृति से अलग कर दिया और अल्पसंख्यक, स्त्री, दलित, प्रकृति आदि को हाशिए पर डाला। लेकिन समकालीनता में यह केन्द्रियता टूट गयी। समकालीनता में कोई भी हाशिए पर नहीं है अर्थात् इसमें स्त्री, दलित, आदिवासी, प्रकृति, अल्पसंख्यक, पिछडे लोग आदि सभी का स्थान है। इसमें यथार्थ और सत्य को अधिक महत्व दिया जाता है। समकालीनता की चर्चा करते वक्त आधुनिकता पर ही विचार करना समीचीन है।

1.4.2 आधुनिकता

आधुनिकता अंग्रेज़ी भाषा के मॉडर्निटि (modernity) शब्द का प्रतिशब्द है। इसका अर्थ है वर्तमान समय का, नवीन, साम्प्रतिक। कुछ लोग पश्चिम के अन्धानुकरण को आधुनिकता मानते हैं। लेकिन यह सही नहीं है। आधुनिकता एक विचार-विधि और चिंतन प्रक्रिया है। डॉ. नगेन्द्र के मतानुसार "आधुनिकता मध्ययुगीन जीवन दर्शन से भिन्न, एक नया जीवन दर्शन और दृष्टिकोण है।"[1] आधुनिकता व्यक्ति को विचार और व्यवहार में वैज्ञानिक तथा बौद्धिक दृष्टि का प्रयोग करने के लिए सक्षम बनाती है। आधुनिकता मनुष्य के आधुनिक बनने के परिणाम स्वरूप उत्पन्न मानसिकता है। यह मानसिकता मानव को अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, परंपराओं के खिलाफ विद्रोह करने की शक्ति देती है। रामधारी सिंह दिनकर ने इसके बारे मे यों कहा है - "वह एक प्रक्रिया का नाम है, यह प्रक्रिया अंधविश्वास से बाहर निकलने की प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया धर्म के सही रूप पर पहूँचने की प्रक्रिया है।

---

1. डॉ. नगेन्द्र - नई समीक्षा : नए संदर्भ - पृ. 61

आधुनिक वह है जो मनुष्य की ऊँचाई उसकी जाति या गोत्र से नहीं बल्कि उसके कर्म से नापते हैं।"[1] नवीन परिस्थितियों के अनुसार अपने आप संस्कार करना आधुनिकता है। आधुनिक दृष्टिकोण मानव को अपने आप पहचानने की प्रेरणा देती है।

आधुनिकता प्रतिपल परिवर्तनशील है। कल के संदर्भ में जो वस्तु या विषय आधुनिक माना जाता था, वह आज पुरातन की संज्ञा धारण करता है। प्रत्येक युग की अपनी आधुनिकता होती है। आधुनिकता एक काल सापेक्ष शब्द है क्योंकि आज के पहले के युग में भी आधुनिकता थी, आज भी आधुनिकता है और आनेवाले युग में भी आधुनिकता इससे ज़्यादा अत्याधुनिक बन जाएगी। डॉ. पुष्पपाल सिंह की राय में "आधुनिकता एक सतत प्रक्रिया है, जो हर युग में किसी न किसी रूप में विद्यमान रहती है।"[2]

भारत में आधुनिकता का प्रभाव अंग्रेज़ी शासन व्यवस्था से शुरू होता है और उसकी स्पष्ट छाप स्वातंत्र्योत्तर काल में ही देखने को मिलती है। आधुनिक शिक्षा, औद्योगीकरण, वैज्ञानिकीकरण आदि के कारण परिस्थितियों में परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन ने मानव जीवन के सभी क्षेत्रों को आधुनिक बना दिया है। हिंदी साहित्य में आधुनिकता का प्रारंभ प्रेमचंदयुगीन साहित्य से होती है। क्योंकि सामाजिक समस्याओं को आधुनिक दृष्टिकोण से परखने का कार्य वहाँ से शुरू

---

1. रामधारीसिंह दिनकर - आधुनिक बोध - पृ. 36
2. डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी : नया परिप्रेक्ष्य - पृ. 36

हुआ है। लेकिन आगे चलने पर आधुनिकता में अस्तित्ववादी दर्शन का प्रभाव पडा है। संत्रास, कुंठा, निराशा, अकेलापन आदि के चित्रण से आधुनिकता में व्यक्ति केन्द्रित मानसिकता को प्रमुखता मिली। लेकिन सन् 1980 के बाद की रचनाओं में, जिसे हम समकालीन साहित्य कहते हैं, उसमें इस व्यक्ति केन्द्रित मानसिकता का भाव नष्ट हो गया। समकालीन साहित्य में समाज से संबन्धित सभी समस्याओं को, सभी क्षेत्रों को समान रूप से प्रमुखता मिली है। समकालीन साहित्य के निर्माण में समकालीन परिदृश्य अहम भूमिका निभाता है।

1.4.3 समकालीन परिदृश्य

साहित्य वास्तव में समाज का प्रतिफलन है। साहित्यकार जिस परिवेश में रहता है उस वातावरण का प्रत्यंकन उनकी रचनाओं में होना स्वाभाविक है। किसी भी रचना की निर्मिति में भी परिवेश का महत्वपूर्ण स्थान होता है। नगेन्द्र जी की राय में "कृति के पीछे उसके कर्ता का व्यक्तित्व रहता है, लेकिन साथ ही यह भी पूरे आग्रह के साथ कहा जा सकता है कि कर्ता के व्यक्तित्व के पीछे उनका देश-काल विद्यमान रहता है।"[1] अपने परिवेश के यथार्थ चित्रण करना साहित्य का सहज धर्म माना जाता है। समकालीन रचनाओं में समकालीन भौतिक परिवेश-सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक परिवेश का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

---

1. डॉ. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र - पृ. 12

1.4.3.1 सामाजिक परिवेश

साहित्य और समाज ने बीच का संबन्ध अटूट है। रचनाकार की सभी अनुभूतियाँ समाज से संबन्धित हैं, और समाज ने उत्पन्न होती है। क्योंकि हरएक रचनाकार अपनी परिवेश से प्रभावित है। साहित्यकार वहाँ के परिवेश और जनता की मानसिकता एवं परिवर्तनों का ज्यों का त्यों प्रस्तुतीकरण अपनी रचनाओं में करता है। इसलिए साहित्य के विकास में समाज और वहाँ के परिवेश के स्थान पर विचार करते हुए रामचन्द्र शुक्लजी ने इस प्रकार लिखा है - "जबकि प्रत्येक देश का साहित्य वहाँ की जनता की चित्तवृत्ति का संचित प्रतिबिम्ब होता है, तब यह निश्चित है कि जनता की चित्तवृत्ति में परिवर्तन के साथ-साथ साहित्य के स्वरूप में भी परिवर्तन होता चला जाता है।..... जनता की चित्तवृत्ति बहुत कुछ राजनीतिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थिति के अनुसार होती है। अतः कारणस्वरूप इन परिस्थितियों का किंचित दिग्दर्शन भी साथ ही साथ आवश्यक होता है।"[1] भारतीय परिवेश में भी स्वतंत्रता के बाद बहुत परिवर्तन आया है। भारतीयों ने पुराने दासत्वों को छोडकर नए दास्तत्व का शिकार बनाया है। पूँजीवाद, उपभोग संस्कृति, औद्योगीकरण आदि ने आदमी को मशीन बनाया है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के कारण मानव के भौतिक सुख-सुविधाएँ बढ़ गयी। लेकिन इन सुख-सुविधाओं ने मानव को एक हद तक बुरा प्रभाव डाला है। मानव आजीविका के लिए यंत्र का दास बन गया। तकनीति और मशीनी सभ्यता ने मानवता का गला घोंट दिया।

---

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल - हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ. 1

सभी आदर्श और मूल्य बेमानी हो गये हैं। मानव महान उद्देश्यों को भूलकर केवल उपभोग वस्तुओं को जुटने में व्यस्त हो गए और यह व्यस्तता मानव में नैराश्य और संघर्ष को पैदा करती है। कैलाश वाजपेयी ने आज के बदलते परिवेश के बारे में अपना विचार इस प्रकार व्यक्त किया है - "उपभोगवादी संस्कृति के सौकड़ों उपकरणों को जुटाने की भागदौड ने आदमी को किसी भी बहत्तर उद्देश्य के प्रति उदासीन कर दिया है। सैद्धांतिक दृष्टि से मनुष्यता जिस ओर जा रही थी, उस ओर जाकर दैनंदिन जीवन में गैजेट बटोरनेवाली उपभोक्ता बन गयी। विचारों और सिद्धान्तों में जीना बेमानी हो गया। आदर्शों का अंत। घर करीब-करीब नाटकघर हो गये हैं....... दरअसल प्रगति मनुष्य नहीं कर रहा है, तकनीक कर रही है।"[1] आज मानव स्वतंत्र, उन्मुक्त और इच्छित जीवन जीना चाहता है। घरवालों, रिश्तेदारों को अनावश्यक बोझ मानते है। इस मानसिकता के कारण हमारी पारिवारिक व्यवस्थाओं पर दरार पड गयी। आज की सडी-गली और रूढ़ीवादी सामाजिक व्यवस्था से मानव स्वयं को असुरक्षित समझने लगा। समकालीन सामाजिक परिवेश का इस परिवर्तित रूप को पूरी ईमानदारी और प्रतिबद्धता के साथ समकालीन कहानीकार प्रस्तुत करते हैं।

1.4.3.2 आर्थिक परिवेश

अर्थव्यवस्था समाज का एक महत्वपूर्ण अंग है। संपूर्ण समाज के संचालन का आधार ही अर्थ है। देश विभाजन तथा पाकिस्तानी और चीनी युद्ध आदि के

---

1. कैलाश वाजपेयी - आधुनिकता का उत्तरोत्तर - सप्ताहिक हिन्दुस्तान - पृ. 53

कारण भारत की अर्थ व्यवस्था अव्यवस्थित हो गयी। युद्ध के दुष्परिणाम के साथ महंगाई, दुर्भिक्षा, अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ने भारतीय जनता की स्थिति को और भी कष्टपूर्ण बना दिया है। उस समय की आर्थिक परिस्थिति के बारे में डॉ. पुष्पपाल सिंह ने इस प्रकार कहा है - "सामान्य व्यक्ति आर्थिक समस्याओं से जूझते हुए जिन्दगी का यह दुर्वह भार ढ़ो रहा है। सरकार 'गरीबी हटावो' का थोथा नारा लेकर आई। परंतु इसने गरीबी को टस से मस नहीं किया किंतु जन सामान्य को एक आक्रोश और विक्षोभ से अवश्य भर दिया।"[1] ऐसी आर्थिक विवशता व्यक्ति के मन में व्यर्थताबोध उत्पन्न किया। स्वतंत्रताप्राप्ति के कुछ समय के बाद ही उपनिवेशी शक्तियाँ भूमण्डलीकरण, बाज़ारीकरण, निजीकरण जैसे नये औजारों से आकर भारत की अर्थव्यवस्था पर अपना कब्जा पूर्ण रूप से स्थापित की। वह मानव को अपने हाथ का खिलौना मात्र बनाया। यह पूँजीवादी व्यवस्था मानव से बोलने और प्रतिक्रिया करने की ताकत छीन लिया है। वह अमीर और गरीबों के बीच का अंतराल दिन-व-दिन बढ़ाती रहती हैं। अर्थ के अतिरिक्त और किसी को भी वर्तमान समय में स्थान नहीं है। केवल भारत ही नहीं विश्व भर इस पूँजीवादी व्यवस्था अपना अधिकार कायम रखा है। आज विश्व में जो व्यवस्था मौजूद है उसका आधार सिर्फ धन ही है।

1.4.3.3 राजनीतिक परिवेश

राजनीति समकालीन परिवेश का महत्वपूर्ण पहलू है। राजनीति का अर्थ है राज्य का या देश का सुव्यवस्थित संचालन। "व्यक्ति या व्यक्ति समूह के द्वारा

---

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन कहानी : युगबोध का संदर्भ - पृ. 116

संघर्ष या सहयोग के माध्यम से सत्ता के इस्तेमाल के लिए प्रयत्नशील गत्यात्मक गतिविधि ही राजनीति है।"[1] समकालीन परिवेश में राजनीतिक गतिविधियों का शोर अधिक है। इसलिए ही समकालीन साहित्य में भी राजनीति को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। समकालीन राजनीतिक परिवेश को समझने के लिए सन् 1947 के बाद की राजनीतिक परिस्थितियों की जानकारी अवश्य होनी चाहिए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्र को कई समस्याओं का सामना करना पडा था - शरणार्थियों का पुनर्वास, विदेशी आक्रमण, पृथकतावादी सामंतवाद आदि इसमें कुछ हैं। भारतीय संविधान ने प्रत्येक व्यक्ति को विचार और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, मताधिकार, धर्म निरपेक्षता, किसी भी प्रकार के भेदभाव से मुक्ति आदि पर विशेष ध्यान देकर सामंती और पूँजीवादी व्यवस्था के स्थान पर लोकतांत्रिक व्यवस्था पर बल दिया। लेकिन वास्तविकता यह है कि संविधान द्वारा प्रचारित यह सामाजिक व्यवस्था की स्थापना भारत में नहीं हुआ। लोकतंत्र के सपने देख रही जनता निराशाग्रस्त हो गयी। राजनीतिज्ञों, पूँजीपतियों, भूमिपतियों और नौकरशाहों के निकट संबन्ध राजनीति से उसके मूल उद्देश्य और लोकतंत्र की भावना को नष्ट करवाया। पक्षपात, भाई-भतीजावाद, पार्टीबाजी, जातीयता, क्षेत्रीयता आदि से ग्राम, नगर, औद्योगिक संस्थान, शिक्षा जगत् और न्यायालय भी बचे नहीं हैं। आज की राजनीतिक अव्यवस्था के कारण आम आदमी कहीं भी सुखी और सुरक्षित नहीं रहा है। गाँधीजी और नेहरु ने भारत के प्रति जो सुनहले सपने देखे थे, वे सब ध्वंस हो चुके थे। अब राजनीति में सिर्फ एक ही सपना बचता है, वह है 'कुर्सी'।

---

1. डॉ. जितेन्द्र वत्स - साठोत्तरी हिंदी कहानी और राजनीतिक चेतना - पृ. 16

'कुर्सी' के लिए अर्थात् अधिकार के लिए कितने भी अन्याय या बेइमानी करने के लिए आज राजनीतिज्ञ तैयार है। सांप्रदायिकता को भी राजनीतिज्ञ अपना अधिकार हासिल करने की हथियार के रूप में इस्तेमाल करते हैं। आज राजनीति अधिकार और धन कमाने का एक सुविधापूर्ण रास्ता बन गयी है। समकालीन कहानी साहित्य में राजनीति के गिरते स्तर का सटीक चित्रण देखने को मिलता है। राजनीतिक जीवन की तमाम अत्याचार और विसंगति, और अवसरवादी प्रवृत्तियों को पूर्ण रूप से चित्रण करने में समकालीन कहानीकार अत्यन्त जागरूक हैं।

1.4.3.4 सांस्कृतिक परिवेश

भारतीय संस्कृति महान और विश्वविख्यात है। 'वसुधैव कुटुम्बकम्' को हमारी संस्कृति की विशेषता बतायी जाती है। लेकिन आज के युग को हम संस्कृति की दृष्टि से विघटन का युग कह सकते हैं। सांस्कृतिक संक्रमण इसका प्रमुख कारण है। आज़ादी के बाद आधुनिकता का प्रभाव व्यक्त रूप से यहाँ पडा है। इसके साथ बेरोज़गारी, भ्रष्टाचार जैसी समस्याओं के कारण युवा पीढ़ी असंतुष्ट रहने लगी। पश्चिमी संस्कृति और भारतीय संस्कृति के बीच के टकराहट के कारण जनता की मानसिकता में काफी बदलाव आया है। आज भौतिक जीवन के प्रति लोगों के मन में लगाव बढ़ गयी। भोगवादी संस्कृति धीरे-धीरे विकसित हो रही है। उपभोगसंस्कृति इसका मुख्य कारण है। आज हम अनजाने ही पाश्चात्य संस्कृति का गुलाम बन रहे हैं। "आज का भारतीय मानस उपभोक्ता संस्कृति का समाज हो गया है। इससे हमारा मनुष्य समाज में एक वस्तु के रूप में बदल चुका

है।"[1] सबको उपभोग करना और अपना स्वार्थ एवं लोभ की पूर्ती का साधन बनाने की संस्कृति आज यहाँ विकसित हुआ है। व्यक्ति, रिश्ते, संबन्ध आदि सबको अर्थ के आधार पर देखने की मानसिकता उपभोगवादी संस्कृति की देन है। इस उपभोगवादी संस्कृति की व्यापकता में अन्य सभी स्थानीय संस्कृतियाँ लुप्त हो रहे हैं। समकालीन कहानीकार इस सांस्कृतिक विघटन से जनता को अवगत कराते हुए उन्हें सही दिशा में मोडने का सक्षम प्रयास करते हैं।

1.4.4 समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

समकालीन साहित्य समकालीन परिवेश से प्रभावित है। जो रचना अपने युग के अनुरूप नहीं होती, उसे समकालीन नहीं कहा जा सकता है। इसलिए प्रत्येक युग के रचनाकार युग के परिवेश के अनुरूप साहित्य का सृजन करते हैं। इसलिए कहा जाता है कि साहित्य अपने युग के संवाहक और संदेशवाहक है। समकालीन संज्ञा साहित्य की प्रायः सभी विधाओं के साथ प्रयुक्त होती है - समकालीन कहानी, समकालीन उपन्यास, समकालीन नाटक, समकालीन कविता आदि। समकालीन कहानी अपने बहुआयामी और विविधतापूर्ण विस्तार में हिंदी साहित्य की अत्यंत गौरवपूर्ण उपलब्धि है। समकालीन परिवेश से संबन्धित सभी समस्याओं का चित्रण समकालीन कहानी में देखा जा सकता है। नवउपनिवेशवाद, सांप्रदायिकता, स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श आदि समकालीन कहानी की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

---

1. त्रिभुवननाथ शुक्ल - साक्षात्कार, मार्च 2006 - पृ. 75

1.4.4.1 नवउपनिवेशिक प्रवृत्तियाँ

वर्तमान समाज में मानव नवउपनिवेश के आतंक में पड गया है। उपनिवेश के बाद उपजी नवउपनिवेश को समझ जाने के लिए ही काफी समय लगा है। यह इस खतरे से बच पाने को नामुमकिन बनाया। नवउपनिवेशवाद का सबसे बडा हथियार भूमण्डलीकरण है। अर्थ पर आधारित व्यवस्था है भूमण्डलीकरण। इसके कारण हमारे देश का चेहरा बदल गया। साम्राज्यवाद का इस नया रूप जनता को ऐसा बोध देता है कि जीवन का लक्ष्य ही किसी-न-किसी प्रकार जेब भरना है। इस लक्ष्य को निभाने के श्रम में मानवीय संबन्धों और रिश्तों का ह्रास हो गया है। सबको अपनी लाभ और स्वार्थता के अनुसार उपयोग करना और फेंक देने की मानसिकता जनता में उत्पन्न हुआ है। उपभोक्तावाद और पूँजीवाद व्यवस्था एक दूसरे का पूरक है। पूँजीवादी व्यवस्था में सबसे अधिक महत्व बाज़ार को मिलता है। इस बाज़ारवाद हमारा कला, संगीत, साहित्य, रीति-रिवाज़, संस्कृति, धर्म, प्रकृति, संबन्ध आदि को एक ब्रांड के रूप में बदल दिया। बाज़ार का सबसे अधिक समर्थन मीडिया करता है। साधनों को ब्रांड की संज्ञा देकर उसे एक अति आवश्यक सामग्री के रूप में जनता के बीच तब्दील करने में मीडिया और विज्ञापन अहम भूमिका निभाती है। उपभोक्तावाद ने जो बाज़ार की प्रतिष्ठा यहाँ किया है, वह परंपरागत बाज़ार के मानक से एकदम विपरीत है। क्योंकि पहले लोगों ने अपनी आवश्यकताओं के अनुसार बाज़ार का रूपायन किया। लेकिन आज के बाज़ार साम्राज्यवादी शक्तियों के इच्छा अनुसार बदल गया है। वे हमारे आवश्यकताओं और इच्छाओं को तय करते हैं। आम जनता तो मात्र एक कठपुतली है जो इनके

इशारों पर चलते हैं। सूरज पालीवाल बाज़ार की इस परिवर्तित स्थिति के बारे में लिखा है "बाज़ार पहले भी था लेकिन बाज़ारवाद नहीं था। बाज़ार हमारी स्थितियों पर निर्भर करता था। लेकिन बाज़ारवाद हमारी नियति तय करता है।"[1] समकालीन कहानीकार अपनी रचनाओं के द्वारा नवउपनिवेश के असलीयत जनता को समझाने और उसके प्रति विरोध करने के लिए आह्वान करती है। पंकज बिष्ट, संजीव, संजय खाती, मृदुला गर्ग, उदय प्रकाश, जितेन्द्र भाटिया, राजेश जोशी आदि इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरे का स्कूटर', 'दत्तात्रेय के दुःख', पंकज बिष्ट की 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते' आदि कहानियाँ उपभोगवादी संस्कृति की छल-छलाव को चित्रित किया है। समाज में विज्ञापनों का प्रभाव कितना अधिक है, यह दिखाने का प्रयास इन कहानीकारों ने किया है। संजय खाती की 'पिंटी का साबुन', मृदुला गर्ग की 'कली में सत', संजीव की 'नस्ल', 'काऊण्ड डाऊण', 'लिटरेचर', जितेन्द्र भाटिया की 'ग्लोबलाइसेशन', 'चक्रव्यूह', पंकज मिश्र की 'बिन पानी डॉट कॉम', 'पडताल', 'क्विज़ मास्टर', दीपक शर्मा की 'मुमूर्ष', नीरजा माधव की 'पथ-दंश', ऊर्मिला गिरीष की 'उसका अपना रास्ता' आदि कहानियों में मुनाफा के पीछे मानव की अंधी दौड़, संबन्धों की दरार, भूमण्डलीकरण का दुष्परिणाम आदि को सशक्त रूप से चित्रित किया गया है।

1.4.4.2 सांप्रदायिकता का विरोध

धर्म का आवरण अपनाई गयी आक्रमकता को सांप्रदायिकता कहा जा सकता है। सांप्रदायिकता की भावना से एक प्रकार की विभाजित चेतना जनता में

---

1. सूरज पालिवाल - इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिंदी कहानी - पृ. 157

बढ़ती है। विभिन्न धर्म एवं संस्कृति को एक जैसा माननेवाले भारत की सबसे बडी समस्या है सांप्रदायिकता। सांप्रदायिक विचार कई प्रकार की सांप्रदायिक हिंसा का कारण बन गये हैं। भारत में सन् 1922 से लेकर आज तक की सबसे बडी समस्या है सांप्रदायिकता। भारत विभाजन और उसके बाद के दंगे भारत के इतिहास में एक कलंक बन गये। विश्वयुद्ध के समय में सांप्रदायिक विचारधारा ने जनता के मन में गहरी नींव डाली। 15 अगस्त 1947 में भारत स्वतंत्र होने के साथ भारत का विभाजन भी हो गया। इसलिए हिंदू जनता पाकिस्तान से भारत की ओर और मुसलमान भारत से पाकिस्तान की ओर गया। लगभग20 से 30 तक लाख लोगों को अपने देश को छोडकर जाना पडा। इतनी बडी संख्या में लोगों के आने जाने पर सांप्रदायिक दंगा भडक उठा। पाशविक हत्यायें हुई। इस दारुण हत्याओं में लगभग पाँच लाख मारे गए। इसके बाद के सिख हत्याकांड, बाबरी मस्जिद ध्वंस, कश्मीर, अयोध्या, गोधरा जैसी घटनाएँ भारत की जीवन परिस्थितियों को भयानक रूप दिया है। ऐसी घटनाओं ने जनता के मन में अविश्वास, अराजकता, सूनेपन, अस्थिरता, आतंक आदि को जगाया। धीरे-धीरे लेखकों का ध्यान इस पर आकृष्ट हुआ। सांप्रदायिकता और उससे उत्पन्न अन्य समस्याएँ साहित्यिक रचनाओं का मुख्य विषय बन गयीं।

धर्म और जाति निरपेक्ष राष्ट्र कहने पर भी भारत में सांप्रदायिकता का भीषण रूप आज भी यहाँ ज्यों का त्यों विद्यमान है। सांप्रदायिकता राष्ट्रवाद को उलझ रही है। सांप्रदायिकता आज भी ज्वलंत समस्या के रूप में मौजूद होने का प्रमुख कारण आज की राजनीति है। राजनीतिज्ञों अपने स्वार्थ के अनुसार धर्म का

इस्तेमाल करते हैं। वे धर्म को संकीर्ण और स्वार्थों उद्देश्यों के साथ जोडकर भारत को धर्म के नाम पर टुकडा करने की कोशिश कर रहे हैं। राजकिशोर इस प्रकार लिखा है "सांप्रदायिकता एक ऐसा सत्ता संघर्ष है, जो इतिहास की एक विशेष व्याख्या, दर्शन की एक खास समझ तथा सामाजिक आवश्यकताओं के एक खास ढंग के निरूपण पर आधारित है। चूँकि यह मूलतः सत्ता का संघर्ष है और इसकी रणनीति समाज में मौजूद धार्मिक समूहों को केन्द्र में रखकर बनाई जाती है, इसलिए सांप्रदायिक दिमाग किसी सच्ची बहस में पड़ता ही नहीं, वह सिर्फ अपने और पराये के भेद पहचानता है।"[1] साहित्य की सभी विधाओं में विशेषकर समकालीन कहानी में सांप्रदायिकता की भीषणता भली-भाँती उभरी है। अवसरवादी राजनीति दंगे के पीछे कैसे खुल जाती है, इसका स्पष्ट चित्रण पुलीप सिंह की 'शोक' नामक कहानी में प्रस्तुत है। असगर वजाहत की 'मुक्ति', 'पहचान', 'राजधानी के नीचे' आदि में भी सांप्रदायिकता और राजनीति के बीच के रहस्य संबन्धों को व्यक्त किया गया है। अवधेश प्रीतम की 'वजूद', 'अलिमंज़िल', दूधनाथ सिंह की 'गुप्तदान', नमिता सिंह की 'कर्फ्यू', स्वयंप्रकाश की 'पार्टीशन', चन्द्रकांता की 'बदलते हालात में' आदि कहानियाँ सांप्रदायिकता का कारण और उसके दुष्परिणामों को चित्रित करती है।

1.4.4.3 स्त्री विमर्श

स्त्री युगों से शोषण का शिकार हो रही थी। पुरुष और स्त्री को समान अधिकार होने पर भी पुरुषों द्वारा निर्मित सामाजिक व्यवस्था ने स्त्री को घर के चार

1. राजकिशोर - एक अहिंदु का घोषणा पत्र - पृ. 43, 44

दीवारों के भीतर बाँधकर रखा। इसलिए साहित्य सृजन के प्रारंभ से लेकर स्त्री की यातनाएँ, पीडाएँ, मुसीबतें साहित्य का मुख्य विषय बन गयी है। समकालीन साहित्य में भी स्त्री केन्द्रित कहानियाँ बडे पैमाने पर लिखी जा रही है। आज स्त्रियाँ इस रूढ़ीग्रस्त पितृसत्तात्मक व्यवस्था से मुक्त होना चाहती है। वे अस्मिता को पहचानकर पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था पर चुनौती करती है। स्त्री विमर्श के मूल लक्ष्य के बारे में तस्लीमा नसरीन इस प्रकार लिखा है "जिस दिन समाज स्त्री शरीर का नहीं, उसकी मेधा और श्रम का मूल्य देना सीख जाएगा, सिर्फ उस दिन स्त्री मनुष्य के रूप में स्वीकृत होगी।"[1] स्त्री को मनुष्य के रूप में मानने के लिए, पुरुष के समान अधिकार प्राप्त करने के लिए, अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए स्त्री अपने आवाज़ उठती है। समकालीन साहित्यकार उनकी इस श्रम में अपना विशेष योगदान देते हैं। इनमें प्रमुख हैं रांगेय राघव, चित्रा मुद्गल, राजी सेठ, कमल कुमार, ममता कालिया, नासिरा शर्मा, सुधा अरोरा आदि। समकालीन कहानीकार स्त्री जीवन के विभिन्न रूपों तथा पहलुओं और समस्याओं तथा उनकी ताकतों का चित्रण अपनी रचनाओं में करती हैं। गोपालराय स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं पर विचार करते हुए इस प्रकार लिखा है "नारी, जो एक तरफ कोमल हृदया माँ है, समर्पिता पत्नी है, स्वप्नमयी प्रेमिका है, कहीं संघर्षों से जूझती औरत भी है और अपने स्वार्थों में डूबी एक मानवीय मूर्ति थी।"[2] मंजुल भगत ने 'संबन्धहीन' नामक कहानी में स्त्री की मातृत्व बोध का असला चित्र प्रस्तुत करने

---

1. तसलीमा नसरीन - औरत के हक में - पृ. 99
2. गोपाल राय - हिंदी कहानी का इतिहास (1976-2000) - पृ. 26

के साथ 'तीसरा अस्तित्व' नामक कहानी में शादी के बाद स्त्री जीवन में आये परिवर्तनों और उलझनों को भी प्रस्तुत किया है। परिवार में एक मशीन की तरह काम करते-करते अपने को खुद नष्ट करनेवाली स्त्री की कहानी है जया जदवानी की 'परिदृश्य'। कमला कुमार की 'अंतयात्रा' में भ्रूण का स्कैन कराना, लड़की होने का पता चलाने पर उसकी हत्या करना जैसे भीषण स्थितियों का चित्रण हुआ है। आज भी माँ-बाप लडकी को स्वीकार करने में हिचकते हैं। इस यथार्थ का खुला और मन छूनेवाले चित्रण से समकालीन दौर में यह कहानी काफी चर्चित बन गया। सुमन मेहरोत्रा की 'चाँदनी चाँद की है' नामक कहानी में धर्म के नाम पर स्त्रियों पर किए शोषणों का पर्दाफाश करती है। नासिरा शर्मा की 'खुदा की वापसी' में मुस्लीम समाज की महिलाओं की समस्या और अस्वतंत्रता को व्यक्त किया गया है। दीप्ति खंडेलवाल की 'आते समय', 'टूटा हुआ पुल', एक मौत ओर', 'अंधेरे की छलाँग', रांगेय राघव की 'गदल', राजी सेठ की 'अकारण तो नहीं', ममता कालिया की 'आज़ादी', 'जाँच अभी जारी है', 'पीठ' आदि कहानियों में स्त्री मन की पीडा, चोट, अकेलापन, घुटन, स्वतंत्रता की चाह, अस्मिता संघर्ष आदि का सजीव चित्रण मिलता है।

1.4.4.4 दलित साहित्य

भारत में शताब्दियों से धर्म और जाति के नाम पर एक वर्ग पर सामाजिक, आर्थिक, मानसिक शोषण हो रहा था। लेकिन अब उस वर्ग पर चेतना आयी। उस वर्ग का नाम है दलित। दलित जनता में चेतना जगाने का महत्वपूर्ण कार्य

समकालीन साहित्य ने किया है। इसलिए समकालीन दलित साहित्य में विद्रोह का स्वर गूँज उठता है। दलित साहित्य में विद्रोह के साथ-साथ आक्रोश है, गुस्सा है, भाईचारा है और उदारता का संदेश भी है। यहाँ के भेदभाव की व्यवस्था को तोड-मरोड़ कर समानता, तुल्यता और एकता की व्यवस्था बनाये रखने की आक्रोश है दलित साहित्य में। ओमप्रकाश वाल्मीकि के शब्दों में "दलित साहित्य विरोध और नकार की ओर संकेत करता है। वह नकार या विरोध चाहे व्यवस्था का हो, सामाजिक विसंगतियों या धार्मिक रूढ़ियों, आर्थिक विषमताओं का हो.......... दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है तथा जिसमें समता, स्वतंत्रता और बन्धुता का भाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है।"[1] वर्गहीन, जातिहीन समाज की प्रतिष्ठा करना दलित कहानी साहित्य का लक्ष्य है। समकालीन दलित कहानियाँ सामाजिक बदलाव लाने का आह्वान देती है। दलित कहानी की विकासयात्रा में महत्वपूर्ण योगदान देनेवालों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, सुशीला टाकभौरे, डॉ. दयानंद बटोही, कावेरी, रजतरानी मीनू आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि ने अपनी 'प्रमोशन', 'कहाँ जाए सतीश', 'सपना', 'यह अंत नहीं' आदि कहानियों के माध्यम से सामाजिक भेदभाव का सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है। वाल्मीकिजी ने 'कुचक्र' नामक कहानी में सरकारी कार्यालयों में

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि - दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र - पृ. 16

दलित कर्मचारियों के प्रति होनेवाली घृणित मानसिकता को चित्रित किया है। मोहनदास नैमिशराय की 'अपना गाँव', 'हारे हुए लोग' आदि कहानियाँ वर्तमान समाज में व्याप्त जाति-पाँति का सशक्त दस्तावेज़ है। सूरजपाल चौहान की 'साजिश', 'घाटे का सौदा' नामक कहानियों में इक्कीसवीं शती में भी जाति छिपाकर जीने के लिए विवश दलित लोगों को चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त जयप्रकाश कर्दम की 'नो बार', सुशीला टाकभौरे की 'सिलिया', रजतरानी मीनू की 'सुनीता', कावेरी की 'द्रोणाचार्य एक नहीं', कुसुम मेघवाल की 'समय का शिलालेख', रत्नकुमार सांभरिया की 'क्षितिज' आदि कहानियों में भी दलितों की दयनीय स्थिति को व्यक्त किया गया है।

1.4.4.5 आदिवासी विमर्श

आदिवासी शब्द का अर्थ है प्रारंभ से वास करनेवाला अर्थात् एक प्रांत का मूल निवासी। हज़ारों साल पुरानी भारतीय संस्कृति का मूल तो आदिवासी सभ्यता और संस्कृति है। आदिवासी लोग है इस धरती के मूल निवासी। लेकिन सभ्य कहे जानेवाले मानव जाति धरती के इन मूल जाती पर कर रहे शोषणों की कथा सभ्य मनुष्य के इतिहास की शुरुआत से हुई है। समकालीन संदर्भ में शोषण उसकी चरमसीमा तक पहूँचाता है। उदारीकरण और बाज़ारीकरण की नीति आदिवासियों के जीवन पद्धति पर गहरा बदलाव और नाश पहूँचाती है। मुक्त बाज़ार और मुक्त व्यापार के नाम पर हो रहे मुनाफा और लूट का खेल आदिवासियों को अपने जंगल और ज़मीन से भगाते हैं। आंकडे के अनुसार पिछले दस सालों में लगभग दस

लाख से अधिक आदिवासी को अपने जीवन शैली को छोडकर चलना पडे। विकास के नाम पर अपने पैतृक क्षेत्रों से विस्थापित किए गए इन लोगों के भविष्य और उनके संस्कृति के प्रति चिंतित होना अवश्य है। साम्राज्यवादी शक्तियाँ और सत्ता के गठजोड के साथ महाजनी शोषण, पुलीस और प्रशासकों की अनदेखा आदि आदिवासियों की स्थिति को ऐसा बना दिया है कि बिना जड़ के पेड़ जैसी। लेकिन धीरे-धीरे आदिवासी लोग में अपने अस्तित्व, प्रांत और सुरक्षा के लिए आवाज़ उठाने की चेतना भर गयी। इस चेतना का प्रतिफलन है आदिवासी साहित्य। इसमें आदिवासियों का जीवन, समाज और दर्शन, संस्कृति, भाषा, पीडाएँ, शोषण, विद्रोह आदि का प्रस्तुतीकरण होता है। इसलिए कहा जाता है कि आदिवासी साहित्य आत्मकथात्मक साहित्य है। अपने अधिकारों से वंचित होकर जंगलों में रहनेवाले इनकी प्रश्नों का भरमार है आदिवासी साहित्य। रमणिका गुप्ता आदिवासी साहित्य के बारे में इस प्रकार लिखा है "दूसरों द्वारा अपने दुःख की चर्चा की बजाय, अपने दुःख व्यक्त करने की चेतना के साथ सदियों की चुप्पी तोडकर प्रस्थापितों द्वारा घेरे गए दायरे और लक्ष्मण रेखाएँ तोडने की चेतना।"[1] आदिवासी जीवन को गहराई में प्रस्तुत करने में आदिवासी और गैर आदिवासी कहानीकार शामिल है। अरुण प्रकाश की 'बेला एक्का लौट रही है' में आदिवासी होने के कारण नौकरी के क्षेत्र में भेदभाव का शिकार होनेवाली आदिवासी लड़की की कथा प्रस्तुत करती है। विजय की 'जंगल का सपना' नामक कहानी में विकास के नाम पर विस्थापित होने पडे आदिवासी लोगों की जीवन गाथा प्रस्तुत करती है।

1. रमणिका गुप्ता - आदिवासी साहित्य यात्रा - पृ. 6

सुरेन्द्र नायक की 'समायोजन' नामक कहानी में भी विस्थापित होने के लिए विवश आदिवासी समुदाय को प्रस्तुत करती है। संजीव की 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'प्रेतमुक्ति', मनीष राय की 'शिलान्यास', राकेश वत्स की 'अवशेष', कैलाश वनवासी की 'सुरक्षित-असुरक्षित' आदि इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है।

1.4.4.6 पारिस्थितिक विमर्श

प्रकृति और पर्यावरण के प्रति सजगता समकालीन कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। पर्यावरण वास्तव में संपूर्ण जीवन जगत् को चित्रित करनेवाले अनेक घटकों का सामूहिक नाम है। वर्तमान समाज भूमण्डलीकरण, बाज़ारवाद, उदारीकरण के दौर से गुज़र रहा है। यह धरती के शोषण के पीछे का प्रमुख कारण है। समकालीन हिंदी कहानियों में प्रकृति के जीव जंतुओं के शोषण, प्रकृति और मनुष्य के बीच का संबन्ध, पर्यावरण प्रदूषण के मूल कारण आदि पर बडी सजगता से विचार किया गया है। इस संदर्भ में राजेश जोशी का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उनकी 'कपिल का पेड', 'मैं हवा पानी परिन्दा कुछ नहीं' आदि कहानियों में प्रकृति और मनुष्य के पारस्परिक संबन्ध के बदले हुए रूप को व्यक्त किया गया है। स्वयंप्रकाश की 'बलि', 'कहाँ जाओगे सतीश', बटरोही की 'कहीं दूर जब दिल ढ़ल जाए' आदि कहानियों में स्वार्थांध मनुष्य के द्वारा प्रकृति का शोषण का चित्र प्रस्तुत है। इसके अतिरिक्त संजीव की 'अवरोहण', रवीन्द्र कालिया की 'सुन्दरी', मधु कांकरिया की 'बदबू', अमरकांत की 'जले हुए शहर' आदि कहानियाँ भी समाज को पर्यावरण बोध की सजगता प्रदान करती है।

1.4.4.7 लोक चेतना

हिंदी के लोक शब्द अंग्रेज़ी के फोक शब्द के समानार्थी है। वेदों में अशिक्षित जनता का संकेत करने के लिए इस शब्द का प्रयोग किया है। लेकिन आगे इस अवधारणा तो बदल दिया है। अब फोक माने सर्वसाधारण जनता के रीति-रिवाज़, रहन-सहन, ज्ञान, अंधविश्वास आदि को संकेत देनेवाला शब्द है। डॉ. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी लोक शब्द की परिभाषा इस प्रकार दिया है "लोक शब्द के अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है। ये लोग नगर के परिष्कृत, रुचि संपन्न, सुसंस्कृत समझ जानेवाले लोगों की अपेक्षा सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचिवाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है, उनको उत्पन्न करते हैं।"[1] लोक चेतना में लोक जीवन से संबन्धित आचार-विचार, विश्वास, प्रथा, धार्मिक परंपरा, रीति-रिवाज़, अनुष्ठान, व्रत, त्योहार, कला, नीति आदि सभी पूर्ण रूप से समाहित है। इसलिए कहते हैं कि लोक चेतना किसी भी समाज की मूल परिचालक है। समकालीन कहानीकार अपनी कहानियों में लोक चेतना, लोक संस्कृति, लोक भाषा आदि सारी की सारी पहलुओं की सच्चा चित्र पाठकों के सामने प्रस्तुत करने की कोशिश करते हैं। उदय प्रकाश की 'पॉल गोमरा का स्कूटर', स्वयं प्रकाश की 'संधान', 'बलि', मृदुला गर्ग की 'कली में सत',

---

1. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी - विचार और वितर्क - पृ. 196

संजीव की 'पिशाच', 'तीन साल सफरनामा', काशीनाथ सिंह की कहानी 'संशय मोहन की' आदि इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है।

1.4.4.8 वृद्ध विमर्श

उपभोगवादी संस्कृति के कारण हमारी संस्कृति और मूल्यों में बदलाव आ गया है। इसलिए मानवीयता का भाव आज की पीढ़ी में देख नहीं सकते। धन पर केन्द्रित आज के माहौल में संबन्धों को कोई स्थान नहीं है। आज की उपभोग की संस्कृति में मानव को सिर्फ एक वस्तु के रूप में मानते हैं। उपयोग करना और मुनाफा उठाने का साधन के रूप में मनुष्य को मानते हैं। उपयोग नहीं है तो फेंक करता है। "आज का भारतीय मानस उपभोक्ता संस्कृति का समाज हो गया है। इससे हमारा मनुष्य समाज में एक वस्तु के रूप में बदल चुका है।"[1] उपयोगिता की इस संस्कृति में रिश्तों को भी इस कसौटी पर आँकता है। इस कसौटी में सबसे पहले निष्कासित हो जाता है वृद्ध लोग। नयी पीढ़ी की नज़र में अपने जीवन गति को रुकने वाला एक बाधा मात्र है वृद्ध लोग। नई पीढ़ी की इस नकारात्मक दृष्टि वृद्ध लोगों की जीवन को नरक बनाता है। इसलिए मानव जीवन की अनिवार्य अवस्था होने पर भी इसे स्वीकार करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। इसे सिर्फ एक अभिशाप माना जाता है। समकालीन कहानीकारों ने वर्तमान समाज की इस बदलती हुई मानसिकता का चित्रण अपनी रचनाओं में बडी तन्मयता से किया है। वृद्ध जनों का अकेलापन, युवा पीढ़ी के साथ उनका वैचारिक संघर्ष आदि को वाणी

---

1. त्रिभुवननाथ शुक्ल - साक्षात्कार, मार्च 2005 - पृ. 75

देने में सूर्यबाला, अचला शर्मा, रणजीत कुमार, ममता कालिया आदि समकालीन कहानीकारों ने अधिक ख्याति प्राप्त की। सूर्यबाला की 'निर्वासित' नामक कहानी में सेवा निवृत्त होने पर घरवालों के लिए बोझ बन जानेवाले पिता का आत्मसंघर्ष को चित्रित किया गया है। अचला शर्मा की 'खलनायक', रणजीत कुमार की 'बरामदा', ममता कालिया की 'उनका जाना', 'माँ', 'आज़ादी' आदि कहानियों में वृद्ध जनों की आत्मपीड़ा, संघर्ष, अकेलापन आदि को सफल ढ़ंग से चित्रित किया गया है। शारीरिक और मानसिक समस्याओं के साथ आर्थिक समस्या भी वृद्ध लोगों की स्थिति को घोर कष्टपूर्ण बनाता है। राजी सेठ की 'उतनी दूर', काशीनाथ सिंह की 'अपना रास्ता लो बाबा', शीतांशु भरद्वाज की 'पंडित मनीमाधव' मृदुला गर्ग की 'लौटना और लौटना' आदि इसके सशक्त उदाहरण हैं।

1.4.4.9 बाल विमर्श

बच्चों के लिए लिखा गया साहित्य है बाल साहित्य। बच्चों को मनोरंजन करने के साथ-साथ उन्हें चरित्रवान बनाना भी बाल साहित्य का उद्देश्य है। कहते हैं कि समस्त साहित्य का मूल बाल साहित्य है। क्योंकि विश्व के सारे महान रचनाएं बाल साहित्य से विकसित हुआ है। आज बाल साहित्य की आवश्यकता बढ़ती जा रहा है। क्योंकि आज के बदल रहे वातावरण में संबन्धों में बिखराव आ गया है। पुराने ज़माने में लोग दादी-नानी से कहानियाँ सुनकर अपनी कल्पना शक्ति और चरित्र को रूपायित करती थी। लेकिन आज अणुपरिवारों में दादी या नानी की उपस्थिति ही नहीं और माँ-बाप को भी बच्चों से बातों करने की समय भी नहीं है।

ऐसी संदर्भ में बाल साहित्य की ज़रूरत बढ़ती है। बाल कहानी, बाल नाटक, बाल कविता आदि कई विधाएँ होने पर भी बाल कहानी को विशेष महत्व होती है। बच्चों को अधिक आकर्षित करने में, मनोरंजन करने में, और बच्चों के मन में अटूट प्रभाव डालने में अन्य विधाओं की अपेक्षा बाल कहानी काफी सक्षम है। बाल जीवन पर आधारित कहानियों का एक लंबी पंक्ति ही होती है। इसमें प्रमुख हैं उषा यादव की 'मन की बात', मालती जोशी की 'पराजय', विवेक राय की 'कच्चा गुलाब', राजेश जोशी की 'सांग', शांत वर्मा की 'शुरुआत', बलराम की 'पालन हारे', संजय की 'अंज़ाद का सुख', मन का भय', प्रकाश मनु की 'तितली का घर', 'कहो कहानी पापा है' आदि।

1.5 समकालीन कहानी के प्रमुख हस्ताक्षर

समकालीन कहानीकार अपने समय और अपने समय की समस्याओं के प्रति अत्यन्त सजग हैं। यह सजगता कहानीकारों को जीवन की सच्चाई से निकट संबन्ध स्थापित कराती है। समकालीन संदर्भ में कहानीकारों की एक लंबी परंपरा है। इसमें अधिकांश कहानीकार बहुचर्चित भी हैं। इन सभी कहानीकारों पर विचार करना संभव नहीं है। इसलिए आगे इनमें कुछ प्रमुख कहानीकारों पर विचार करेंगे।

1.5.1 उदय प्रकाश

उदय प्रकाश समकालीन हिंदी साहित्य जगत् के चर्चित कथाकार है। अपनी विलक्षण प्रतिभा के साथ उन्होंने अपनी पूर्ववर्ती लेखकों से और समकालीन रचनाकारों से भी अलग स्थान प्राप्त किया है। उनके अन्दर कवि और कथाकार

दोनों बसते हैं। लेकिन कथाकार के रूप में उन्हें विशेष ख्याति प्राप्त की है। उन्होंने अपनी कहानियों के द्वारा कहानी की प्रचलित धारणाओं को तोडने का सशक्त प्रयास किया है। कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर उनकी कहानियों में मौलिकता और नवीनता है। नवउपनिवेशवाद और उसके हथियार भूमण्डलीकरण का परिणाम, भारतीय समाज और संस्कृति पर उसका प्रभाव आदि उनकी कहानियों का मुख्य विषय है। 'दयियाई घोडा', 'तिरिछ', 'और अंत में प्रार्थना', 'पॉल गोमरा का स्कूटर', 'दत्तात्रेय के दुख', 'अरेबा-परेबा', 'मैंगोसिल' आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह है। 'तिरिछ' नामक कहानी वर्तमान समय में विलुप्त होती जा रही मानवीय संवेदना का सशक्त अभिव्यक्ति है। पूँजीवाद, बाज़ार, उपभोक्तावाद आदि की तानाशाही में फँस गये निम्न, मध्यवर्गीय लोगों की त्रासदी का मनछुआ वर्णन है 'पॉल गोमरा का स्कूटर' में। अभिशप्त जीवन बिताने की आम आदमी की विवशता पर उन्होंने 'मैंगोसिल' नामक कहानी में प्रकाश डाला है। इस कहानी के द्वारा उदय प्रकाश यह व्यक्त करना चाहता है कि आर्थिक महामारी गरीबों को किस तरह जकड़ने हैं और दिल्ली जैसे महानगर में जिए गरीब आम जनता किस प्रकार अपनी परेशानियाँ के नीचे कुचलकर मरना पडता है। 'और अंत में प्रार्थना' नामक कहानी में वर्तमान समय के राजनीतिक और शासन तंत्र पर प्रकाश डाला है। उदय प्रकाश ने अपनी कहानियों के द्वारा जीवन के सभी परिदृश्यों को अपनी तरीके से प्रस्तुत किया है। भौतिकता की अंधी दौड़ में फँसे मानव की मानसिकता का बिखराव उनकी कहानियों का केन्द्र है।

1.5.2 पंकज बिष्ट

हिंदी साहित्य के प्रतिष्ठित लेखक है पंकज बिष्ट। कहानीकार, उपन्यासकार, पत्रकार, समालोचक आदि के रूप में उन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की। कई पत्रिकाओं में संपादक के रूप में काम करने के बाद अब दिल्ली से प्रकाशित साहित्यिक पत्रिका 'समयांतर' का संपादन और संचालन कर रहा है। उनकी कहानियाँ साहित्य जगत् में बहुचर्चित हैं। 'अंधेरे से असगर वजाहत तक', 'बच्चे गवाह नहीं हो सकते', 'पन्द्रह जमा पच्चीस', 'टुंड्रा प्रदेश तथा अन्य कहानियाँ' उनके प्रमुख कहानी संग्रह है। उन्होंने अपनी कहानियों में आज के निष्क्रिय और तटस्थ नागरिक पर विचार किया है। उनके अनुसार यह तटस्थता ही भारतीय नागरिक को उपभोक्तावाद का सबसे अच्छे ग्राहक बनता है। मीडिया के नियंत्रण में फँसे आम आदमी के जीवन का पर्दाफाश कहीं व्यंग्य के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया है। बदलते समाज की तेज़ रफ्तार और संस्कृति की संकट की ओर उनकी कहानियाँ पाठकों का ध्यान आकर्षित करती हैं।

1.5.3 काशीनाथ सिंह

काशीनाथ सिंह प्रगतिवादी विचारधारा से प्रभावित समकालीन कहानीकार हैं। इसलिए उनकी कहानियों के केन्द्र में आम आदमी है। व्यवस्था और सत्ताधिकारियों का शोषण, पीडाएँ, गिरती नैतिकता, मूल्यों की टकराहट, संबन्धों में आए बदलाव आदि पर उनकी कहानियों में विशेष रूप से चर्चा हुई है। उनकी कहानियों की विशेषता पर ध्यान देने हुए प्रह्लाद अग्रवाल ने इस प्रकार लिखा है "काशीनाथ जी

की बहुत बडी विशेषता है - भ्रष्ट परिवेश के साथ समझौता न कर पाना। वे बडी सहजता से बहुत गहरी बात कर जाते हैं। यही सहजता उनकी भाषा में भी है, जो अपने आस-पास के जीवन से भी बेहिचक ले ली गई है।"[1] 'एक बूढ़े की कहानी', 'सदी का सबसे बडा आदमी', 'वे तीन घर', 'संकट', 'कस्ब, जंगल और साहब की पत्नी', 'मानवीय हॉम मिनिस्टर के नाम' आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

1.5.4 दूधनाथ सिंह

'सपाट चेहरेवाला आदमी', 'सुखांत', 'प्रेमकथा का अंत न कोई', 'माई का शोकगीत', 'धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे', 'त फू', 'जलमुर्गियों का शिकार' आदि कहानियों के द्वारा समकालीन कहानी जगत् में दूधनाथ जी विशेष ख्याति प्राप्त की। आज के जीवन की विसंगति, तनाव, संवेदनहीनता और व्यर्थता को व्यक्त करने का प्रयास उन्होंने किया है। जटिल जीवन यथार्थ को नूतन शिल्प से व्यक्त कर समकालीन कहानीकार के रूप में उन्होंने अपनी पहचान बना ली है। उनकी गिनती हिंदी के शीर्षस्थ लेखकों और चिंतकों में है।

1.5.5 गिरिराज किशोर

शहरी जीवन की विसंगतियों के उद्घाटित और व्यवस्था के खोखलेपन को उजागर करनेवाले कहानीकारों में गिरिराज किशोर अग्रणी हैं। उनकी कहानियाँ समकालीन शहरी जीवन का दस्तावेज़ हैं। उनकी प्रमुख कहानी संग्रह है 'नीम के फूल', 'चार मोती बेआब', 'पेपरवेट', 'रिश्ता और अन्य कहानियाँ', 'वल्द रोजी',

---

1. प्रह्लाद अग्रवाल - हिंदी कहानी सातवें दशक - पृ. 43

'शहर-दर-शहर', 'हम प्यार कर लें', 'यह देह किसकी है'। उन्होंने अपनी कहानियों में समकालीन शहरी जीवन की कुरूपता, यंत्रणता, अमानवीयता को प्रस्तुत करने के साथ-साथ शहर और गाँव के बीच मानव के मन में उत्पन्न द्वंद्व को भी प्रस्तुत किया है। साहित्य जगत् के उनके योगदान के प्रति भारत सरकार ने उन्हें पद्मश्री पुरस्कार देकर सम्मानित किया है।

1.5.6 संजीव

प्रतिभा धनी लेखक संजीव की रचनाधर्मिता की शुरुआत कविता से हुई है। 'दीपावली', 'होली', 'शहीदों के नाम', 'गाड़ीवान', 'रेगिस्तान' आदि उनके प्रमुख कविताएँ हैं। उन्होंने प्रकृति, गाँव और मानव को अपनी कविताओं के केन्द्र में रखा है। लेकिन समकालीन हिन्दी साहित्य जगत् में संजीव की ख्याति कथाकार के रूप में है। अपने विचारों की अभिव्यक्ति की बेहत्तर रास्ता के रूप में उन्होंने कथा साहित्य को चुना है। संजीव का कथन है "एक कथाकार के रूप में महसूस करता हूँ कि कहानी जहाँ खतम होती है, वहीं से उसकी वास्तविक शुरुआत होती है। जबतक विचार कार्य में नहीं ढ़लते, कहानी का उद्देश्य पूरा नहीं होता।"[1] इस चुनौति को पार करने में संजीव पूर्ण रूप से सफल हुई है। अबतक संजीव के चौदह कहानी संग्रह प्रकाशित हुए है। 'तीन साल सफरनामा', 'आप यहाँ है', 'भूमिका और अन्य कहानियाँ', 'दुनिया की सबसे हसीन औरत', 'प्रेतमुक्ति', 'प्रेरणास्रोत और अन्य कहानियाँ', 'ब्लौक हॉल', 'खोज', 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ',

---

1. संजीव - सर्कस की अपनी बात - पृ. 9

'गति का पहला सिद्धांत', 'गुफा का आदमी', 'आरोहण', 'गली के मोड़ पर सूना सा दरवाज़ा', 'डायन और अन्य कहानियाँ'। उनकी कहानियाँ वर्तमान जीवन को नियंत्रित करनेवाली पूरी व्यवस्था पर तीखा प्रहार किया है। उन्होंने अपनी कहानियों में पुलीस, न्याय, प्रशासन, शिक्षा आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है। साथ ही किसानों, मज़दूरों, निम्न मध्यवर्गीय लोगों, आदिवासियों और स्त्रियों पर होनेवाले शोषण का चित्रण कर वर्तमान विकट परिस्थितियों के बारे में सोच विचार करने के लिए पाठकों को मज़बूत करती है।

1.5.7 मधुकर सिंह

मधुकर सिंह की कहानियों में आधुनिकताबोध की परख और पहचान होती है। 'पूरी सन्नाटा' और 'पहला पाठ' नामक कहानी संग्रहों में मधुकर सिंह ने व्यंग्य शैली का सहारा लेकर प्रशासन के सभी स्तरों पर व्याप्त भ्रष्टाचार का पर्दाफाश किया है। 'भाई का जख्म', 'हरिजन सेवक', 'आसाढ़ का पहला दिन', 'माइकल जैक्सन की टोपी', 'पाठशाला' आदि उनका अन्य कहानी संग्रह हैं। उनकी कहानियों में व्यवस्था विरोध और विद्रोह की प्रवृत्ति उभरी है। इसके साथ महानगरीय बोध के सभी तत्व-संत्रास, ऊब, निराशा, विवशता, तनाव, टूटन और बिखराव आदि उनकी कहानियों में देख सकते हैं।

1.5.8 विजयमोहन सिंह

विजयमोहन सिंह के चार कहानी संग्रह - 'टट्टू सवार', 'एक बंगला बने न्यारा', 'शेरपुर पन्द्रह मील', 'गमे हस्ती का हो किससे' - अभी तक प्रकाशित हुए

हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के गाँवों के बदलते माहौल और शोषण की विभिन्न स्थितियों को चित्रित किया है। इसके साथ अभिजात वर्ग की छद्म आधुनिकता, दिखावे की प्रवृत्ति, संचार माध्यमों की कार्य पद्धति का खोखलापन, युवा लोग की दिशाहीनता, बेकारी, एकाकीपन, व्यर्थताबोध, विसंगति आदि पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है।

1.5.9 नासिरा शर्मा

हिंदी की वरिष्ठ लेखिका नासिरा शर्मा जी अपनी कहानियों में समय और सत्य की गवाही देकर इन्सानियत की तलाश करती है। उन्होंने अपनी कहानियों में विभिन्न प्रकार की समस्याओं से पीडित जनता के विशेषकर भारतीय समाज की स्त्री जीवन के ज्वलंत समस्याओं का दास्तान को अपनी कलम से घोषित किया है। उन्होंने अपनी कहानियों के बारे में इस प्रकार लिखा है "सच्चाई यह है कि न मैं सीमा रेखाओं को पहचानती हूँ और न ही मेरा विश्वास है उन पर। मैं तो केवल दो हाथ, दो पैर, दो कान, दो आँखें, एक दिल और दिमागवाले इन्सान को पहचानती हूँ। जहाँ भी जिस सीमा, जिस परिधि में जीवन की संपूर्ण गरीमा के साथ मिल जाए, वही मेरी कहानी का जन्म होता है।"[1] उनकी प्रमुख कहानी संग्रह हैं - 'पत्थरगली', 'शामी कागज़', 'संगसार', 'इब्नेमरियम', 'सबीना के चालीस चारे', 'खुदा की वापसी', 'इन्सानी नस्ल', 'दूसरा ताजमहल', 'बुतखाना और शीर्ष कहानियाँ'। उनकी अधिकतर कहानियों का परिवेश मुस्लीम जनता की जीवन के इर्द-गिर्द है।

---

1. नासिरा शर्मा - शामी कागज़ - दो शब्द से

हिंदी, उर्दू और फारसी भाषा की पकड़ से उनकी रचनाएँ हिंदी साहित्य के इतिहास में एक अलग स्थान ले चुकी हैं।

1.5.10 चित्रा मुद्‌गल

समकालीन लेखिकाओं में बहुचर्चित नाम है चित्रा मुद्‌गल। 'भूख', 'जहर ठहरा हुआ', 'लाक्षागृह', 'अपनी वापसी', 'इस हमाम में', 'ग्यारह लंबी कहानियाँ', 'जिनावर', 'लपटें', 'जगदंबा बाबू गाँव रहे हैं', 'मामला आगे बढ़ेगा अभी', 'केंचुल', 'आदि-अनादि' आदि उनकी प्रमुख कहानी संग्रह है। उन्होंने अपनी कहानियों में नौकरीपेशा और निम्नवर्ग की स्त्रियों की ज़िन्दगी को चित्रित किया है। 'केंचुल' की कमलाबाई, 'लाक्षागृह' की सुनीता, 'अपनी वापसी' की शकुन, 'भूख' की लक्ष्मा आदि इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। स्त्री के प्रति होनेवाले परंपरागत धारणाओं को तोडकर अपने पैरों पर स्वाभिमान के साथ खडे होने वाले स्त्रियों को उन्होंने इनमें चित्रित किया है। साथ ही साथ बदलते हुए परिवेश में स्त्रियों पर होनेवाले शोषण के हर पहलुओं को उन्होंने निर्भीक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है।

1.5.11 मृदुला गर्ग

आठवें दशक से लेकर हिंदी साहित्य जगत् में एक सर्वमान्य जगह पा चुकी कहानीकार है मृदुला गर्ग। नाटककार, कहानीकार, उपन्यासकार, अनुवादक आदि के रूप में उन्होंने ख्याति प्राप्त किया है। अभी तक उनकी सोलह कहानी संग्रहों का प्रकाशन हुआ। वे हैं 'कितनी कैदें', 'टुकटा-टुकटा आदमी', 'डाफोडिल जल रहे हैं', 'ग्लेशियर से', 'उर्फ सैम', 'दुनिया का कायदा', 'शहर के नाम',

'चर्चित कहानियाँ', 'समागम', 'मेरे देश की मिट्टी', 'अहा', 'हरि बिंदी', 'स्थगित कल', 'जूते के जोड', 'गोभी का तोड', 'संगति-विसंगति', 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ', 'स्त्री मन की कहानियाँ'। उन्होंने अपनी कहानियों में समसामयिक विषयों पर गहरा पड़ताल किया है। स्त्री को एक उपभोग वस्तु के रूप में मानने की पुरुष की मानसिकता का चीरफाड़ कर स्त्री की व्यक्तित्व और अस्मिता की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने अपनी कहानियों में आवाज़ उठाई। स्त्री की समस्याओं को प्रस्तुत करने के साथ ही साथ अन्य सामाजिक समस्याओं व आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों को भी उन्होंने कहानियों के केन्द्र में लाया है। भोपाल गैस ट्रैजडी पर आधारित 'विनाशदूत', इंदिरा गाँधी हत्याकांड पर आधारित 'अगली सुबह', अवसरवादी राजनीति का पर्दाफाश करनेवाला 'टोपी', 'क्षुधा पूर्ति' आदि इसके उदाहरण हैं।

1.5.12 मृणाल पाण्डे

समकालीन महिला लेखन की सशक्त हस्ताक्षर है मृणाल पाण्डे। उन्होंने अपनी रचनात्मक उपस्थिति से गद्य साहित्य को समृद्ध किया है। कहानी के क्षेत्र में उनका स्थान महत्वपूर्ण है। उनकी कहानियों का केन्द्र बिन्दु नारी होने पर भी अभी सामाजिक पहलुओं पर उन्होंने प्रकाश डाला है। समाज और संस्कृति में आये बदलाव, विसंगति आदि उनकी कहानियों में देख सकता है। उनकी कहानियाँ पाठकों के सामने कई मुद्दे को प्रस्तुत कर पाठकों को सोचने के लिए बज़बूत बनाती है। मृणाल पाण्डे खुद अपनी कहानियों के बारे में इस प्रकार लिखा है कि "हर कहानी या उपन्यास घटनाओं-पात्रों के ज़रिए सत्य से एक अंशिक और

कुतूहलभरा साक्षात्कार होता है। साहित्य में हमें जीवन जीना सिखाने की बजाय टुकटा-टुकटा दिखाता है, वे तमाम नरक-स्वर्ग, वे राग-विराग, वे सारी उदारता और संकीर्णता भरे मोड, जिनका सम्मिलित नाम मानव जीवन है। जो साहित्य उघाडता है, वह अंतिम सत्य या सार्वभौम आदर्श नहीं, बहुस्तरीय यथार्थ होता है।"[1] दरम्यान, शब्दबेधी, एक नीच ट्रैजडी, एक स्त्री का विदागीत, यानी की एक बात थी, बचुली चौकीदारिन की कढ़ी, चार दिन की जवानी तेरी आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

1.5.13 चंद्रकांता

प्रगतिशील चेतना से युक्त चन्द्रकांता ने सातवें दशक के उत्तरार्ध से ही कहानी लेखन आरंभ किया। उनके अनुसार "लेखन जहाँ भोगे हुए यथार्थ की अभिव्यक्ति है, वही अनुभव किए सत्य की भी।"[1] उनकी कहानियाँ इस कथन का सही पहचान है। 'सलाखों की पीछे', 'गलत लोगों के पीछे', 'पोशनूल की वापसी', 'दहलीज पर न्याय', 'सूरज उगने तक', 'काफी बर्फ' आदि उनके प्रमुख कहानी संग्रह हैं। उनकी अधिकांश कहानियों में पश्चमी सभ्यता और उपभोग संस्कृति के प्रभाव से संबन्धों में आए परिवर्तन, प्रेम की जटिलता, पति-पत्नी संबन्धों के बीच का संघर्ष, महानगरीय जीवन का खोखलापन आदि पर आधारित है। साथ ही साथ संघर्ष की स्थिति में निराश न होकर सपना देखने की प्रेरणा और आगे बढ़ने की ताकत उनकी कहानियों से मिलती है।

---

1. मृणाल पाण्डे - यानी की एक बात थी, पहले फ्लैप से
2. चन्द्रकांता - सूरज उगने तक, अपने बारे में

1.5.14 मैत्रेयी पुष्पा

समकालीन कहानी के सशक्त और सक्रिय लेखिकाओं में एक है मैत्रेयी पुष्पा। उन्होंने अपनी कहानियों में स्त्री जीवन की सारी की सारी समस्याओं को उजागर करने की कोशिश की है। स्त्री मन की सूक्ष्म अभिव्यक्ति उनकी कहानियों की पहचान है। स्त्री शरीर और मन की भावनाओं और चाहतों को अभिव्यक्त करके तत्कालीन पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति उन्होंने संघर्ष किया है। 'ललमनियाँ', 'चिन्हार', 'गोमा हँसती है', 'पियरी का सपना', 'आक्षेप', 'फैसला', 'रास', 'मुस्कुराती औरतें', 'छाँह' आदि उनका प्रमुख कहानी संग्रह हैं। उनकी स्त्री चेतना कितना मज़बूत और संपन्न है इसका सशक्त उदाहरण है उनकी कहानियाँ। उन्होंने अपनी कहानियों के ज़रिए स्त्री को समाज में प्रतिष्ठा मिलने की सतत् कोशिश किया है।

1.5.15 ममता कालिया

समकालीन हिंदी साहित्य में अपने मौलिक और प्रखर लेखन से अपनी पहचान बनानेवाले साहित्यकारों में ममता कालिया अग्रणी हैं। उनका मानना है कि जीवन की यथार्थ स्थिति को चित्रित करना साहित्य का दायित्व होना चाहिए। इसलिए उन्होंने अपने साहित्य में आदर्श की अपेक्षा यथार्थ को प्रमुखता दी है। वास्तव में ममताजी ने हिंदी महिला साहित्य में यथार्थपरक, समाजोन्मुखी लेखन की नींव डाली। कहीं देखे गए और भोगे हुए संदर्भों और स्थितियों को उन्होंने अपने साहित्य में प्रस्तुत किया है। ममताजी के साहित्य पर परिवेश का प्रभाव पूरी तरह पडा है। उनके जीवन में ईमानदारी, सहानुभूति, संवेदनशीलता, भावुकता आदि की जो झलक मिलती है, वह उनके साहित्य में भी देख सकते हैं। दरअसल उनका

साहित्य उनके जीवन का आइना है। आगे उनके संक्षिप्त जीवन परिचय और रचना संसार का परिचय प्रस्तुत किया जाएगा।

1.5.15.1 जीवन परिचय

ममता कालिया का जन्म 2 नवंबर 1940 में उत्तर प्रदेश के वृन्दावन में हुआ। उनकी माँ का नाम इंदुमति और पिता का नाम विद्याभूषण अग्रवाल था। उनके पिताजी हिंदी और अंग्रेज़ी साहित्य के विद्वान और रचनाकार थे। उनके चाचाजी भरतभूषण अग्रवाल हिंदी के चर्चित कवि भी थे। इसलिए साहित्य जगत् का परिचय ममताजी को परिवार से ही मिली। साहित्य सृजन में ध्यान देने के लिए ममताजी के चाचाजी का यह आदेश इसका प्रमाण है - "मन में कुछ आये तो लिखो और फाडो। लिखो और फाडो। गोष्ठियों में अभी से जाने की क्या जल्दी मची हैं। कहीं रचना भेजनी है तो संपादक को चिट्ठी लिखने की ज़रूरत नहीं। बस रचना पर लिखो 'प्रकाशनार्थ'। बीस पैसे का टिकट लगाओ और बुक पोस्ट कर दो।"[1] इस प्रकार के आदेशों से पनपने के कारण ममताजी की साहित्यिक नींव काफी सक्षम बन गयी है। साथ ही साथ कठिन जीवन यथार्थों का सामना कर उन्होंने अपनी लेखन की क्षमता को और भी सशक्त बनाया। ममताजी साहित्य सृजन के प्रेरणास्रोत के रूप में इन जीवन संघर्षों और यथार्थों को मानती है। इसलिए ममताजी स्वयं इस प्रकार कहती है - "लेकिन असली विरासत मैं आज भी जीवन की टक्करों को मानती हूँ।"[2] अपने पिता के तबादला के कारण ममताजी

---

1. माला बैद - स्त्री गाथा - पृ. 149
2. वही

को बंबई, पूना, इन्दौर आदि कई शहरों में पढ़ने का अवसर मिला था। इस प्रकार विभिन्न नगरों के परिवेश और लोगों से मिलजुलकर उनकी अनुभव जगत् विशाल बन गया। ममताजी इसके बारे में लिखा है कि "बचपन में पापा के तबादलों ने हमें भारत दर्शन करवाया, बडे होने पर ज़िन्दगी की ठोकरों ने घाट-घाट का पानी पिलवा दिया।"[1] इन परिवेशों और संघर्षों को लेकर ममताजी ने अपने कथानक का ताना-बाना पिरोया है।

ममताजी ने दिल्ली विश्वविद्यालय से अंग्रज़ी में एम.ए. किया। पढ़ाई के बाद उन्होंने 1963 से 1965 तक दौलत राम कॉलेज, दिल्ली में अंग्रेज़ी की अध्यापिका के रूप में काम किया और 1966 से 1970 तक एस.एन.डी.टी. महिला विश्वविद्यालय मुम्बई में अध्यापन का कार्य किया। इसके बाद 1973 से लेकर 2001 तक महिला सेवासदन डिग्री कॉलेज, इलाहाबाद में प्राचार्य के रूप में उन्होंने काम संभाला था। 2003 तक भारतीय भाषा, कलकत्ता की निर्देशक रही थी। वर्तमान में नई दिल्ली में रहकर स्वतंत्र लेखन का कार्य में मग्न रहने के साथ महात्मागाँधी अंताराष्ट्रीय विश्वविद्यालय की त्रैमासिक पत्रिका 'हिंदी' की संपादिका भी है।

ममताजी ने अंग्रेज़ी भाषा और साहित्य में एम.ए. लिया और कॉलेज में अंग्रेज़ी ही पढ़ाती थी। उन्होंने अपनी प्रारंभिक कविताएँ अंग्रेज़ी में लिखी लेकिन आगे हिंदी को साहित्य सृजन के माध्यम से रूप में स्वीकार किया। हिंदी भाषा के

---

1. सं. अखिलेश - तद्भव, अगस्त 2004 - पृ. 193

प्रति अपनी ममता और इज्जत को व्यक्त करते हुए ममताजी इस प्रकार कहा "अंग्रेज़ी साहित्य की जानकारी ने मेरे लिए विश्व साहित्य की खिड़कियाँ खोली हैं और मेरे अन्दर लेखन कार्य के लिए बहत्तर तैयारी पैदा की है। दूसरे स्तर पर मैं यह भी कह सकती हूँ कि अंग्रेज़ी मेरे लिए जीविका की भाषा है............... अंग्रेज़ी बोलने के लिए मैं रुपये लेती हूँ, हिन्दी मेरे अन्तर्मन की भाषा है।"[1]

एक साहित्यिक गोष्ठी में ममताजी का परिचय रवीन्द्र कालिया से हो गया था। 12 दिसंबर 1964 में उनकी शादी शानदार ढ़ंग से रवीन्द्र कालिया से हुई। शादी के बाद ममताजी लेखन कार्य में तल्लीनता के साथ लगी रहीं और उनकी लेखनी से अनेकानेक रचनाएं पैदा की गयीं। उनके दो बेटे हुए-अनिरुद्ध और प्रबुद्ध। ममताजी के व्यक्तित्व के बारे में पति रवीन्द्र कालिया का वक्तव्य है, "मैंने जीवन में जब-जब जोखिम उठाया है, ममता एक चट्टान की तरह मेरे बाजू में खडी रही है। मेरे कारण उसने अपना भविष्य कई बार दांव पर लगाया है, मेरे साथ नौकरियाँ छोड़ी हैं, संघर्ष किया है, कष्ट झेले हैं। ममता ने साथ न दिया होता तो मैं कभी बम्बई न छोड़ पाता।"[2] दोनों के बीच एक अच्छा बाँध होता था। 9 जानवरी 2016 में रवीन्द्र कालिया के निधन हुआ। यह मानसिक रूप से ममताजी को तोड़ जाने पर भी लेखन के प्रति उनका चाहत उन्हें फिर भी आगे बढ़ने की प्रेरणा दी।

---

1. मला बैद - स्त्री गाथा - पृ. 149
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ, खण्ड-1 - पृ. 14

1.5.15.2 रचना संसार

ममता कालिया का रचना संसार अत्यन्त व्यापक है। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में ममता कालिया की उपस्थिति सातवें दशक से निरंतर बनी हुई है। गहरी आत्मीयता और आवेग के साथ जीवन के धड़कते क्षणों को पाठकों तक पहूँचाने में ममता कालिया सक्षम हैं। उनके साहित्य में अनुभव और अनुभूति की ऊर्जा मौजूद है। ममताजी ने कहा है "लेखन मेरे लिए अपनी बात दो टूक कहने का साहस और पर्याय है।"[1] हर रचनाकार की अपनी जीवन दृष्टि होती है और इस जीवन दृष्टि के अनुसार उसके साहित्य को अलग पहचान मिलती है। रचनाकार की इस दृष्टि से समाज में परिवर्तन आ सकता है। ममता कालिया इसका सशक्त उदाहरण है। क्योंकि उनके दृष्टिकोण की मौलिकता उनकी रचनाओं में भी देखी जा सकती है। उनके लेखन की शर्त है कि किसी भी खूबसूरत या बदसूरत बात को पूरी शिद्धत के साथ प्रस्तुत करना। इसके लिए लेखन के प्रति एक व्यापक दृष्टिकोण की ज़रूरत होती है। वे इंसान को उसके भीतर की अच्छाईयों, बुराइयों, शक्तियों और सीमाओं के साथ प्रस्तुत करती हैं। स्वयं ममताजी यों लिखती हैं - "कितना ही यथार्थ अपनी नसों पर झेला, कितना कुछ औरों को झेलते देखा, जिस वक्त जो लिखा उसमें अपनी पूरी ऊर्जा लगा दी। हर साल में लिखा, हर मूड में लिखा। अपना गुस्सा, अपना प्यार, अपनी शिकायतें, अपनी परेशानियाँ तिरोहित करने में लेखन को हरसू मददगार पाया। जो कुछ रू-ब-रू कहने में सात जनम

---

1. ममता कालिया - एक पत्नी के नोट्स - मुख पृष्ठ से

लेना पडते, वह सब रचनाओं में किसी न किसी के मुँह में डाल दिया।"[1] ममताजी समकालीन विसंगतियों और यथार्थों के प्रति अपना आक्रोश लेखन में व्यक्त करती हैं। यथार्थ की यह पहचान उन्हें समकालीन कहानीकारों में सशक्त बनाती है। ममताजी ने साहित्य की प्रायः सभी विधाओं को अपनी लेखनी के संस्पर्श से संपन्न किया। उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, बाल साहित्य आदि क्षेत्रों में अपनी रचनाओं के द्वारा ममताजी ने समृद्ध बना दिया है।

1.5.15.2.1 कविता

कविताएँ लिखकर ममताजी ने साहित्य जगत् में प्रवेश किया। सन् 1960 में ममताजी जब बी.ए. पढ़ रही थी, तभी से उन्होंने लिखना शुरू किया। उस समय में 'नई दुनिया' अखबार में उनकी पहली कविता 'प्रयोगवादी प्रियतम' छपी थी। यह अकविता थी और तब अकविता का जन्म नहीं हुआ था। उस समय यह साहस का काम था। 1963 में 'तार सप्तक' की तरह कुल सात-आठ कवियों का काव्य संग्रह 'प्रारंभ' छपा था। इसमें ममताजी की कविताएँ भी छपी थीं। उनकी अंग्रेज़ी कविताओं के संग्रह हैं - A Tribute to Papa and other poems, 'After Eight years of Marriage', 'I must write nicely now'. ममता जी के स्त्री जीवन से संबन्धित कविताओं के संकलन हैं 'खाँटी घरेलू औरत'। इसकी अधिकांश कविताएँ निम्न-मध्यवर्गीय स्त्रियों की दुःख, पीढ़ाएँ, आकुलताएँ, असंतुष्ट जीवन, प्रेम, खुशी आदि का पर्दाफाश करती है। कुछ आलोचकों ने इसे 'निम्न-मध्यवर्गीय स्त्रियों के देशज नारीवाद का घोषणापत्र' माना हैं। क्योंकि इसकी हर पंक्ति यह

---

1. ममता कालिया - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 8

व्यक्त करती हैं कि स्त्री के सपने, आकांक्षाएँ, बौद्धिक क्षमताएँ और ताकतें किस प्रकार खूँटियों पर टाँग कर घर के विरस जीवन बिताने के लिए विवश बनाती हैं। शशिभूषण ने इस कविता संग्रह के बारे में लिखा है "लेखिका ममता कालिया का कविता संग्रह 'खाँटी घरेलू औरत' पढ़ते हुए अगर सिमोन द बुआ की विश्व प्रसिद्ध पुस्तक 'द सेकेंड सेक्स' याद आ जाए तो आश्चर्य नहीं क्योंकि उनके इस संग्रह की कविताओं की एक-एक पंक्ति खाँटी घरेलू औरत के बनने की प्रक्रिया की गवाह हैं।"[1] पालतू नागरिक की तरह जीने के लिए विवश स्त्री का आक्रोश और विक्षुब्धुता ममता कालिया की इन पंक्तियों में इसप्रकार व्यक्त हुई है-

"क्या मैं कुछ कम मनुष्य हूँ
या वे
कुछ ज़्यादा
क्या मुझे हमेशा मोहलत की तरह मिलेगी ज़िन्दगी
या
बख्शीश में
जाओ
उनसे कह दो
मैं न कैदी हूँ न भिखारी
मेरा हक है
एक समूची साबुत आज़ादी।"[2]

---

1. सं. जितेन्द्र श्रीवास्तव - शोर के विरुद्ध सृजन - पृ. 242
2. ममता कालिया - खाँटी घरेलू औरत - पृ. 28

'कितने प्रश्न करूँ' ममता कालिया का चर्चित खण्डकाव्य है। सीता को केन्द्र में रखकर रचित इस रचना ने रामकथा को एक नया अर्थ दिया है। सीता के मन में उठे सवालों से इस काव्य का रूपायन हुआ है। निर्वासित, निरालंब होकर वन में बारह साल तक रही सीता के मन और मस्तक में प्रश्नों का बवंडर उठा देती है। सीता पूछती है-

"क्या अग्नि परीक्षाएँ सिर्फ स्त्री ही होनी चाहिए
क्या पुरुष सनातन रूप से पवित्र है।"[1]

समाज की शंका, पति का तिरस्कार और पुनः परीक्षाओं से प्रताडित होकर सीता धरती से आह्वान कर उसी में समा गयी। यह सीता के प्रतिरोध की साक्षात् अभिव्यक्ति है। ममताजी सीता के माध्यम से पूछे गए प्रश्न पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था की जडों को काटने में सक्षम है। बार-बार प्रताडित भारतीय नारी के अपमान के विरुद्ध सीता एक प्रतीक बनकर हमारे सामने प्रस्तुत हुई है।

1.5.15.2.2 कहानी

कविताएँ लिखकर साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करने पर भी ममताजी को कहानी के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति मिली। उन्होंने लगभग 200 के अधिक कहानियों की रचना की। बचपन में पिता की नौकरी के तबादलों के कारण, बाद में अपनी नौकरी के लिए भी उन्हें कई शहरों में जीना पडा। इसलिए उनकी रचनाओं में मानव जीवन का यथार्थ चित्रण देख सकते हैं। इसके साथ नारी के मनोविज्ञान,

1. ममता कालिया - कितने प्रश्न करूँ - पृ. 26

मानसिक विसंगतियाँ और उनसे उभरने की नारी की बेचैन भी उनकी कहानियों में मौजूद हैं। हमारे समाज के छोटी-छोटी घटनाओं और समस्याओं को भी वाचा देने का प्रयास ममताजी ने की है। उपेन्द्रनाथ अश्क ने उनकी कहानियों के बारे में लिखा है "मैं यही कह सकता हूँ कि ममता की रचनाओं में अपूर्व पठनीयता रही है। पहले वाक्य से उसकी रचना मन को बाँध लेती है और अपने साथ बहाए लिए चलती है, कुछ उसी तरह जैसे उर्दू में कुशन चंदर और हिंदी में जैनेन्द्र की रचनाएँ। यथार्थ का आग्रह न कुशन चंदर में था, न जैनेन्द्र कुमार में। लेकिन ममता रूमानी या काल्पनिक कहानियाँ नहीं लिखतीं, उनकी कहानियाँ ठोस जीवन के धरातल पर टिकी है। निम्न मध्यवर्गीय जीवन के छोटे-छोटे ब्यारों का गुंफन, नश्तर का-सा काटता तीखा व्यंग्य और चुस्त-चुटीले जुमले उसकी कहानियों के प्रमुख गुण है।"[1] अभी तक ममताजी के पन्द्रह कहानी संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं - छुटकारा (1969), सीट नंबर छह (1975), एक अदद औरत (1976), प्रतिदिन (1983), उसका यौवन (1985), जाँच अभी जारी है (1989), चर्चित कहानियाँ (1995), बोलनेवाली औरत (1998), मुखौटा (2003), निर्मोही (2004), पच्चीस साल की लड़की (2006), थिएटर रोड के कौवे (2006), काके दी हट्टी (2010), ख़ुशक़िस्मत (2010), थोडा सा प्रगतिशील (2014)। आगे के अध्यायों में इनमें संग्रहीत कहानियों का विश्लेषण किया जाएगा।

---

1. उपेन्द्रनाथ अश्क - ममता कालिया - दस प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 6

1.5.15.3 उपन्यास

ममताजी ने कहानी साहित्य को ही नहीं, उपन्यास को भी अपनी लेखनी से संपन्न किया। अबतक उनके नौ उपन्यास प्रकाशित हो चुके हैं। 1973 में प्रकाशित 'बेघर' ममता कालिया का प्रथम उपन्यास है। हमारे समाज में मौजूद दकियानूसी विचारों का पर्दाफाश है यह उपन्यास। ममताजी ने इस उपन्यास के केन्द्र में एक पुरुष पात्र को रखकर उसके द्वारा स्त्री जीवन पर विचार किया है। यही इस उपन्यास की सबसे प्रमुख विशेषता है। आज भी स्त्री की कौमार्यावस्था के संदर्भ लोग गलत धारणाएँ रखते हैं। इस उपन्यास के नायक परमजीत के विचारों का चित्रण कर ममताजी ऐसी गलत धारणाओं पर प्रश्न चिह्न उठाती हैं। परमजीत शिक्षित, नौकरीपेशा युवक है, लेकिन वह वास्तव में भीतर से दकियानूसी विचारवाला और अधकचरी मानसिकता से ग्रस्त है। इसलिए वह अपनी प्रेमिका की कुँवारीपन में शंका आने के कारण उसे छोड़कर दूसरी शादी करता है। कुँवारीपन और यौन शुचिता से संबन्धित प्रचलित सभी धारणाओं को ममताजी इसमें तोडती हैं। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उस समय ऐसा एक कदम साहस का कार्य था। कथ्य के इस बोल्डनेस के कारण इस उपन्यास को साहित्यिक जगत् में पर्याप्त यश प्राप्त हो चुका है।

इसके बाद 1975 में ममताजी का दूसरा उपन्यास 'नरक-दर-नरक' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के केन्द्र में नवविवाहित युवा दम्पति है। जीविकोपार्जन के लिए उनके संघर्ष, हीनताबोध, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के निषेध से उत्पन्न समस्याएँ और दम्पतियों के बीच के संघर्ष आदि का चित्रण इस उपन्यास में हुआ

है। ममताजी ने इस उपन्यास की पूर्वपीठिका में इस प्रकार लिखा है "पिछले तीस वर्षों में आज़ाद हिंदुस्तान में युवा वर्ग की जीवन-स्थितियाँ ज़्यादा नहीं बदली हैं। हर एक के सामने है जीवित रह सकने का संघर्ष, कार्यजगत् की यांत्रिक स्पर्धा, तालमेल के तनाव और स्वप्नों के टूटते तार। इन सबके बीच अपनी परस्परता बचाये रखना प्रेमियों के लिए वास्तव में चुनौती की तरह है।"[1] जगन और उषा की प्रेमकहानी के द्वारा ममताजी इस तथ्य का पर्दाफाश पाठकों के सामने प्रस्तुत करती हैं।

ममता कालिया का तीसरा उपन्यास है 'प्रेमकहानी'। 1980 में प्रकाशित यह उपन्यास 107 पृष्ठोंवाला एक लघु उपन्यास है। इसमें ममताजी ने जया, यशा, गिनेस, डॉ. गुप्ता आदि के द्वारा प्रेम विवाह की समस्या, प्रेम और विवाह में जाति या धर्म का हस्तक्षेप, अनमेल विवाह, पति-पत्नी के बीच का संघर्ष, परिवार के उत्तरदायित्वों में फँसी नौकरीपेशा नारियों के मानसिक तनाव का चित्रण किया है। साथ ही साथ अस्पतालों में फैला भ्रष्टाचार, डॉक्टरों की तानाशाही, कर्मचारियों का शोषण आदि पर भी विचार किया है। चालीस पृष्ठों में समाहित ममता कालिया की चौथा उपन्यास है 'लड़कियाँ'। यह आत्मकथानक शैली में लिखा गया उपन्यास है। मॉडलिंग की दुनिया को केन्द्र में बनाकर इस उपन्यास के कथ्य का निर्माण करती है। मॉडलिंग की दुनिया में स्त्री पर होनेवाला शोषण, नौकरीपेशा स्त्री की समस्यायें, मध्यवर्गीय समाज की धारणाएँ, महानगरीय जीवन, रिश्तों में अजनबीपन, इन्सानियत का मूल्य आदि पर भी उन्होंने विचार किया है।

---

1. ममता कालिया - नरक-दर-नरक - पूर्वपीठिका से

1995 में प्रकाशित 'एक पत्नी के नोट्स' उनके महत्वपूर्ण उपन्यासों में एक है। दाम्पत्य जीवन में स्त्री की स्वतंत्रता पर होनेवाले हस्तक्षेपों पर इस उपन्यास में चर्चा हुई है। संदीप और कविता के प्रेमविवाह में आयी मुसीबतों और प्रेमी से पति होने पर पुरुष के व्यवहार में आये बदलाव पर भी ममताजी ने प्रकाश डाला है। संदीप कविता पर अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए कविता की इच्छाओं को तोडता है। कविता को वह हमेशा एक सीढ़ी नीचे खडे देखना चाहता है। लेकिन कविता अपनी अस्मिता के प्रति सजग है। वह अपने पति के पीछे नहीं, कदम से कदम मिलाकर चलने पर विश्वास करती है। पुरुषसत्ता पर गर्व करनेवाले संदीप यह बर्दास्त नहीं कर सकता। इसके कारण दोनों के बीच के टकराहट से उपन्यास आगे चलता है।

ममता कालिया के बहुचर्चित उपन्यासों में एक है 2000 में प्रकाशित 'दौड़'। यह भूमण्डलीकरण, उदारीकरण आदि से उत्पन्न उत्तराधुनिक परिस्थितियों से परिचालित उपन्यास है। इसमें राकेश पांडेय और रेखा के बडे बेटा पवन की धारणा है कि जीवन की सार्थकता कैरियर की उन्नति में है। उपभोक्ता संस्कृति के उपासक पवन अपनी कैरियर की उन्नति के लिए अपना परिवार और जन्मदेश को छोड देता है। माँ-बाप का प्यार, आदर्श, मूल्य, घरेलू वातावरण आदि सब पवन की राय में निरर्थक है। कैरियर, धन, स्टाटैस के पीछे भागते-भागते पवन को मन की शांति के लिए 'मेडिटेशन' के पीछे भी भागना पडता है। पवन का छोटा भाई सघन भी सिर्फ अपनी इच्छाओं की पूर्ति को महत्व देता है। सघन अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के लिए माँ-बाप को छोडकर ताइवान चला गया। इस प्रकार आजीविकावाद

अर्थात् कैरियरिज़्म के पीछे भागती युवा पीढ़ी की मानसिकता और तिरस्कृत हुए माँ-बाप के अकेलापन की पीड़ा का हृदयहारी स्पन्दन इस उपन्यास में सुनाई देता है।

2001 में प्रकाशित 'अंधेरे का ताला' नामक उपन्यास में शिक्षण जगत की अव्यवस्था और अराजकता का खुला चित्रण किया गया है। कहता है कि यह उपन्यास ममता कालिया के अध्यापन जगत् के अनुभवों का ही सृजनात्मक रूप है। क्योंकि ममता कालिया इलाहाबाद डिग्री कॉलेज मे लंबे समय तक प्राचार्या रह चुकी थी और इस उपन्यास की प्रमुख पात्र नन्दिता भी इलाहाबाद डिग्री कॉलेज की प्राचार्या है। शिक्षा के नाम पर चली गई व्यापार, योग्यता से अधिक आर्थिक मुनाफे पर आधारित प्रवेश, शिक्षण संस्थाओं में भी जाति के आधार पर हुए बँटवारा, कुकुरमुत्ते की तरह उगे कोचिंग सेंटर आदि ममताजी इसमें खुले ढंग से प्रस्तुत करती हैं।

27वाँ व्यास सम्मान प्राप्त ममताजी का उपन्यास है 2011 में प्रकाशित 'दुक्खम सुक्खम'। ममता कालिया तीन पीढ़ियों को सामने रखकर इसकी कथावस्तु का ताना-बाना बुनती है। पहली पीढ़ी विद्यावती और लीला नत्थीमल की है। दूसरी पीढ़ी लीला, भग्गे, कविमोहन और उसकी पत्नी इंदु की है। तीसरी पीढ़ी में कविमोहन की दो बेटियाँ प्रतिभा और मनीषा आती हैं। इस उपन्यास की नैरेटर है मनीषा। तीनों पीढ़ियों की कथा होते हुए भी उपन्यास को कथानक पहली पीढ़ी की विद्यावती के संघर्ष पर केंद्रित है। इस उपन्यास में स्वतंत्रता पूर्व की राजनीतिक लडाई में स्त्रियों की भागीदारी को प्रस्तुत करने के साथ-साथ समाज और परिवार के भीतर अपना अस्तित्व बनाए रखने की कोशिश करनेवाली स्त्रियों का संघर्ष भी

प्रस्तुत किया गया है। विद्यावती गाँधीवादी आन्दोलन से जुडकर स्त्री को मनुष्य के रूप में पहचानने और मान्यता मिलने के अधिकार के बारे में सजग बन गयी। स्त्री की पढ़ाई और नौकरी का सख्त विरोध करनेवाला पति लीला नत्थीमल से विद्यावती कहती है - 'छोरी ने पढ़ाई कर सर ऊँचा किया है तुम्हारा। लड़की है तो क्या हुआ............ मैंने देख लिया न। पढ़ाई के बिना औरत की जिन्दगी नरक है।' अपनी दादी विद्यावती से प्रभावित होकर पोती मनीषा भी जीवन की संघर्षों का सामने करने का साहसी बन गयी। इस उपन्यास को स्त्री संघर्ष की महागाथा कहना अधिक समीचिन है।

'सपनों की होम डेलिवरी' ममता कालिया का सबसे नवीनतम उपन्यास है। 2016 में प्रकाशित इस उपन्यास के केन्द्र में बदलते मानवीय रिश्ते हैं। वैयक्तिक चाह और समाज की सोच के बीच के संघर्ष में दमघोटनेवाले आज की पीढ़ी को ममताजी ने इसमें प्रस्तुत किया है। रुचि और सर्वेश इसके मुख्य पात्र है। दोनों अपने-अपने अतीत के असफल विवाह और उससे उत्पन्न संघर्ष में जीते हैं। इसके साथ इनके बच्चों की मानसिकता और नये रिश्तों को बनाने की, मानव की चाह आदि पर ममताजी ने इसमें प्रकाश डाला है।

1.5.15.2.4 नाटक

ममताजी ने जिस प्रकार अपनी लेखनी कहानी, उपन्यास, कविता आदि क्षेत्रों में सफलतापूर्वक चलाई, उसी प्रकार नाटक के क्षेत्र में भी अपनी अलग पहचान बनाई है। 'आप न बदलेंगे', 'आत्मा अठन्नी का नाम है', 'आपकी छोटी

लड़की, 'यहाँ रोना मना है', 'जाने से प्यारे' आदि उनके प्रमुख नाटक हैं। 'आप न बदलेंगे' नामक नाटक में घर में मशीन के समान काम करते-करते धीमी हो जाने वाली एक मध्यवर्गीय स्त्री की कथा प्रस्तुत करती है। इसमें नायिका को पति से हमेशा घृणा और बच्चों से तिरस्कार मिलता है। ऐसी कष्टपूर्ण स्थिति में वह अपनी कल्पनाओं की जगत् में खुशी के साथ रहने की कोशिश करती है। उसे लगा कि उसके पास एक जिन्न है जो उसे स्नेह भरे पति को और आज्ञाकारी बच्चों को देते हैं। इस प्रकार कल्पना में अपनी इच्छा के अनुसार जीनेवाली मध्यवर्गीय स्त्री को ममताजी इसमें प्रस्तुत करती हैं।

'आत्मा अठन्नी का नाम है' दहेज प्रथा पर लिखा गया नाटक है। दहेज की कमी के कारण ससुरालवालों के घोर अपमान और पीडाओं का शिकार होनेवाली एक निरीह स्त्री की कथा है इस नाटक में। 'आपकी छोटी लड़की' ममता कालिया की कहानी पर आधारित नाटक है। इसी नाम से ही उनकी कहानी प्रकाशित हुई है। घर में बच्चों पर होनेवाले भेदभाव, तिरस्कार, उपेक्षा और बच्चों पर हुए यौन शोषण आदि पर इस नाटक में चर्चा हुई है। उनका अगला नाटक 'यहाँ रोना मना है' भी उनके 'राएवाली' नामक कहानी का रूपांतर है। ससुराल में अपना अस्तित्व नष्ट होने वाली कालिन्दी नामक स्त्री की जीवनगाथा है यह। माँ की मृत्यु होने पर भी उसे मायक जाने की अनुमति ससुरालवाले नहीं देते हैं। मशीन के समान घर के काम करते-करते बेहोश होकर गिर पडने पर भी ससुरालवालों को उस पर सहानुभूति नहीं है। 'जाने से प्यारे' नामक नाटक में थोडा व्यंग्य के सहारे ममताजी इस सत्य को व्यक्त करती है कि यदि आर्थिक लाभ नहीं हो तो शव को ज़िदा करने

के लिए कोई भी तैयार नहीं है। अर्थात इस नाटक के नायक डॉ. कौशिक ऐसी एक फॉर्मुला को ढूँढ़ निकालते हैं कि जिससे मरा हुआ जीव फिर जी उठेगे। कौशिक ने अपने फॉर्मुला को लागू करने के लिए कोशिश किया। लेकिन कोई भी मर गये लोगों को जीवन देने की अनुमति नहीं दी। फॉर्मुला के बारे में सुनते ही लोग सोचते हैं कि शव जीवित होने पर आर्थिक लाभ है या नहीं। आज मनुष्य सभी बातों में आर्थिक लाभ के बारे में सबसे पहले सोचता है। इस प्रकार अलग-अलग विषयों को मनछुए ढ़ंग से प्रस्तुत कर नाटक के क्षेत्र में भी ममताजी ने अपना नाम अंकित किया है।

1.5.15.2.5 बाल साहित्य

ममताजी एक सफल बाल साहित्यकार भी हैं। उन्होंने बच्चों के लिए दो उपन्यास लिखे हैं - 'ऐसा था बजरंगी' और 'नेह के नाते'। बच्चों का मनोरंजन करने के साथ उन्हें चरित्रवान बनाने के लिए अवश्य निर्देशों को देना भी उनकी बाल साहित्य का लक्ष्य है। बच्चों के मन को आकर्षित करने की तरीका में प्रस्तुत करने में ममता जी सक्षम सिद्ध हुई है।

1.5.15.2.6 आलोचना

ममताजी ने आलोचना के क्षेत्र में भी पदार्पण किया है। 'भविष्य का स्त्री विमर्श', 'स्त्री विमर्श का यथार्थ' आदि उनके प्रमुख आलोचनात्मक ग्रन्थ है। इन रचनाओं में ममताजी अपने स्त्रीवादी दृष्टिकोण का खुला प्रस्तुतीकरण करती है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्री किस प्रकार शोषण का वस्तु बन जाती है इसको

व्यक्त करते हुए स्त्री की अपनी अस्मिता कायम रखने के लिए विद्रोह और प्रतिरोध करने का आह्वान भी इनसे देती हैं।

1.5.15.2.7 संस्मरण

ममताजी को शिक्षा और नौकरी के लिए कई शहरों में जीना पडा। इसलिए उनकी जीवनानुभूतियों में मथुरा, नागपुर, पूना, इन्दौर, दिल्ली, इलाहाबाद और कलकत्ता की सामाजिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक स्थितियाँ, वहाँ की संस्कृति, परंपरा आदि भी शामिल हुए हैं। इलाहाबाद में 30 साल तक रही थी, इसलिए ही उनकी स्मृतियों में वहाँ की गतिविधियाँ ज़्यादा हैं। इन यादों को समेटकर 2010 में उन्होंने एक संस्मरणात्मक ग्रन्थ प्रकाशित किया। इसका नाम है 'कितने शहरों में कितनी बार'। ममताजी इस में जिस तरह हरएक शहर का चित्र प्रस्तुत किया है, वह भारतीय सृजनात्मक साहित्य में प्रायः दुर्लभ है। ममताजी ने इस पुस्तक की भूमिका में इस प्रकार लिखा है "जितने शहरों पर लिखा उतने से ज़्यादा अभी मेरे अन्दर कसमसा रहे हैं, अपनी हरी-पीली-लाल बत्तियों के साथ जल बुझ रहे हैं।"[1] निसंदेह कह सकता है कि हिंदी के संस्मरणात्मक ग्रन्थ में इसका स्थान निर्विवाद है।

1.5.15.2.8 सम्मान और पुरस्कार

हिंदी साहित्य में ममता कालिया का योगदान सर्वश्रेष्ठ है। अब तक उन्हें कई पुरस्कार मिल चुके हैं। सबसे पहले 1963 में 'सप्ताहिक हिंदुस्तान' और

---

1. ममता कालिया - कितने शहरों में कितने बार - भूमिका से

दिल्ली से 'सर्वश्रेष्ठ कहानीकार' का पुरस्कार मिला है। 1988 में 'हिंदी साहित्य परिषद् पुरस्कार' मिला है। सन् 1989 में 'उसका यौवन' शीर्षक कहानी को 'यशपाल पुरस्कार' मिला है और उसी वर्ष में ही उनके समग्र कथा साहित्य पर 'रचना सम्मान' मिला है। सन् 1990 में उन्हें रोटरी क्लब इलाहाबाद की 'व्होकेशनल पुरस्कार' समग्र साहित्य पर मिला। इसके अतिरिक्त 'महादेवी स्मृति पुरस्कार', 'सावित्री बाई फुले सम्मान', हिंदी साहित्य सम्मेलन का 'अमृत सम्मान', 'साहित्य भूषण सम्मान', 'कमलेश्वर स्मृति सम्मान', 'अभिनव भारती सम्मान', 'साहित्य भूषण पुरस्कार' मिला है। 2009 में 'लम्ही पुरस्कार' 2008 में 'जनवाणी पुरस्कार' और 2012 में 'सीता पुरस्कार' से भी उनका सम्मान किया है। इसके बाद 'दुःक्खम-सुक्खम' नामक उपन्यास को 2018 में 'व्यास सम्मान' भी प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष

आज हिंदी साहित्य में कहानी ही सर्वाधिक सशक्त और लोकप्रिय विधा है। पहले कहानी मनोरंजन और समय बिताने की चीज़ मात्र थी, लेकिन आधुनिक युग में बौद्धिक दृष्टि ने इसे चिंतन का साधन बनाया। वास्तव में प्रेमचंद की कहानियों ने हिंदी कहानी को एक नवीन द्वार खोल दिया। सन् 1950-1955 के बाद विभिन्न आन्दोलनों के आविर्भाव से हिंदी कहानी विकास के अनेक नूतन क्षितिज उद्घाटित हुए हैं। इन आन्दोलनों के द्वारा मानव जीवन के यथार्थ को चित्रित करने का प्रयास कहानीकारों ने किया है। लेकिन यथार्थ को उसकी प्रामाणिकता के साथ चित्रित करने का श्रेय समकालीन कहानी ने प्राप्त किया है। समकालीन कहानी में ज़िन्दगी की सच्चाइयों को चित्रित किया जाता है। अपने परिवेश और समस्याओं के चित्रण

करने के साथ-साथ वर्तमान स्थिति के कारणों और ज़िम्मेदारों को ढूढ़ने का प्रयास समकालीन कहानीकार करते हैं। यथार्थ को उसकी पूरी भयावहता और नग्नता के साथ चित्रण करनेवाले कहानीकारों में ममता कालिया जी अलग स्थान पा चुकी हैं। 'छुटकारा', 'सीट नम्बर छह', 'एक अदद औरत', 'प्रतिदिन', 'उसका यौवन', 'जाँच अभी जारी है', 'चर्चित कहानियाँ', 'बोलनेवाली औरत', 'मुखौटा', 'निर्मोही', 'पच्चीस साल की लड़की', 'थिएटर रोड के कौवे', 'काके दी हट्‌टी', 'ख़ुशक़िस्मत', 'थोडा सा प्रगतिशील' आदि उनके चर्चित कहानी संग्रह हैं। कुछ विद्वानों की राय में महिला कहानीकार सिर्फ नारी की समस्याओं को चित्रित करती हैं। लेकिन ममताजी इसका अपवाद है। ममता कालिया नारी की समस्याओं को ही नहीं, समाज की सभी ज्वलंत समस्याओं को अपनी कहानियों में चित्रित किया है। सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक आदि सभी पक्षों को उजागर करने का सफल प्रयास ममताजी ने अपनी कहानियों के माध्यम से किया है।

❖❖❖

दूसरा अध्याय

ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ

दूसरा अध्याय
ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ

2.0 प्रस्तावना

समकालीन हिन्दी साहित्य हमारे समाज की असली दस्तावेज़ है। समाज को आगे बढ़ाने का मूल तत्व संस्कृति है। इसलिए ही इन दोनों के बीच अटूट संबन्ध होता है। समाज और संस्कृति के हरएक पहलू को समकालीन साहित्यकार पूरी ईमानदारी के साथ प्रस्तुत करते हैं। समकालीन साहित्यकार ममता कालिया की कहानियाँ अपने समय की धड़कनों और सामाजिक सरोकारों से ओतप्रोत हैं। उनकी कहानियों में हमारे समय की सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का हूबहू चित्र देख सकते हैं। उनकी कहानियाँ आज की सभी ज्वलंत समस्याओं और परिस्थितियों को बड़ी सूक्ष्मता, गहराई और जीवंतता के साथ प्रस्तुत कर समकालीन संदर्भ के प्रति हमें सचेत बनाने की कोशिश से भरपूर है। आधुनिक भारत के शिक्षित, संघर्षरत और परिवर्तनशील समाज का सजीव चित्र उनकी कहानियों में अंकित हुआ है। उनकी कहानियों में जीवनवादी यथार्थ की सच्ची अभिव्यक्ति हुई है। ममताजी ने अपने समय और समाज को पुनर्परिभाषित करने का बीड़ा उठाया है।

2.1 ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ

ममता कालिया की कहानियों में अभिव्यक्त सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भ को परखने के पहले यह देखना उचित होगा कि समाज और संस्कृति क्या है, साहित्य के साथ इसका संबन्ध क्या है।

2.1.1 समाज

समाज के शाब्दिक अर्थ है 'समुदाय', 'समूह' आदि। भार्गव आदर्श हिंदी शब्द कोश में समाज की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है "समाज के शाब्दिक अर्थ संघ, सभा और समुदाय से लिया गया है।"[1] सामान्यतः लोग अपनी आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए एकत्रित रहने को समाज कहते हैं। व्यक्तियों के इस समूह के बारे में गिडिन्स ने इस प्रकार बता दिया है "समाज स्वयं एक संघ है, एक संगठन है, औपचारिक संबन्धों का योग है, जिसमें सहयोगी व्यक्ति परस्पर आबद्ध हैं।"[2] अर्थात समाज चलन, कार्यविधियों, प्रभुत्व, पारस्परिक सहयोग, समूह एवं श्रेणियाँ, मानव व्यवहार के नियंत्रण एवं स्वतंत्रता आदि से संचालित एक सामाजिक संबन्ध है। मानव के इस पारस्परिक सहयोग और व्यवहार पर ध्यान देते हुए भारद्वाज ने इस प्रकार लिखा है - "समाज ऐसे व्यक्तियों का समूह है, जिनकी समान आदतें हैं, जिनकी समान रुचियाँ हैं, समान विचार हैं, तथा ये आदतें, रुचियाँ तथा विचार उन्हें संगठित रखने के लिए पर्याय हैं।"[3] इससे यह स्पष्ट है कि समाज का निर्माण मानवीय संबन्धों का ताने-बाने से होता है।

---

1. भार्गव आदर्श हिन्दी शब्द कोश - 630
2. F.H. Gindwings - Principles of society - P. 11
3. डॉ. भारद्वाज - स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कहानी में मानव प्रतिभा - पृ. 19

समाज की परिकल्पना का आरंभ कब और कहाँ हुआ इसका उत्तर मिलना मुश्किल है। क्योंकि मनुष्य ने आदिकाल से लेकर एकत्रित रहना शुरू किया। मनुष्य की सहज और सामूहिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उसे एकत्रित रहना अवश्य था। एकत्रित रहने की इस मानसिकता समाज के निर्माण का कारण बन गया। सिर्फ मनुष्य के समूह को समाज कह नहीं सकता, वह भीड़ है। भीड़ और समाज का अंतर स्पष्ट करते हुए विष्णु प्रभाकर ने इस प्रकार कहा "भीड़ और समाज एक स्तर पर समानार्थी है कि वे एक से अधिक की संख्या को सूचित करते हैं, पर दूसरे स्तर पर परस्पर विरोधी भी है। भीड़ अनियंत्रित है, मात्र ऊर्जा है, समाज नियंत्रित है परस्पर के संबन्धों को लेकर।"[1] भीड़ में व्यक्तियों के बीच चेतना की कमी है। व्यक्तियों की चेतना, विचार, दर्शन आदि सम्मिलित होने पर भीड़ समाज बन जाती है। इसलिए कहते हैं कि समाज का विकास व्यक्ति पर आश्रित है और व्यक्ति की प्रगति समाज पर आधारित है। व्यक्ति के बिना समाज और समाज के बिना व्यक्ति अपने आप में अधूरा है। और इस समाज को सही दिशा प्रदान करने का कार्य संस्कृति पर आधारित है।

2.1.2 संस्कृति

संस्कृति वास्तव में जीवन यापन की एक पद्धति है। अर्थात् हमारे जीने के ढ़ंग को संस्कृति कही जाती है। हमारे आचार-विचार, रीति-रिवाज़, शिष्ट व्यवहार, कला, साहित्य, भाषा, ज्ञान, प्रथाएँ, कानून, धर्म आदि संस्कृति के अंग है। अर्थात्

---

1. विष्णु प्रभाकर - जन, समाज और संस्कृति - पृ. 24

संस्कृति मानव के समस्त क्रिया-कलापों की सहज परिणति है। संस्कृति समाज से रूपायित होती है। डॉ. मंगलदेव शास्त्री के अनुसार "किसी देश या समाज के विभिन्न व्यापारों में या सामाजिक संबन्धों में मानवता की दृष्टि से प्रेरणा प्रदान करनेवाले उन आदर्शों की समष्टि को संस्कृति समझना चाहिए।"[1] मनुष्य का एक दल या समाज एक ही रीति के अनुसार कुछ करने पर, या एक ही विश्वास रखने पर, या एक ही आदर्श को मानने पर या एक ही चीज़ को अपने गौरव का कारण समझने पर वहाँ एक संस्कृति का रूपायन होता है। इसलिए ही प्रत्येक समाज या राष्ट्र को अपनी ही संस्कृति होती है। इस संस्कृति में उस समाज की धार्मिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, दार्शनिक विचारधाराएँ, विश्वास, मान्यताएँ अंतर्निहित है। इंद्र विद्यावाचस्पति का वक्तव्य है "किसी देश की आध्यात्मिक, सामाजिक और मानसिक विभूति को उस देश की संस्कृति कहते हैं। संस्कृति शब्द में देश के धर्म, साहित्य, रीति-रिवाज़, परंपरा, सामाजिक संघटन आदि सब आध्यात्मिक और मानसिक तत्वों का समावेश होता है।"[2] इन तत्वों में हर एक समाज के प्राण निहित होते हैं।

2.1.3 समाज और संस्कृति का अंतर्संबन्ध

समाज और संस्कृति के बीच का संबन्ध अटूट और गहरा है। इनमें किसी एक के अभाव में दूसरे की उपस्थिति संभव नहीं है। क्योंकि संस्कृति समाज से

---

1. मंगलदेव शास्त्री - भारतीय संस्कृति का विकास - पृ. 4
2. इंद्र विद्यावाचस्पति - भारतीय संस्कृति का प्रभाव - पृ. 1

जन्म लेती है और इस समाज का मार्गदर्शन का कार्य भी करती है। इसलिए इसमें एक के बिना दूसरे की उपस्थिति संभव नहीं है। इसलिए संस्कृति को एक समाज की संजीवनी शक्ति कहा जा सकता है। संस्कृति का निर्माण कुछ महीनों या सालों से संभव नहीं हो सकता। इसके लिए सहस्रों या लाखों वर्षों की विकास-यात्रा की आवश्यकता है। किसी भी देश या समाज के साहित्य, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, आध्यात्मिकता, दर्शन, ज्ञान-विज्ञान, व्यवहार आदि सभी वहाँ की संस्कृति के अंश है। इसलिए कहते हैं कि संस्कृति ही किसी एक समाज के प्राण है।

2.1.4 साहित्य, समाज और संस्कृति

साहित्य शब्द का अर्थ है 'साथ होना'। अर्थात् जिसे हम साहित्य कहते हैं उसमें साथ होने की भावना होनी चाहिए। इसलिए साहित्य और हमारे जीवन के साथ निकट संबंध होती है। मैथ्यु आर्नालड के मत में साहित्य जीवन की व्याख्या है। साहित्य के बारे में प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद जी का वक्तव्य है "मेरे विचार से उसकी सर्वोत्तम परिभाषा जीवन की आलोचना है। चाहे वह निबन्ध के रूप में हो, चाहे कहानियों के या काव्य के, उसे हमारे जीवन की आलोचना और व्याख्या करनी चाहिए।"[1] अर्थात् साहित्य में मानव का अनुभव होना चाहिए, जीवंतता होनी चाहिए। इसलिए साहित्य को मानव जीवन की सच्चाइयों का दर्पण हम मानते हैं। आलोचक हज़ारीप्रसाद द्विवेदी के अनुसार "साहित्य में उन सारी बातों का जीवंत विवरण होता है, जिसे मनुष्य ने देखा है अनुभव किया है, सोचा है और समझा है।"[2]

---

1. प्रेमचंद - साहित्य का उद्देश्य - पृ. 10
2. हजारीप्रसाद द्विवेदी - साहित्य का सहचर - पृ. 3

साहित्य किसी भी देश या समाज या समय के सर्वाधिक विश्वस्त प्रामाणिक आधार है। समाज और संस्कृति के साथ साहित्य का घनिष्ठ संबन्ध होता है। संस्कृति वास्तव में एक समाज का ज्ञान,सद्गुण और उत्कर्ष का नाम है। साहित्य उस संस्कृति का आख्यान है। क्योंकि साहित्य संस्कृति का वाहक है। किसी भी देश या समाज की संस्कृति, विचार और भावनाओं का परिचय वहाँ के साहित्य से मिलता है। इसलिए कहते हैं कि साहित्य, समाज, संस्कृति, कला आदि अलग-अलग होते हुए भी संश्लिष्ट हैं। आलोचकों के अनुसार साहित्य एक समाज और वहाँ के संस्कृति का इतिहास है। डॉ. श्यामसुन्दर दास की राय में "साहित्य के अध्ययन से हम किसी जाति के मानसिक, आध्यात्मिक और नैतिक विकास का क्रमिक बोध कर सकते हैं।"[1] इसी कारण से साहित्य को समाज का प्रतिबिंब मानते हैं। नगेन्द्र जी ने इसका स्पष्टीकरण करते हुए कहा है "दर्पण शब्द बिंब-प्रतिबिंब भाव का वाचक है, अतः प्रस्तुत सूत्र का अर्थ यह है कि साहित्य में समाज का उसी प्रकार प्रतिबिंब रहता है, जिस प्रकार दर्पण में मूल पदार्थ का।"[2] साहित्य में तात्कालीन परिवेश का यथार्थ चित्रण कर समाज को सजग ओर सचेत बना देता है। इसलिए कह जा सकता है कि साहित्यकार संवेदनशील, कल्पनाशील, दूरदर्शी और भविष्य की द्रष्टा भी है। समाज को सुधारना, निखारना और सही रास्ता दिखाना साहित्यकार का दायित्व है। इसके द्वारा समाज में परिवर्तन और परिमार्जन करने का कार्य साहित्यकार करते हैं। इसलिए विपिन चौधरी ने इस प्रकार लिखा

---

1. श्यामसुन्दर दास - साहित्यालोचन - पृ. 37
2. नगेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र - पृ. 13

है "अच्छा साहित्य बेशक बदलाव ला सकता है, बेशर्त कि उसे पढ़नेवाला, बदलाव लाने का इच्छुक हो, उसमें इतना सामर्थ्य हो, इतनी समझ, इतनी संवेदनशीलता हो कि शब्द उसकी सोच पर आघात कर सकें।"[1]

2.2.2 ममता कालिया की कहानियाँ : सामाजिक संदर्भ

लेखक एक सामाजिक प्राणी है, इसलिए वह अपने परिवेश से प्रभावित होना स्वाभाविक है। अपने आसपास का परिवेश और जीवन के अनुभवों से प्रेरणा पाकर साहित्यकार साहित्य सृजन करता है। इसलिए वह समाज के प्रति अपने कर्तव्यों और दायित्वों की उपेक्षा नहीं कर सकता है। नगेन्द्र जी ने इस पर अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है "किसी युग का साहित्य उस समय के संसार और समाज के प्रति प्रचलित धारणाओं से अछूता नहीं रहता। साहित्यकार संसार और समाज के प्रति कोई-न-कोई दृष्टिकोण अपनाए बिना तो रचना कर ही नहीं सकता।"[2] इसलिए निसंदेह ही कह सकता है कि साहित्यकार का सामाजिक व्यक्तित्व उसकी सांस्कृतिक परंपराओं, धार्मिक विश्वासों और नैतिक मूल्यों, आर्थिक वातावरण, व्यवहार, व्यवसाय आदि के आधार पर निर्मित होता है। ममता कालिया भी इस तथ्य से अपवाद नहीं।

ममताजी ने अपनी आँखों के सामने जो देखा है, या अनुभव किया है, उन्हें ज्यों का त्यों अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। ममता कालिया ने स्वयं अपनी

---

1. हंस - सितंबर 2009
2. नरेन्द्र - साहित्य का समाजशास्त्र - पृ. 90

कहानियों के बारे में इस प्रकार लिखा है "निज के और समय के सवालों से जूझने की तीव्र उत्कण्ठा और जीवन के प्रति नित-नूतन विस्मय ही मेरी कहानियों का स्रोत रहा है।"[1] हम निसंदेह ही कह सकते हैं कि उनकी कोई भी रचना ऐसी नहीं है, जो वर्तमान समय के किसी-न-किसी समस्या का स्पर्श न करती।

2.2.1 परिवार

परिवार समाज की सबसे महत्वपूर्ण ईकाई है। व्यक्ति के शारीरिक और मानसिक विकास का आधार ही परिवार है। परिवार व्यक्ति को सामाजिक जीवन के लिए तैयार कराता है और व्यक्ति में मानवोचित गुणों का निवेशन में परिवार का प्रमुख स्थान है। परिवार व्यक्ति को एक जैविक प्राणी से सामाजिक प्राणी के रूप में परिवर्तित करता है। इसलिए कहता है कि व्यक्ति और समाज के संबन्धों में परिवार एक अविभाज्य हिस्सा है। भारतीय संस्कृति में परिवार के महत्व का प्रश्रय है 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना। लेकिन वर्तमान युग में समाज में कई प्रकार के परिवर्तन आते रहते हैं। पारिवारिक संस्था भी इससे अछूती नहीं है। परिवार में उत्पन्न तनाव और संघर्ष की स्थिति पारिवारिक व्यवस्था के विघटन का कारण बन जाता है।

2.2.1.1 पारिवारिक व्यवस्था का महत्व

प्राचीन काल से ही भारत में संयुक्त परिवार का विशेष महत्व रहा है। संयुक्त परिवार में बूढ़े, बच्चे, पति-पत्नी आदि को समान स्थान और महत्व होती

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत, भूमिका - पृ. 8

है। व्यक्तिगत स्वार्थपूर्ति के बजाय हर व्यक्ति के समुचित विकास को वहाँ स्थान होती है। रवीन्द्र मुकर्जी के मुताबिक "संयुक्त परिवार संयुक्त संगठन के आधार पर निकट के नाते रिश्तेदारों की एक सहयोगी व्यवस्था है जिसमें सम्मिलिन संपत्ति, सम्मिलित वास, अधिकारों तथा कर्तव्यों का समावेश होता है।"[1] संयुक्त परिवार में पीढ़ी दर पीढ़ी के लोग एक साथ रहते हैं। जिससे एक पीढ़ी की परंपराएँ, प्रथाएँ आदि हस्तान्तरित हो जाते हैं। लेकिन वर्तमान परिस्थितियों में संयुक्त परिवार की व्यवस्था पूर्ण रूप से विघटित हो जाती है। लेकिन अन्य देशों में भारत की पारिवारिक व्यवस्था को विशेष महत्व होती है। रिश्तों को कपड़े के समान बदलने के इस युग में उनके सामने भारतीय पारिवारिक व्यवस्था एक आदर्श रूप है। ममता कालिया 'परदेसी' नामक कहानी में यह स्पष्ट रूप से चित्रित किया है। इसमें रिचार्ड जो विदेशी है, जो भारत को देखने और यहाँ की संस्कृति को समझने के लिए आया है। भारत में नीरद और उसके परिवार ने रिचार्ड को ऐसा एक स्वागत दिया, जो बिलकुल विदेशी जैसा थी। लेकिन रिचार्ड छोटी-छोटी बातों में भी यहाँ के रीति-रिवाज़ों से मिलकर रहना पसंद करते हैं। नीरद ने सोचा कि यहाँ की पारिवारिक व्यवस्था अर्थात् दादा, दादी, बच्चे आदि रिचार्ड को मुसीबत बन जाएगा। लेकिन रिचर्ड के जबाव से भारत के प्रति अर्थात यहाँ की पारिवारिक व्यवस्था के प्रति पूरी दुनिया का नज़रिया व्यक्त होती है। "जिन्हें आप गड़बड़ियाँ कह रही है, उनके लिए हमारे देश में तरसते हैं लोग। कहाँ मिलती है घर-परिवार की गर्मी। ......आपके घर में अभी डिनर के समय तीन पीढ़ियाँ एक साथ खाना

---

1. रवीन्द्र मुकर्जी - भारतीय जनता तथा संस्थाएँ - पृ. 258

खा रही थी। अरे, दुर्लभ सुख है यह। ऐसा दृश्य देखे मुझे बरसों हो गये कि बच्चों के माँ-बाप अपने माँ-बाप के सामने आज्ञाकारी बच्चे बन जायें। तीन पीढ़ियाँ एक छत के नीचे, एक कमरे में प्रेम से बेठी है, कहीं कोई तनाव नहीं। आपके बच्चों को एक नार्मल लड़कपन मिल रहा है। बहुत बड़ी बात है यह। इसे कभी कम करके मत देखियेगा।"[1] हम तनाव या लचीलापन की कमी के कारण जिस पारिवारिक व्यवस्था से बचना चाहते हैं, उसका महत्व आज हम बाहर के लोगों से समझने की स्थिति पैदा होती है। इसलिए कहानी के अंत में ममताजी ने यह वाक्य जोड़ा है "रिचार्ड सुबह बनारस चला गया, पर मुझे जीवन-भर के लिए शिक्षित कर गया।"[2]

'इक्कीसवीं सदी' नामक कहानी की नायिका रेखा अपने परिवार और परिवारवालों को अपनी संपत्ति मानती है। उसे पता है कि सभी मूल्यों का आधार परिवार है और वहाँ ही मूल्य सुरक्षित है "ससुराल के स्तर पर रेखा को कोई कष्ट नहीं था, चारों तरफ मूल्य-हीनता के बीच भी उसके परिवार में कुछ मूलभूत मूल्य सुरक्षित रखे हुए थे यह बात सबके अन्दर कूट-कूटकर भरी हुई थी कि सारी समस्याओं के बीच भी रिश्तों को यथायोग्य आदर और स्नेह मिलते रहना चाहिए। एक आदर्श औसत परिवार था वह जो संयुक्त होते हुए भी हर सदस्य की आज़ादी की कद्र करता था।"[3] इसमें ममताजी ने संयुक्त परिवार के सुरक्षित वातावरण का चित्रण किया है। आज की पीढ़ी 'संयुक्त परिवार' शब्द को मुसीबतों का ढ़ेर

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 82
2. वही
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ - II-जाँच अभी जारी है - पृ. 47

समझता है। लेकिन ममताजी ने अपनी कहानियों में इस परिवार प्रणाली के जिस सकारात्मक पक्ष के बारे में कहा है, वह आज की पीढ़ी की समझ की बात नहीं है।

2.2.1.2 विघटित पारिवारिक व्यवस्था

परिवार सहनिवास, सहभोजन, संपत्ति का सहउपयोग आदि विशेषताओं से बाँधा है। आत्मीयता और परस्पर स्नेह के भाव ने परिवारवालों को एक ही सूत्र में बाँधकर रखा है। पहले यहाँ संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था मौजूद था। लेकिन औद्योगीकरण, नगरीकरण, जनसंख्या की गतिशीलता, व्यक्तिवादी चिंतन आदि से उत्पन्न स्वार्थता, अपने-अपने के लिए कमाने की व्यग्रता संयुक्त परिवार की आधार शिला को तोडती है। आज मानव अपने आप में सिमट कर जीना पसंद करता है। यह अणुपरिवार के प्रार्दुभाव का कारण बन गया। पति-पत्नी के बीच तीसरे की उपस्थिति, चाहे वह सास हो, बच्चे या रिश्तेदार हो, उसे एक बाधा के रूप में देखने की मानसिकता इसके फलस्वरूप उत्पन्न हुई है। 'लैला मजनूं' नामक कहानी में ममताजी ने ऐसी मानसिकता का खुला चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें पंकज और शोभा घर में आए मेहमानों को शाप के समान मानते हैं। इसलिए वे रिश्तेदारों से दूरी रखने की कोशिश करते हैं। उनकी राय में बच्चे भी एक अनावश्यक वस्तु है। अपने सुख और सुविधा में बाधा डालने वाले सभी व्यक्तियों को शत्रु के समान वे मानते हैं।

2.3.1.2.1 अर्थ के अनुसार

आज हमारी सामाजिक व्यवस्था का मूल आधार अर्थ है। ऐसे ज़माने में पारिवारिक संबन्धों की गहराई भी अर्थ के आधार पर आँकी जाती है। मानवता का स्थान आज अर्थ ने ले लिया है। माता-पिता, भाई, बहन, बेटे आदि के रिश्तों में भी अर्थ के अनुसार आते उथल-पुथल को हम देख सकते हैं। कमाई के आधार पर घर में व्यक्ति को स्थान भी मिलता है। 'उसका यौवन' के विराम इसका सशक्त उदाहरण है। विराम शिक्षित होने पर भी घरवालों की इज्जत के अनुसार नौकरी न मिलने के कारण उसे बेराज़गारी को भुगतना पडता है। "पर वह इतने मामूली काम कैसे कर सकता है? पिताजी के नाम पर बट्टा नहीं लगेगा, ए.जी आफीस में काम करते हैं, सरकारी नौकरी है उनकी। भैया लज्जित नहीं होंगे, इतनी बड़ी दवा कम्पनी में मैनेजर हैं, भाभी यूनिवर्सिटी में पढ़ाती हैं। ममाजी तो शर्म के मारे इलाहाबाद आना छोड देंगे। हैदराबाद के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में एक हैं। चाचा जी बदायूँ में सिटी मजिस्ट्रेट हैं। वे सब कैसे बर्दाश्त करेंगे कि उनके खानदान का एक होनहार लड़का मरीजों को अटकलपच्चू मीठी गोलियाँ बांटे या साबुन-बट्टी बेचे। और अम्मा? वह तो सदमों से मर जायेगी। कितने अरमानों से उसे पाला है।"[1] अच्छी नौकरी न होने के कारण उसे घर में उपेक्षा और तिरस्कार का शिकार होना पडता है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ - I-उसका यौवन - पृ. 310, 311

रुपये होने या न होने के अनुसार आज घर में खुशी आती है या नष्ट हो जाती है। 'पहली' नामक कहानी में वेतन प्राप्त दिन में घरवालों की मानसिकता और खुशी का चित्रण ममताजी ने किया है। उस दिन घरवालों को खुशी होती है, वे हँसते है और आपस में बातें करते हैं। लेकिन रुपये कम होने के अनुसार इन सभी खुशियाँ भी कम हो जाता है। यह सब देखकर घर के नन्हा बच्चा इस प्रकार पूछता है "कितनी अच्छी होती है पहली तारीख अम्माँ, अच्छा, अम्मा अगर पहली तारीख न आये तो?"[1] अब हमारी पारिवारिक व्यवस्था न मातृप्रधान है, न पितृप्रधान है सिर्फ अर्थ-प्रधान है।

अर्थ के अनुसार पारिवारिक संबन्ध किस प्रकार यांत्रिक बन जाता है इसका विवेचन ममता कालिया की इन कहानियाँ में हुआ है। वात्सल्य, ममता, प्रेम आदि संवेदनाएँ अर्थ की प्रधानता में नष्ट हो जाती है। ऐसी वर्तमान स्थिति में ममताजी 'उपलब्धि' नामक कहानी के द्वारा यह व्यक्त करने की कोशिश करती हैं कि परिवार और संबन्धों का महत्व इन सबके परे हैं, उसमें अर्थ को स्थान देने की आवश्यकता नहीं है। 'उपलब्धि' के चेतन पैसा कमाने की अंधी दौड़ में है, उस दौड़ में वह कभी-कभी घरवालों को भूल जाता है, उनके साथ बातें करने का समय भी उसको नहीं है। लेकिन एक दंगे में उसे अपना घर, दफ्तर, संपत्ति सब नष्ट हो गये। पत्नी एवं बेटी के जीवन भी खतरे में पडते समय चेतन समझाता है कि परिवार है सब कुछ। "लेकिन रिक्शे में प्राची और बबलू के साथ बैठते हुए चेतन

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 81

को लगा उसका कोई नुक्सान नहीं हुआ है। उसकी सबसे बड़ी उपलब्धि तो उसके पहलू में है।"[1] ममताजी ने इस कहानी के द्वारा परिवार और परिवारवालों को साथ जोडकर रखने की आवश्यकता के बारे में हमें सचेत किया है और इसका संकेत भी दिया है कि अपना परिवार के अलावा और कुछ भी को साथ जोडने से कोई फायदा नहीं होता।

2.1.2.2 बदनामी के नाम पर

पारिवारिक संबन्धों की गहराई परस्पर विश्वास, स्नेह, उत्तरदायित्व आदि पर आधारित है। लेकिन अर्थ के समान कभी-कभी बदनामी, कमियाँ आदि के कारण परिवार के सदस्य को अकेला छोड़ दिया जाता है। यह परिवार के एकता और महत्व को नष्ट कराता है। 'तोहमत' नामक कहानी में दो सहेलियाँ रास्ता भड़कर जंगल में पहूँच गई। वहाँ से भाग बचाने की कोशिश में काँटों में गिरकर उनके कपड़े फट गई। उन दोनों लड़कियाँ वापस आने पर गाँववालों के समान घरवाले भी उन्हें शंका की दृष्टि से देखा है। घरवालों की प्रतिक्रिया ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं "अब और क्या होने को बाकी है। हमारा मुँह काला करा दिया, अपना मुँह काला करा लिया, जन्मी थी औलाद.... यह लडकी मेरी जान लेकर जायेगी। इससे तो पैदा होती ही मर जाती, आज यह थुक्का-फजीहत तो न होती।"[2] इसी प्रकार खतरनाक परिस्थितियों में साथ रहने की बजाय उन लडकियों को कोसने और अकेले कराने में घरवाले प्रतिस्पर्धा करते हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 184
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 279

'बीमारी' नामक कहानी में बहन को किड्नी में इन्फेक्शन होने पर भाई और भाभी उसे शंका की दृष्टि से देखते है। डॉक्टर से वास्तविकता समझने के बजाय बहन पर आरोप लगाने की कोशिश में है भाभी। "मुझे यह भी पता था कि मेरी इस बीमारी को वह संदिग्ध समझ रही है। उसके ख्याल में कुँआरेपन में किसी भी प्रकार का इन्फेक्शन होना, चाहे किड्नी ही में सही, सदाचार दुश्चरित्र होने की निशानी थी....... भाई को अचानक एक मौलिक विचार आया। उसने कहा, 'सुनो ऐसी तकलीफ में अस्पताल अच्छा रहता है।"[1] क्योंकि उसमें घर की इज्जत को नष्ट होने का भय है। इसलिए वे बीमारग्रस्त बहन को घर ले जाने के लिए अनिच्छुक रहते हैं। जीवन के त्रासदीपूर्ण संदर्भ में घरवालों का ऐसा व्यवहार उनके जीवन को और भी संघर्षमय और दुःखमय बनाता है।

2.1.2 आत्मीयता का अभाव के कारण

परिवार को एकत्र रहने के लिए परिवारवालों के बीच समझदारी की भावना महत्वपूर्ण है। लेकिन स्वार्थता, अपनी-अपनी कमाई की चिन्ता, व्यस्तता, आत्मीयता की कमी आदि कई कारणों से घरवाले पृथक-पृथक होते रहते हैं। इससे परिवारवालों के बीच दूरी पैदा होती है और आपसी स्नेह और ऊष्मा की भावना नष्ट होती है। 'गुस्सा' नामक कहानी में गुस्सा के कारण पारिवारिक जीवन में जो-जो नष्ट होते हैं, उनका चित्रण देखा जा सकता है। इस कहानी की नायिका माया वृद्धा है, जो हमेशा अपने पति से गुस्सा करती है। उसके गुस्से के कारण बेटे और

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 46, 47

बहू घर से अलग रहते हैं और पडोसवाले उसके इस गुसैले चरित्र के कारण उससे बातचीत करने के लिए तैयार नहीं है। छोटी-छोटी बातों में अपना आदेश न लेने के कारण बेटे और बहुओं पर वह गालियाँ बरसाती है। "अब एक ने उससे बिना पूछे अपने बाल कटवा लिये थे और दूसरी ने तीसरी बार लड़की पैदा कर दी थी। ये सबी बातें माया को गुस्सा दिलाती थीं। पर इनसे भी ज़्यादा जिस बात पर उसका खून खौलता था, वह था उसके पति का इन ज़्यादतियों को मुस्कुरा कर नज़रअन्दाज़ करना। उनका एक समर्पण प्रधान व्यक्तित्व था और माया का आक्रमण प्रधान।"[1] एक दिन रुपये के नाम पर उसने पति से गुस्सा किया। उस दिन क्षमा की सीमा पार होने पर पति घर छोड़कर चला गया। लेकिन पति के चले जाने पर उसको लगता है कि वह जीवन में कितनी अकेली है। "इसके बाद जो ज़िन्दगी शुरू हुई वह भयानक रूप से बियावान थी।..... दुःख और अकेलापन से बौखला कर कभी माया आसपास के घरों में बातचीत की कोशिश करती थी तो पाती है किसी को समय नहीं है। पडोसी यह सोचकर कि शायद वह आर्थिक कष्ट में है, बड़े ठंडे लहजे में सहायता-वहायता जैसी बात करने लगते। पति के जाते ही पैसा उसके लिए व्यर्थ हो गया था।"[2] माया को घर और परिवार को सही सलामत से न समझने के कारण सबकुछ नष्ट करना पडा।

परिवार में एक साथ रहने पर हम दूसरे को समझने के लिए हार हो जाते है, विशेषतः माँ-बाप को। माँ-बाप अपने बच्चे के लिए कितना ही प्यार और त्याग

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 153
2. वही - पृ. 156

करते हैं, बच्चे यह समझे बिना व्यवहार करते हैं। यह परिवारवालों के आपसी संबन्ध में दरार पडती है। 'उडान' नामक कहानी में पिता ने दारू, सिगरेट आदि खराब आदतों को छोड़कर अपनी कमाई के पैसा से पुत्र साक़ी को एक स्कूटर खरीद दिया। पिता ने सोचा कि साक़ी को पता चलेगा कि बेटे के लिए पिता ने कितने प्यारे शौकों की उपेक्षा की। लेकिन साकी सबको व्यवसायिक दृष्टि से देखता है। किसी के प्रति भी उसके मन में प्यार या आत्मीयता नहीं है। इसलिए साक़ी ने एक बार माँ से इस प्रकार कहा, "ठीक तो है माँ, पर पेट्रोल बहुत खा रहा है। अब दिल्ली में तो काम भी नहीं आयेगा। अच्छा हो इसे बेचकर मोबइल फोन ले लें।"[1] साकी के लिए प्यार, त्याग, ममता, नोस्टालजिया सब बेकार हैं। उनके मन में सिर्फ अपने करियर की ही प्रमुखता है। इसलिए अपने करियर में बाधा लगने पर घर और परिवारवालों को छोडकर वह चला जाता है। वर्तमान समय में परिवार में भी हरएक अपने-अपने स्वार्थ की पूर्ति को महत्व देता है। यह पारिवारिक संबन्धों में ठंडापन, ऊब, अकेलापन पैदा कराता है। अपने स्वार्थ के लिए बच्चों के भविष्य को नष्ट करनेवाले माँ-बाप का चित्रण ममताजी की कहानियों में देख सकते हैं। 'सूनी' नामक कहानी की माँ इसका एक उदाहरण है। इसमें पिता की मृत्यु के बाद माँ के त्यागमयी, करुणाशील और कोमल हृदय ठीक विपरीत बन गया। इकलौती बेटी की विदाई से डरकर माँ बेटी के विवाह में बाधाएँ डालती है। "सही समय पर उसकी शादी न होने के पीछे भी माँ की बड़ी अहम भूमिका थी। जब भी किसी ने सूनी में ज़रा ज़्यादा दिलचस्पी ली और घर आना-जाना शुरू

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 442

किया, माँ ने अपनी शर्तें बताकर उसे इतना डरा दिया कि वह तभी भाग खडा हुआ। माँ का कहना था कि वे सूनी के लिए ऐसा वर चाहती है कि जो उन्हीं के साथ आकर रहे, कभी ऊँची आवाज़ में न बोले, माँ के लिए सेवा भाव रखे और सूनी और माँ के बीच में दीवार बनने की कोशिश न करे।"[1] माँ की इस स्वार्थता ने सूनी के जीवन से हरापन नष्ट करवाया और धीरे-धीरे सूनी के मन से परिवार की दृढ़ता, सुरक्षा, स्नेह आदि भावनाओं पर विश्वास भी नष्ट हो गया। माँ की मृत्यु के बाद सूनी को घर एक कैदखाना लगा और उसके मन में हमेशा वहाँ से भाग जाने की इच्छा थी। 'एक अकेली तस्वीर' नामक कहानी की तनिया विवाह का निषेध करती है। पर पिता को बेटी की इस निर्णय पर दुःख नहीं लगा क्योंकि विवाह कर बेटी के जाने पर घर में अकेला होने का डर पिता के मन में भी था। "पापा ने ज़्यादा दुःख नहीं मनाया, बेटी को हृदय से लगाए रखने का उन्हें कम मोह न था।"[2]

यह एक सच्चाई है कि घरवालों के एक साथ रहने से वहाँ स्वर्ग हो जाता है, इसमें किसी एक की अनुपस्थिति घर के सूत्र को नष्ट करवाती है। 'खाली होता हुआ घर' में अपनी अकेली लड़की की शादी और उसकी विदाई के बारे में सोचकर खामोश हो गए एक घर का चित्र ममताजी ने खींच लिया है। "तब ममी कहती, 'तुम तो ऐसे बोल रहे हो जैसे मुन्नी तुम्हारे रिटयर होने तक तुम्हारे पास ही रही आएगी।' पापा कन्फ्यूज़ होकर उदास हो जाते। उनके दिमाग में यह बैठता नहीं था कि उनकी लड़की भी आम लड़कियों की तरह शादी-ब्याह करके एक दिन

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 50
2. वही - पृ. 16

बिल्कुल रवायती तौर पर चली जाएगी।"[1] माँ-बाप के बीच यह वार्तालाप होने के बाद सुमित्रा के पापा धीरे-धीरे नौकरी के दायित्वों से और घर में भी उदास होने लगा और अपने आप सिमटकर रहने लगा। सुमित्रा के विवाह के बाद माँ पर बीमारियों का गढ़ हुआ। वे घर की पत्रिकाएँ बंद करवायी जाती हैं, मन पसंद रेडियो को हमेशा के लिए 'आफ' किया गया और घर की खिड़कियाँ खोलने के लिए भी तैयार नहीं है। सुमित्रा के चले जाने पर घर में मनुष्य होने पर भी घर खाली होता हुआ जैसा नज़र आया। उनके घर की स्थिति वास्तव में उनके मन का प्रतीक है। घर में एक की अनुपस्थिति पारिवारिक संबन्धों को कितना तोड़-मरोड़ करता है, इसका एक ओर उदाहरण है 'मंदिरा' नामक कहानी। इसकी नायिका मंदिरा यूनिवर्सिटी की अध्यापिका है। वह पति वाजपेयी और बेटा शिशिर के साथ खुशी से रहती थी, लेकिन अचानक वाजपेयी ने शिशिर को होस्टल में डालकर पढ़ाई कराने की तय किया तो मंदिरा टूट गयी। मंदिरा ने अपनी सारी शक्ति के साथ विरोध किया, लेकिन वाजपेयी का वाद यह है कि बच्चे को अच्छी शिक्षा मिलनी चाहिए, यह उसका हक है। जब शिशिर घर से विदा ली, तब से घर में सन्नाटा छा गया। मंदिरा को अपने आप और पति से भी घृणा हुई। "जिस दिन शिशिर ने घर से विदा ली, मंदिरा को रोते-रोते गरा आ गया............. शिशिर के चले जाने पर मंदिरा कई दिनों तक बिस्तर पर औंधी पड़ी-पड़ी रोती रही। यूनिवर्सिटी भी नहीं गयीं।................. घर उसे किताबें उतनी ही बोर लगती

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 120

जितनी कि बैंगन भाजी या वाजपेयी।"[1] शिशिर के वियोग से मंदिरा और वाजपेयी जी के बीच में अलगाव हुआ और वह परिवार भी शिथिल हो गया। परिवार में हरएक को अपना महत्व और स्थान होती है, इसमें से किसी एक की उपेक्षा या अभाव से परिवार का गठन नष्ट हो जाता है। इसलिए निसंदेह यह कह सकता है कि समय की बहाव में परिवर्तन की शक्ति कितने प्रबल होने पर भी मानव जाति के अस्तित्व और कल्याण के लिए पारिवारिक व्यवस्था और पारिवारिक संबन्धों में आत्मीयता और आपसी प्रेम अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस सत्य को हम अनदेखा नहीं कर सकते हैं।

2.1.2.4 अनैतिक संबन्ध

सामाजिक जीवन में मूल्यों का अत्यधिक महत्व है। सामाजिक संबन्धों को संतुलित करने के लिए और समाज व्यवस्था संगठन के लिए मूल्यों की आवश्यकता होती है। यह मूल्य समय के अनुसार परिवर्तित रहता है। मूल्यों में आये इस परिवर्तित नज़रिये को स्त्री-पुरुष संबन्धों में भी हमें देख सकते हैं। विवाह को एक अनावश्यक बन्धन समझने के कारण आज की पीढ़ी के एक बडा प्रतिशत सहजीवन को अच्छा रास्ता मानता है। अपनी आवश्यकताओं, सुख-सुविधाओं के बदले दूसरों के बारे में सोचने की मानसिकता आज कहीं भी और किसी को भी नहीं है। इसलिए अधिकतर लोग सहजीवन का समर्थन करते हैं। 'साथ' कहानी के अशोक विवाह के बन्धन से मुक्ति पाना चाहता है। इसलिए वह पत्नी को छोडकर सुनन्दा

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 286, 287

के साथ जी रहा है लेकिन वह सुनन्दा को विवाह करना नहीं चाहता है। "जब सुनन्दा शादी के लिए कहती, वह वार्डरोब से निकाल कर टाइयों का सेहरा सिर पर बाँध लेता और सुनन्दा पर चुम्बनों का धारावाहिक सिलसिला शुरू कर देता। पर जिन दिनों सुनन्दा की जिद ज़्यादा कड़ी होती उसे बैंक से पैसे निकलवा कर साड़ी खरीदनी पडती। वैसे समय यह बिस्तर पर फुसफुसाते हुए एक से अधिक बार कहता, 'यू आर मोर दैन माइ बाइफ, यू आर माई लाइफ।"[1] अशोक की राय में विवाह करना तो अर्थ का खेल है। घर के लिए कमाते-कमाते जीवन नष्ट हो जाएगा। उसने पहली पत्नी को इसलिए तलाक नहीं दिया है कि हरजाने के रूप में उसे भारी रकम देनी पडेगी। इसलिए वह सुनंदा के साथ सिर्फ शारीरिक संबन्ध चाहता है। अशोक की राय में सहजीवन में ऐसी कोई समस्या नहीं उठाएगा।

'अपत्नी' नामक कहानी में भी प्रबोध और लीला विवाह के बिना एक साथ रहते हैं। प्रबोध विवाहित है, लेकिन पत्नी को उसने एक बोझ माना है। इसलिए वह पत्नी को छोड़कर उसके सामने ही एक अन्य युवति के साथ रहता है। प्रबोध के मन में गलती की कोई भी भावना नहीं है। जीने तो अपनी मर्जी के अनुसार जीना चाहिए, यह है प्रबोध की मानसिकता। आज हमारी संस्कृति तो स्वार्थ केंद्रित बन गयी है। वहाँ दूसरों की भावना का स्थान नहीं है। अपना लाभ, सुख, सुविधा के सामने दूसरे नगण्य हैं। आज की उपभोगवादी संस्कृति ने जनता में ऐसी मानसिकता को रूपायित किया है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 69

2.2.1.3 आस्थाविहीन पीढ़ी

आज की उपभोगवादी संस्कृति ने ऐसी एक मानसिकता को जन्म दिया है कि उपयोग करना और फेंक देना। आज परिवार के भीतर में ही हम ऐसी मानसिकता देख सकते हैं। यह मानसिकता नयी पीढ़ी को पारिवारिक व्यवस्था के प्रति आस्थाहीन बनाती है। घर आज की पीढ़ी को सोने या विश्राम करने का एक स्थान मात्र है, इसके अतिरिक्त परिवारवालों के बीच आत्मीयता का भाव तो नहीं है। इसलिए आज की युवा पीढ़ी अकेला रहना चाहता है। वह विवाह जैसी संस्थाओं को संबन्धों का जाल समझकर उसमें न फँसने का निर्णय करती है। 'एक अकेली तस्वीर' की नायिका तनिया अविवाहित होकर जीना चाहती है, क्योंकि वह अब अपने आप में खुश है, स्वतंत्र है। वह अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व को परिवार के लिए नष्ट करना नहीं चाहती है। इसलिए तनिया ने पापा से कहा, "पापा, हम सोचते हैं, शादी वगैरह हमें सूट नहीं करेंगी।' पापा हँस दिए : 'हाँ-हाँ शादी न हुई काले बुन्दे हो गए, तुम्हें सूट नहीं करेंगे।' तनिया गंभीर हो गई : 'सच कह रहे हैं पापा, आप कलकत्ते मना लिख दीजिए।"[1] पापा से भी तनिया एक दूरी रखती है। वह घर में अपनी एक अलग दुनिया बनाकर जीता है। 'नई दुनिया' की पूर्वा को तो घर समय के अनुसार भागदौड़ करनेवाली एक संस्था मात्र है। घर के सभी सदस्य अपनी पूर्वनिश्चित दिनचर्या के अनुसार चलते हैं। यह देखकर पूर्वा को लगा कि उन लोगों को किसी न किसी प्रकार की संतुष्टि या आनन्द नहीं

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 16

मिलता है। "घर के लोगों को कभी फुरसत न थी, न सोमवार को न इतवार को। वे हमेशा भागदौड़ में लगे रहते। जाने उन्होंने इतना बड़ा बगीचा क्यों बनाया था। वे आँख उठाकर भी उस ओर न देखते।"[1] पूर्वा के अनुसार ज़िन्दगी में अपनी मर्जी के अनुसार जीना चाहिए। उसके लिए एक परिवार की ज़रूरत नहीं है। अपने परिवारवालों के समान नियमों या दिनचर्या के बन्धन में अपने को लगाने के लिए वह तैयार नहीं है। इसलिए पूर्वा ने पारिवारिक व्यवस्था और विवाह प्रथा का खुलकर विरोध करते हुए कहा "मैं किसी साहब की मेमसाहब नहीं बनना चाहती।"[2] पूर्वा अपना जीवन अपनी मन पसंद दुनिया के अनुसार जीने का तय लेती है।

अपना जीवन उत्तरदायित्वों की जाल में फँसाने के लिए 'प्रतिप्रश्न' की महिमा भी तैयार नहीं है। उसकी राय में अपना जीवन किसी ओर के लिए समर्पित करने से या अपनी सुख-सुविधाओं को नष्ट करने से कोई फायदा नहीं है। इसलिए वह अविवाहित रहती है। महिमा की मानसिकता ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती है "वह एक अदद पुरुष की सेवा में अपने जीवन का संपूर्ण समर्पण सोच भी नहीं सकती थी। उसे विवाह की संरचना सामंती दिखाई देती जिसमें पति-पत्नी का रिश्ता स्वामी-सेविका का था।"[3] महिमा को अपनी माँ की व्यस्तता और भाभी की उत्तरदायित्वों का बोझ देखकर मन ही मन हँसी आती है। महिमा को लगा है कि वे सब अपना जीवन व्यर्थ करते हैं। उसकी राय में अपना जीवन के लक्ष्यों की पूर्ति

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ.315
2. वही - पृ. 317
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ.26

करना जीवन की सफलता है, वहाँ रिश्ते तो हमेशा गड़बड़ बनाते हैं। 'पटकनी' नामक कहानी में शादी तय किये मित्र को साथियाँ आदेश देते हैं कि विवाह मत करना। उनके राय में विवाह से ज़िन्दगी के सुख और लक्ष्य से पलायन करना पडती है। विवाह जीवन की मुसीबतें और बन्धनों की याद दिलाकर वे कहते हैं "संतोष तुम्हें जितने हाइ होप्स हैं न, आइ मीन ऊँची आशाएँ अपनी शादी से, मैं बनाना चाहता हूँ कि तुम फूल्ज़ पैराडाइज़ में रहती हो। क्या तुम्हें अपने देश में फ्लॉप मैरिजेज़ की संख्या का बिल्कुल नहीं पता। एक सर्वेक्षण के अनुसार हमारे यहाँ हर तीसरी शादी फेल होती है।"[1] साथियों ने भी ऐसा सुझाव देकर विवाह करने से उसे मना किया है।

अपने आप सिमटकर अपनी दुनिया में जीने पर घरवालों से अनजाने ही एक दूरी पैदा होती है। यह आपसी संबन्ध और रिश्ते का महत्व नष्ट करती है। 'कौवे और कोलकत्ता' नामक कहानी में इसका स्पष्ट उदाहरण देख सकते हैं। इसमें हेमा चोट लगाकर रोती है, लेकिन निकट के कमरे में बैठी दीदी उस पर ध्यान नहीं देती है। दीदी अपने कामों में व्यस्त है, बहन के क्रंदन से उस पर कोई भी प्रभाव नहीं डालता - "कमरे में दीदी टेबिल लैम्प जलाकर अपने नाखून रंग रही थी। उसने हेमा की तरफ देखा ही नहीं। जब उसने बिसूरते हुए कहा, दीदी-बहार बोली, 'डिस्टर्ब मत कर, एक और कोट लगाना पड जाएगा।"[2] बहन के साथ रहकर भी हेमा को लगा कि वह अकेली है। यह सोच हेमा के मन में घर के प्रति

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 116
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 37

घृणा पैदा कराती है। इसलिए वह घर और अपने शहर को छोड़कर चली जाती है। सिर्फ अपना जीवन और सुविधाओं को प्रधानता देने की संस्कृति हमारे पारिवारिक संबन्धों को तोड मरोड़ करती है।

2.2.2 वृद्ध जीवन का कटु यथार्थ

पुराने ज़माने में वृद्ध लोगों को परिवार में उच्च स्थान देकर उनकी राय के अनुसार घर चलाने की प्रथा चली थी। लेकिन आज के उपभोगवादी दृष्टिकोण से लोगों के भीतर से ममत्व, अपनापन और आस्था के भाव लुप्त हो जाते हैं। परिवार के हर रिश्ते को भी लाभ और स्वार्थ के मुताबिक आँकने की मानसिकता आज की पीढ़ी को जकडती जा रही है। इस मानसिकता का सबसे अधिक दुष्परिणाम वृद्धलोगों को भोगना पडता है। आज घर के वृद्धों को उपेक्षा, तिरस्कार, घृणा के भाव से व्यवहार कर घर के किसी कोने में ढ़केल दिया जाता है। यह उन लोगों के अपने-आप टूटने का कारण बन जाता है। इनकी दारुण दशा से आहत होकर डॉ. शिवनारायण ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार संकेत किया है कि "उपेक्षा, तिरस्कार और एकाकीपन को झेलते अपने स्वर्णिम दिनों की याद में जीते-जागते स्मारक।"[1] यह ठीक है कि हमारी उपेक्षा, तिरस्कार, घृणा का दृष्टिकोण वृद्धावस्था को एक अभिशाप का समय बनाता है। ममता कालिया ने अपनी कहानियों में बुजुर्ग लोगों के अकेलापन, तनाव, युवा पीढ़ी से संघर्ष आदि से लेकर उनके जीवन की छोटे-छोटे पहलुओं को बड़ी तन्मयता से चित्रित किया है।

---

1. डॉ. शिवनारायण - वृद्ध जीवन की कहानियाँ - पृ. 8

2.2.2.1 उपेक्षा और तिरस्कार

वर्तमान समय में घर-परिवार में वृद्धजन अपने-आप उपेक्षित महसूस करते हैं। आज परिवार में जितने भी लोग शामिल हैं, वे अपने-अपने कामों में व्यस्त है। बेटे-बहुएँ नौकरी के लिए चले जाती है, पोते-पोतियाँ स्कूल में। व्यस्तता की इस दौड़ में वे अपने वृद्ध माँ-बाप को अनदेखा करते हैं। ऐसी स्थिति में माँ-बाप हमेशा छुट्टी के दिनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं क्योंकि कुछ समय अपने बच्चों के साथ बिताने के लिए। लेकिन असल में क्या होता है कि अब छुट्टी तो सोने या शोपिंग करने का दिन बन गयी है। 'बाज़ार' नामक कहानी में दादी इतवार में बच्चों के साथ समय बिताने की प्रतीक्षा में रहती है। इसलिए वह सबेरे ही उठकर बच्चे नींद से उठकर आने का समय देखी बैठी। उसने आशा की है कि बच्चे आकर आज बातें करेंगे और अपने रक्तचाप और रक्तशर्करा नापतेंगे। लेकिन उठते ही बच्चों ने शोपिंग के लिए जाने की तैयारी की है। दादी को उस दिन भी अन्य दिनों के समान घर में अकेला बैठना पडा। उसे घर में सबकुछ है, स्वास्थ्य की रक्षा के लिए स्वपरीक्षणवाले सभी उपकरण बेटे ने खरीदकर दिये हैं लेकिन कभी-कभी लोग यह भूल गये हैं कि स्वपरीक्षण करने के बदले माँ-बाप सिर्फ इतना चाहते हैं कि बच्चे पास आकर बैठें और अपने स्वास्थ्य की पूछताछ करें। दादी के मन की पीडा और अकेलापन को ममताजी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "किताबों के बीच रक्तचाप और रक्तशर्करा नापने के उपकरण रखे दिख रहे थे। एक मन हुआ, उठकर अपनी जाँच कर लूँ। तत्काल मन अकड़ और सिकुड़ गया। इसका क्या मतलब है। मरीज़ भी मैं और डॉक्टर भी। केमिस्ट भी और कम्पाउण्डर थी। खुद

बीमार हो। खुद अपनी उँगली में सुई चुभोओ, खुद अपना परिणाम पढ़ो। फिर दिन भर कुढ़ो या लड़ो। घर में इतने सदस्य हैं। सब घोड़े बेचकर सोये पड़े हैं............. दरअसल स्वपरीक्षणवाले सभी उपकरण उठाकर समुद्र में फेंक देना चाहिए।"[1] दादी के इन विचारों से यह व्यक्त हो जाता है कि भौतिक सुविधाओं से ज़्यादा बच्चों का प्यार और ध्यान वे चाहती हैं।

आज युवा पीढ़ी माँ-बाप के लिए आर्थिक सुरक्षा देती है, हॉम नर्स को रखती है, बाकी सारी की सारी सुविधाओं का इंतज़ाम करती है। उनकी राय में बच्चों के उत्तरदायित्व सिर्फ इन भौतिक सुविधाओं का प्रबन्धन करना मात्र है। बीमारग्रस्त माँ-बाप को रुपये भेजने और गेट-वेल कार्ड भेजने से उनका काम पूरा हो जाता है। "दादाजी मैं दादी-माँ के लिए गेटवेल कार्ड भेजूँगा, ओ.के।" माँ-बाप के लिए समय नष्ट करने के लिए आज की पीढ़ी तैयार नहीं है। 'नमक' नामक कहानी में बेटा अपने धंधे को प्रमुखता देता है। बीमारग्रस्त माँ की सेवा कर समय नष्ट करने के लिए वह तैयार नहीं है। इसलिए वह माँ को अस्पताल में भर्ती कर जाने की कोशिश करता है। "ममा, आप यहीं रहेंगी, कहीं नही जाएँगी। मुझे आज रात ही मुंबई जाना है। दो दिन में लौटूँगा। अकेले घर में कौन आपकी देखभाल करेगा?"[3] यहाँ बेटा माँ की इलाज से ज़्यादा अपनी सुविधा को प्रमुखता देता है। वास्तव में बेटे को मुंबई जाना है। इसलिए वह माँ को भर्ती करने के लिए कोशिश

1. ममता कालिया - थोड़ा सा प्रगतिशील - पृ. 88
2. ममता कालिया - थिएटर रोड़ के कोवे - पृ. 230
3. वही - पृ. 83

करता है। माँ की मानसिकता को समझने या उसकी बात सुनने के लिए भी बेटे के पास समय नहीं है।

वृद्धावस्था से गुज़रते वृद्धजनों के लिए घर में पोते-पोतियों का होना बहुत बड़ा सहारा होता है। बच्चों के हंसी-खेल में उनका अपना सारा दर्द मिट जाता है। वे भी बच्चों के समान सपना देखना शुरू करते हैं। 'आज़ादी' नामक कहानी के दादी और पोती के बीच अटूट और गहरा प्यार होता है। दादी अपना सारा दर्द पोती के सामीप्य से भूल जाती है। "मैंने दोपहर में कहा, 'चलो दादी, चुपके से डॉक्टर को दिखा आयें'। दादी कुछ नहीं बोली। बस मुझे कसकर छाती से लगा लिया............ दादी ने सुनकर उसांस भरी 'रे बब्बू, तेरी नौकरी लगे तो सबसे पहले मोय डागडर के लै चलना'।"[1] घर के सभी लोग दादी पर उपेक्षा रखते हैं। पर पोती उस पर ध्यान देती है। पोती अपने माँ और बाप को यह दिखाना चाहती है कि कैसे दादी का ध्यान रखना चाहिए।

वृद्ध माँ-बाप की स्थिति कभी-कभी इतनी शोचनीय बन जाती है कि घरवाले उन लोगों को चौकीदार या नौकर के समान मानते हैं। वे बिना तनख्वाह से घर की सुरक्षा करने का एक उपाय समझते हैं। "जिस भी घर में एक बुजुर्ग था, वहाँ घर-द्वार की सुरक्षा कोई गंभीर समस्या नहीं थी। ऐसे घरों में कभी ताला नहीं लगता। घर के युवा सदस्य आने-जाने, दौड़-भाग में लगे रहते, उनके बुजुर्ग टाइमकीपर बने तख्त पर बैठे रहते। उनकी खाँसियों में ही होशियार, खबरदार

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 191

जैसी चेतावनी शामिल रहती।"[1] ऐसी स्थिति में वृद्ध लोगों का अपना अस्तित्व भी गायब हो जाता है वे दूसरों की इच्छा के मुताबिक चलनेवाले यंत्र के समान बन जाते हैं। घर का सामान खरीदने, बच्चों को स्कूल छोडने और उनकी देखभाल करना, घर का चौकीदार का काम करना आदि उत्तरदायित्वों में उनका जीवन सिमट जाता है। बच्चों के प्यार, ध्यान, ममता आदि के लिए वे इन सबसे सहमत हो जाते हैं। 'तासिर' में कसल बाबू के दोनों बेटे विदेश में है। पत्नी की मृत्यु के बाद वह अपने घर में अकेली हो गयी है। बेटे अपनी व्यस्तताओं में पिता को भूल जाते हैं। इस कहानी में कसल बाबू घर को मकान कहता है। क्योंकि बेटे, बहू, पोते ये सब एक साथ रहने पर मकान घर बनता है, नहीं तो पत्थरों से बनाया हुआ एक मकान मात्र है। कसल बाबू को खुद ही लगा कि वह उस मकान का चौकीदार है। बेटे के लिए इसे सुरक्षित रखना अपना काम है। लेकिन बेटे की उपेक्षा उसके मन में निराशा और झंझट उत्पन्न होता है। "अंधेरे में बैठे-बैठे उन्हें लगा, उनके जीने का प्रयोजन क्या है? सबी काम पूरे हो चुके हैं। निर्भय और निश्चय पढ़ लिखकर अपनी अपनी नौकरी में व्यस्त है; उनके अपने परिवार है; शांति स्वर्ग में आसीन है। अंतिम विदा के सिवा और क्या काम शेष है।"[2] अकेलापन की तीव्रता उसके मन में मृत्यु की चिंता उभराती है। यह उसे मृत्यु की ओर धकेलती है।

अकेला या अपेक्षित होने के भय के कारण घरवालों पर अपना अधिकार मज़बूत रखनेवाली एक माँ की कहानी 'नया त्रिकोण' में प्रस्तुत है। माँ अपने और

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ.155, 156
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ.183

घरवालों के जीवन नियमों में बाँधने की कोशिश करती है। क्योंकि माँ सोचती है कि घर का अधिकार या स्वतंत्रता बेटे या बहू को देने पर वे लोग अपने को उपेक्षित करेंगे। यह भय माँ के मन में होने के कारण घरवाले कितने ही प्यार, आदर दें, फिर भी माँ हमेशा नाराज़ रहती है और सबसे अधिक बहू पर। यह कभी-कभी बहू की सहनशक्ति का कचमूर निकलता जा रहा था। "तबियत ठीक होने पर जीजी कहती 'मैं इतनी बीमार हुई, अन्नू मेरे साथ ही बीमार पड़ गया, दो दिन दफ्तर जाने की सुध नहीं रही। पान के पत्ते की तरह मुझे उल्टा-पुल्टा, मोय तो सुध ही न थीं'। उनकी सहेली कहती, 'भगवान हो, बेटा बहू सब पास में हैं।' जीजी कहती, 'अनीता बेचारी चौके से निकले तो सेवा करे, चलो जी मैं चाहूँ ही नहीं कोई मेरी फिकर करें।' अनीता तिलमिला उठती। जीजी के लिए दूध गरम करते, ठंडा करते, कपड़े धेते, बिस्तर बिछाते वह मुँह फुला लेती। छोटे-छोटे काम भी उसे तबालत लगते।"[1] माँ को प्रसन्न रखने की भागदौड़ में फँस जाते हैं घरवाले। वास्तव में माँ के इस तरह के व्यवहार का कारण तो उपेक्षित होने का भय है। लेकिन माँ का यह अदम्य और अनोखा व्यवहार घर के बाकी सदस्यों की मानसिकता को उखेडता है और घर के वातावरण को और भी संघर्षमय बनाता है।

2.2.2.2 जीवन साथी की विदाई

परिवारवालों से हुई उपेक्षा और घृणा से बुजुर्ग लोग मानसिक रूप से उदास बन जाते हैं। जीवन की अंतिम वेला में उनका एकमात्र अश्रय अपना जीवन

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 62

साथी है। लेकिन इनमें एक की विदाई दूसरे को मानसिक रूप से अधिक कमज़ोर बना देती है। यह उनको एकदम तोडती है। यह मानसिक तनाव और अकेलापन उनको मृत्यु की द्वार की ओर ढकेलते हैं। ममता कालिया की 'उनका जाना' नामक कहानी इसका दृष्टान्त है। इसमें पत्नी की मृत्यु होने पर जीवन में अकेले रहने के लिए मज़बूर हुए एक वृद्ध पिता की दारुण कथा है। पत्नी की मृत्यु के कुछ दिनों बाद पति भी मर जाता है। वृद्ध पति को कोई बीमारी तो नहीं था लेकिन मृत्यु का कारण यह है कि जीवन को कैंसर के रूप में नाश करनेवाला अकेलापन या एकाकीपन। उस वृद्ध पिता के मन की वेदना को इस वाक्य से समझा जा सकता है - "मैं अकेला रह गया। मुझे समझनेवाला कोई नहीं रहा। पर तुम लोगों के बर्ताव से मैं और अकेला रह जाऊँगा।"[1] ममताजी ने 'सेवा' नामक कहानी में भी ऐसी स्थिति को चित्रित किया है। कहानी में पत्नी बेहोश हो जाती है और अस्पताल में उसकी भर्ती हो जाती है। तब पति को लगता है कि वह इस बड़ी दुनिया में अकेला बन गया है। मन की वेदना और एकाकीपन को मिटाने के लिए पिता अपने बच्चों का सामीप्य चाहता है। लेकिन वे अस्पताल में आकर सिर्फ आदेश देकर चले जाते हैं। "लेकिन इधर पन्द्रह दिन से जब से पत्नी बीमार पडी है, नरोत्तम सहाय भयंकर अकेले हो गए।........... घबराहट में उन्होंने तीनों बच्चों को खबर कर दी। दो दिन के अन्दर उनकी दोनों लड़कियाँ आ गईं 'ममी' 'ममी' करती।................ तीन दिन उन्होंने अस्पताल का उपचार देखकर संतोष प्रकट

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कोवे - उनका जाना - पृ. 17

किया, 'इलाज ठीक हो रहा है। पास ही सिस्टर का ड्यूटी रूम है। पापा आप ममी का ठीक से इलाज कराइए। आप ही को ध्यान रखना है इनको।"[1] पत्नी बीमार होने के साथ बच्चों के ऐसी व्यवहारों से भी पिता शारीरिक और मानसिक रूप से गिर जाता है। उसे ऐसा लगा कि वह एकदम अकेला है। बच्चे भी नहीं है और जीवन साथी भी नहीं है। यह चिंता धीरे-धीरे मौन और विषाद में बदल गयी। 'तासिर' कहानी के कंसल बाबू भी ऐसे एक निरर्थकताबोध का शिकार है। "अंधेरे में बैठे-बैठे उन्हें लगा, उनके जीने का प्रयोजन क्या है? सभी काम पूरे हो चुके है। निर्भय और निश्चय पढ़ लिखकर अपनी-अपनी नौकरी में व्यस्त है; उनके अपने परिवार है; शांति स्वर्ग में आसीन है। अंतिम विदा के सिवा और क्या काम शेष है।"[2] कंसल बाबू का अकेलापन और निरर्थकताबोध इतना तीव्र है कि वह दूसरों से बातें करने के लिए भी तैयार नहीं है। घर में एक रात बिजली के जाने पर दीपक जलाने के लिए भी वह तैयार नहीं है। वह अंधेरे में रहना चाहता है।

2.2.2.3 पीढ़ियों का अंतराल

परिस्थितियों के बदलने पर संबन्धों में भी बदलाव आता है। आज सारे के सारे संबन्धों को धन संभालता है। धन पर केन्द्रित इस युग में रिश्ते, संबन्धों, मानवीयता, यादें, मिट्टी आदि को कोई महत्व नहीं है। पुरानी पीढ़ी इसको अधिक महत्व देती थी। इसलिए आज की पीढ़ी के धन कमाने की अंधी दौड़ के प्रति पुरानी पीढ़ी तो चेतावनी देते हैं। यह आज की युवा पीढ़ी के मन में उनके प्रति घृणा,

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड़ के कोवे - पृ. 224
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 183

नफरत और दूरी पैदा कराता है। पुरानी पीढ़ी तो अनुभवों से बताती है, यह कभी-कभी वे भूल जाते हैं। 'उडान' नामक कहानी में बेटा साक़ी का एक मात्र लक्ष्य धन कमाना है। धन कमाने और ऊँचे उड़ाने में बाधा डालनेवाले सभी को पीछे छोड़कर वह आगे बढ़ा। साक़ी को पर्याप्त वेतन मिले पर भी वह पुरानी कम्पनी और वहाँ के नौकरों के बारे में बिना कुछ सोचकर अंतरराष्ट्रीय कम्पनियों और वहाँ के अधिक वेतन की ओर भागता है। अपने विजय के लिए किसी को भी इस्तेमाल करने की साक़ी की मानसिकता से त्रस्त होकर पिता ने उसे अवगत कराया। पर साक़ी ने जवाब यों दिया है, "पापा, आपके ज़माने में ईमानदारी बहुत बड़ा गुण माना जाता था, मेरे ज़माने में समझदारी इससे बड़ा गुण है। और तो और वफादारी, ईमानदारी अब इन्सानों की नहीं, कुत्तों की खासियतें हैं और मैं किसी कम्पनी का वफ़ादार कुत्ता कहलाना कभी पसंद नहीं करूँगा।"[1] साक़ी को ममताजी ने आज की पीढ़ी के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है। माँ-बाप और उनके आदेशों को छोड़कर साक़ी अपने रास्ते और लक्ष्य की ओर जाता है। नई पीढ़ी की इस अंधी दौड़ से पुरानी पीढ़ी सहमत नहीं है। दोनों पीढ़ियों के बीच की इस टकराहट माँ-बाप को मानसिक संघर्ष में डालती है।

2.2.2.4 आर्थिक तंगी

शारीरिक और मानसिक विवशताओं के साथ आर्थिक मुसीबतें वृद्ध लोगों के जीवन को और भी त्रासदीपूर्ण बनाती हैं। छोटी-छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 444

के लिए दूसरों के सामने हाथ दिखाने की स्थिति उन के लिए घोर अपमानजनक है। आर्थिक तंगी उन लोगों को दूसरों से हटकर अकेला रहने के लिए मज़बूत बनाते हैं। ममता कालिया 'वारदात' कहानी में आर्थिक तनाव के कारण तड़पनेवाले वृद्ध दम्पतियों का चित्रण किया है। आर्थिक विषमता के कारण वे कॉलनी के कार्यकलापों से दूर रखते हैं। एक महीने के घर-खर्च चलाने के लिए वे हिचकते हैं। इसलिए चंदा लेने के लिए आनेवाले मित्रों को भी उससे नाराज़ लगते हैं। सिंह साहब अपनी विवशता को व्यक्त करते हुए कहा, "आप तो खामखाह नाराज़ हो गये। बात यह है, हमारी कोई आमदनी तो है नहीं, रिटायर्ड लाइफ़ है। पैंसठ की उमर हो चली। कब भगवान के यहाँ से बुलावा आ जाय, कह नहीं सकते।"[1] उनकी आर्थिक विषमता की तीव्रता ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती है "कभी वह रसोई से सटे हुए कमरे का पंखा चला लेती कि डाइनिंग टेबिल तक आते-जाते कुछ हवा लगेगी पर सिंह साहब अगर देख लेने तो पंखा बन्द कर देते। वे जैसे अपने आप से कहते 'हमारी तो रिटायर्ड लाइफ़ है। हम नवाबों की तरह हर कमरे में पंखा चला कर कैसे छोड़ सकते हैं।"[2] क्योंकि सिंह साहब जानते हैं कि कुछ पैसे तो बाकी न रखे तो अंतिम वेला में दवा खरीद लाने के लिए भी कोई न होगी।

इसके साथ ही साथ लोग अपने स्वार्थ के लिए वृद्ध लोगों को धोखा देने के लिए भी तैयार है। किसी-न-किसी प्रकार के वादे देकर माँ-बाप की छोटी-छोटी जमा पूंजी को भी लूट करने के लिए बेटे आपस में स्पर्धा करते हैं। 'पण्डिताइन'

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 115
2. वही

नामक कहानी में अनपढ़ वृद्ध-माँ के पैसे अपने कब्जे में रखकर बेटे ही माँ के जीवन को नरक बनाया। पिता अपनी मृत्यु के पहले ही बैंक और डाकघर खाते के सभी अधिकार अपनी पत्नी के नाम पर लिखा। लेकिन बाप की मृत्यु के कुछ दिनों के बाद ही बेटे ने सभी कागज़ों पर दस्तखत लेकर रुपये अपना किया। "बडे बेटे ने माँ से कहा, 'नाम लिखे आवे के सौ-खतरे हैं अम्मा। तुम कुछ जानो न बूझो। कहीं बैंक में कोई तुमसे दस्तखत करवा ले तो लुट जावो।' पण्डिताइन डर गयी, 'बेटा हम समझो न बूझों, तुम करो हिसाब किताब।' बेटे ने उनसे तो कागज़ों पर दस्तखत ले लिए, 'अब तुम चैन से बइठ दोनों जून चुपड़ी खाओ।' बेटे ने बैंक और डाकघर खाते के सभी अधिकार अपने कब्जे में ले लिया।"[1] लेकिन अधिकार मिलने पर स्थितियाँ एकदम उल्टी हो गयी है। उन लोगों ने पिता के फोटे के तिड़क गये शीरो बदलने के लिए अन्य लोगों से रुपये भीख करने की स्थिति तक माँ को पहूँचाया। आज की पीढ़ी किसी-न-किसी प्रकार का झूठ बोलकर माँ-बाप से पैसा लूटकर उन्हें किसी अँधेरे कोने में धकेलती है। बच्चों की ऐसी मानसिकता और आर्थिक असुरक्षा की स्थिति वृद्ध माँ-बाप की ज़िन्दगी को और भी त्रासदीपूर्ण बनाती है।

2.2.2.5 सेवा निवृत्ति

सेवा निवृत्ति वृद्ध लोगों के सबसे बड़ी समस्या है क्योंकि पूरे दिन में काम कर और घर का पूरा अधिकार और संपत्ति जमा रखनेवाले इनके हाथों से एक दिन

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 87

ये सब नष्ट हो जाने पर वे एकदम टूट जाते हैं। आय खत्म होने के कारण बच्चे पर निर्भर होकर आगे जीने की चिंता ने उन्हें सेवा निवृत्त होने को डराते हैं। रिटयरमेंट के प्रति उनके मन का भय ममताजी ने 'इक्कीसवीं सदी' के ओझा बाबू के शब्दों से व्यक्त किया है। ओझा बाबू अपने सहकर्मियों को चेतावनी के रूप में इसका संकेत देता है "इक्कीसवीं सदी का मतलब समझते हो भोला बाबू? इसका मतलब होता है रिटायरमेंट। बैठ रहना दिन भर मूढ़े पर।"[1] रिटायरमेंट तो एक विभाजन रेखा है। इसके बाद और पूर्व के जीवन में बिल्कुल बदलाव होता है। रिटायरमेंट के पहले सभी लोग उनपर आश्रित होकर जीते हैं। लेकिन रिटायरमेंट के बाद सभी के लिए वे अनावश्यक और बोझ बन जाते हैं। 'तासिर' नामक कहानी में वृद्ध लोगों की आपसी बातचीत से उनके मन की वेदना, निराशा, ऊब आदि को स्पष्ट किया जाता है। रिटायर होने के बाद वे अपना बाकी जीवन पूर्व दिनों की यादों में बिताते हैं। "मिश्र बाबू कहते, 'सारा दफ्तर मेरे सामने धर्राता था। किसी की क्या मजाल कि मेरी मर्जी के बिना अपनी अर्जी बदल दे।' 'वाह साब, क्या ज़माना था। अब तो बेटी छोड़, बहू भी मनमर्जी कर लेती है और आप कुछ भी नहीं कर सकते।' पांडेजी कहते। वैसे सब जानते थे कि मिश्रा बाबू की बहू उनका कहना बिल्कुल नहीं मानती। वे अगर आलू बैंगन बनाने को कहते, वह मूली बैंगन बना देती बिना यह सोचे कि मूली उन्हें बाय करती है।"[2] घरवालों का ऐसा व्यवहार उनके मन को और भी निराश बनाते हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 46
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 181

उपेक्षा, निराशा, और अकेलापन उनके मन के साथ शरीर को भी क्षीण बनाते हैं। उनके यह मानसिकता उन्हें जल्दी ही बुढ़ापा तक पहूँचाते हैं। 'वारदात' की सिंह साहब स्कूल से अवकाशप्राप्त अध्यापक थे। रिटायर होने के पहले दिन तक वह सक्रिय और मुस्तैद आदमी था, लेकिन रिटायर होने पर वह जल्दी ही ढ़ीला बन गया। सारे के सारे कामों में लापरवाह होकर अपने बिस्तर में पडा है। बैठक तक जाने के लिए वह तैयार नहीं है। यह देखकर पत्नी कहती है - "इतना बुढ़ापा आया नहीं है, जितना तुम उसे बुला रहे हो। कल तक अच्छे-भले दफ्तर जाये थे, अब तुम हाय-हाय करने लगे।"[1] वास्तव में उनका थकावट शरीर को नहीं मन का है। 'अट्ठावनवाँ' नामक कहानी में अवकाशप्राप्ति एक व्यक्ति के मन में कितना घोर आघात डालती है, इसका जीवंत चित्रण देख सकते हैं। नायक 'डि.के.' को कम्पनी से अवकाशप्राप्ति का पत्र मिलने पर उसे यह यकीन न हुआ कि यह उसकी ज़िन्दगी का अट्ठावनवाँ साल है। इस जानकारी से वह एकदम टूट गया। सालों से कम्पनी के लिए परिवार को भी भूलकर उसने काम किया। लेकिन अवकाशप्राप्ति के बाद उसकी समझ में आया कि अब उसके सामने सिर्फ परिवार ही बाकी है। अन्य सब कम्पनी के नाम पर और उसके पद के अनुसार प्राप्त हुआ था। डि.के. यह भूल गया था कि कम्पनी व्यक्ति के लिए नहीं, अपनी नीतियों के लिए नाज-नखरा करती है। लेकिन मूर्ख कर्मचारी सोचते हैं कि कम्पनी ने यह सब खास उसके लिए किया है, सिर्फ उस के लिए। इससे अवगत होने पर डि.के.

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 154

कम्पनी से बाहर जाने के लिए डरता है क्योंकि अब उसे पता है कि शहर के परिचित लोग अपना परिचित नहीं है कम्पनी और अपना पद का परिचित थे। “गलत। शहर कम्पनी के संपर्कों से भरा पडा है। लोग तो जब आँख भी नहीं मिलाएँगे। पहली तारीख से ही वे अगले मैनेजर के घर ठोकना शुरू कर देंगे।”[1] अवकाशप्राप्ति के साथ नौकरी ही नहीं स्थान, सम्मान और इज्जत भी नष्ट हो जाते हैं। यह पहचान उसे पूर्ण रूप से तोड़-मरोड करती है।

यह ठीक है कि अवकाशप्राप्ति के बाद परिवार से ही नहीं, समाज से भी उनके स्थान नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी जीने और मरने में फर्क भी नहीं हो जाता है। पिछले दिन तक आदर के भाव से सिर झुकानेवाले अवकाशप्राप्ति के बाद उसे साधारण बूढ़े आदमी के रूप में मानते हैं। यह उन लोगों को सह नहीं सकते। ‘किताबों में कैद आदमी’ के अग्रवाल प्रिंसिपल थे। अवकाशप्राप्ति के बाद स्कूल की यादों ने उसे वापस स्कूल की ओर बुलाया। लेकिन वहाँ आने पर उसके सहकर्मी लोग सिर्फ नमस्कार कहकर चले गये। अग्रवाल जी ने पुरानी आदत के अनुसार वहाँ के दोनों चपरासियों को रुपये दिया तो उन्होंने इनकार किया। इस घटना ने अग्रवालजी के मन की चोट को और भी गहरा बनाया। “अग्रवाल साब ने पूर्व वर्षों की तरह पाँच-पाँच रुपए दोनों को देने चाहे। उन्होंने हाथ जोड़ दिए, ‘रख लें हुजूर। अब आप रिटायर हो गए, अब हमारा लेना और आपका देना बनता नहीं है।’ ‘रिटायर हो गए हैं, मर तो नहीं गए’, अग्रवाल साब ने बिगड़कर कहा।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 361

'फिर भी साब, फरक तो पड़ जाता है।' कहते हुए दोनों चपरासी चले गए। धीरे-धीरे स्कूल के गेट भी उनके सामने बंध हो गया। चौकीदार उसे "बाओजी, यह आम रास्ता नहीं है। कहकर उसे रोका।"[1] चौकीदार के बर्ताव ने अग्रवाल जी सिर से टोपी और पैरों से जूते निकालकर फेंक दिये अर्थात उसकी इज्जत पूर्ण रूप से नष्ट हो गयी। अग्रवालजी स्कूल के समान घरवालों और पडोसियों के साथ भी प्रिंसिपल जैसा व्यवहार करता रहता था। लेकिन सेवा निवृत्त होने पर अग्रवालजी को आदर देने के लिए वे तैयार नहीं है। अग्रवालजी की बातों को वे नगण्य भाव तिरस्कार करते हैं। अग्रवाल जी के मन की वेदना, पीडा और अपमान उसने इन शब्दों में व्यक्त किया है "रिटायर होना भी एक बीमारी है, कोढ़ ओर खाज से भी बुरी। कोई पास बैठना नहीं चाहता। ये लोग कभी रिटयर नहीं होंगे। मैं इतना बूढ़ा नहीं हूँ जितना इन जवानों ने मुझे बना दिया है।"[2] अन्य लोगों के ऐसे व्यवहारों पर अपना विरोध इन शब्दों से अग्रवालजी ने प्रकट किया है। और खुद अपने को खुरा करने के लिए उन्होंने किताबों और अख्बारों में कैद बनाया।

रिटायर होने पर अपना बाकी जीवन घर में कैद करने के बजाय भारत पर्यटन के लिए निकलनेवाले दम्पतियों की कहानी है 'दल्ली'। अपने उत्तरदायित्वों को निभाने के बाद जीवन यात्रा की थकान से मुक्ति पाने का निर्णय वे लेते हैं। और यह यात्रा उनके पुराने प्रेम को और भी जगाती है। रिटायरमेंट जीवन किस प्रकार बिताना है, इसका सशक्त उदाहरण है यह कहानी। वास्तव में रिटायरमेंट का जीवन

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 192
2. वही - पृ. 191

केवल निराशा और ऊब का ही नहीं, विश्राम और स्नेह का भी है। इसलिए इसे जीवन को एक नया मोड़ के समान मानना चाहिए।

2.2.3 बाल जीवन

बाल्यकाल जीवन की प्रारंभिक अवस्था है। व्यक्ति की भिन्न-भिन्न शारीरिक-मानसिक शक्तियों का आविर्भाव और विकास इसी दशा में हुआ है। एक व्यक्ति के जीवन की सफलता या असफलता का निर्णय करने में उसके बाल्य काल का एक बडा योगदान है। प्रत्येक व्यक्ति के भावी जीवन पर उसके बाल्य जीवन का प्रभाव ज़रूर होता है। क्योंकि बचपन में जो हम सीखते हैं उसके हिसाब से हमारा व्यक्तित्व का निर्माण होता है। इसलिए कहा जाता है कि बचपन में जो सीखता है वह ज़िंदगी भर नहीं भूलता। बालक की छोटी-छोटी हरकतों में उसके भविष्य का अंकुर छिपा रहता है। इसलिए हम एक बालक के विकास पर बडी सूक्ष्मता और ध्यान देना चाहिए। बच्चों का मन बहुत ही कोमल और सूक्ष्म है। उनके साथ किये गये बुरे बर्ताव भी उनके मन में गहरा आघात पहूँचाते हैं। लेकिन ज़्यादातर माता-पिता इस बात से अनभिज्ञ होकर बच्चों के मन को ठेस पहूँचाते हैं। ममता कालिया अपनी कहानियों में सूक्ष्म दृष्टि के साथ बच्चों की मानसिकता का पर्दाफाश करने का कोशिश किया है। 'आपकी छोटी लड़की' नामक कहानी में घर में भेदभाव और उपेक्षा का अनुभव करनेवाली एक छोटी लड़की की मानसिकता व्यक्त किया है। इसमें माँ-बाप ने बडी लड़की को घर में ऊँचा स्थान दिया है और उसकी प्रतिभा को सम्मानित किया है। छोटी लड़की के साथ नौकरों जैसे बर्ताव किया है। बड़ी

लडकी के समान प्रतिभाशील न होने कारण हर कहीं उसे उपेक्षा और निंदा का अनुभव करना पडा। इसने उसकी मानसिकता में डर और आश्रयहीनता का भाव उत्पन्न किया है। इसलिए ही एक आदमी के द्वारा हुए बुरे व्यवहार को उसे अपनी माँ से भी कह नहीं पाती। क्योंकि माँ और बेटी के बीच की दरार उतनी गहरी थी। "टुनिया ने एक बार और नल खोलने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि रामजी ने अपने पजामे की ओर इशारा किया, और अश्लील ढ़ंग से मुस्कुरा कर कहा, 'लो इससे भर लो।' टुनिया कुछ समझ नहीं पायी, पर जो कुछ उसने देखा उससे घबरा कर वह दहशत से चीखती भाग खडी हुई, बाल्टी वापस उठाने का किसे होश था। बेतहाशा भागती टुनिया तीसरी मंज़िल पर घर में घुसी कि ममी की घुड़की पडी, 'पानी नहीं लायी न, अब पीना शाम की चाय......... और बाल्टी कहाँ फेंक आयी, बोल तो सही मुँह से।' टुनिया का मन इस वक्त घिना और घबरा रहा था कि वह क्या न कर दे पर माँ भी भुन-भुन सुनकर भन्ना गयी। ये मम्मी हैं, इन्हें क्या फिक्र, टुनिया पानी क्यों नहीं लायी। इनका तो बस काम होना चाहिए।"[1] घर में माँ, दादी और बहन होने पर किसी से भी अपने मन की वेदना खुलकर कहने का साहस टुनिया को नहीं है। उसने मन ही मन आहत होकर घर के भीतर अपने को समाया।

बच्चों पर होनेवाले आक्रमण आज बढ़ता जा रहा है। घरवालों को अपने बच्चों पर विशेष ध्यान देना चाहिए। अपनी व्यस्तताओं के बीच बच्चे को क्या हो रहे हैं, यह सोचने के लिए कभी-कभी माँ-बाप भूल जाते हैं। बच्चों पर होनेवाले

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 243, 244

इन अत्याचारों में लड़का या लड़की का भेदभाव नहीं है। 'चोट्टिन' नामक कहानी की सुखिया इतनी गरीब है कि अपने शरीर को पूरी तरह ओढ़ने का वस्त्र भी उसके पास नहीं है। इसलिए उसने एक दूकान से जाँघिया की चोरी की। सुखिया को पकड़ते वक्त पुलिसवाले ने सबसे पहले सुखिया को ऊपर से नीचे तक देखा। सुखिया पाँच साल की लडकी है। इसलिए उसे लगा कि यह लडकी बेकार है, बलात्कार का लायक भी नहीं है। इसलिए सुखिया को धमकी देकर भगाया। "सिपाही ने लड़की को ऊपर से नीचे तक देखा। सुखिया का दुखिया चेहरा, मैले हाथ-पाँव, उलझे बाल, नन्हीं उम्र और सूखी चमड़ी देख उसे लगा, लड़की बेकार है, अभी तो बलात्कार के लायक भी नहीं है।"[1] छोटी बच्चियों पर ही यौन तृष्णा के साथ देखनेवाले हमारे समाज की रुग्ण मानसिकता का पर्दाफाश करने का प्रयास ममताजी ने इसमें किया है।

'मुन्नी' कहानी का केन्द्रपात्र मुन्नी ऐसी एक बच्ची थी, उसने अपने पर होनेवाले भेदभाव से आहत होकर चुप्पी रहने के बजाय आक्रोश किया है। बचपन की बीमारियों के कारण मुन्नी के पैर मज़बूत नहीं हैं, उसे सरक सरक कर चलना पडा है। लेकिन मुन्नी ने अच्छी तरह पढ़कर गाँव के सबसे प्रसिद्ध स्कूल में प्रवेश पा लिया। लेकिन वहाँ मुन्नी को हमेशा तिरस्कार मिला। ऊँचे अंक प्राप्त करने पर भी अध्यापकों ने उसे नफरत की दृष्टि से देखा है। "लेकिन अच्छे नम्बर पाकर भी उसे वह सराहना नहीं मिला जो उसका हक था। यह तो कुछ दिन बाद ही समझ

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 102

आया कि टीचर उन लड़कियों को ज़्यादा पसंद करती थीं जिनमें कई अमीर माँ-बाँप की मन्दबुद्धि संतानें थीं। वे टीचर से प्राइवेट ट्यूशन लेतीं और टीचर आँख मूंद कर उन्हें न्यूनतम उतीर्ण अंक देकर पास कर देतीं। मुन्नी जैसी छात्रा की इस स्कूल में बिल्कुल पूछ नहीं थी। एक दो बार मुन्नी ने टीचर से अपनी सीट बदलने के लिए कहा। टीचर ने बेमन से कहा, 'हर लड़की आगे बैठना चाहेगी तो पीछे कौन बैठेगा, क्या मैं?'"[1] इसके साथ दूसरी लड़कियों की निंदा भरी दृष्टि,हंसी आदि वह सह नहीं पाता इसलिए मुन्नी ने वह स्कूल को छोड़ने का तय किया "'मुझे ऐसे स्कूल में पढ़ना भी नहीं है जहाँ इतनी बेइन्साफी हो'। एक बागी की तरह मुन्नी क्लास से बाहर हो गयी।"[2] वह जानती थी कि इस भेदभाव के प्रति आवाज़ उठने पर उसे पढ़ने का अवसर भी नष्ट हो जाएगा, फिर भी उसने इन अन्यायों के सामने सिर झुकाने के लिए तैयार नहीं होकर घोर विरोध किया है।

ममता कालिया नयी पीढ़ी पर विश्वास रखती है। उनकी धारणा यह है कि नयी पीढ़ी में अब भी सत्य, स्नेह और मूल्य की किरणें बाकी हैं। इसलिए वे कभी-कभी अपने पुराने पीढ़ी के मार्गदर्शी भी बन जाते हैं। 'वर्दी' नामक कहानी के द्वारा ममताजी अपने विचार को स्पष्ट कर देती है। इस कहानी के रमाशंकर पुलीस है। रमाशंकर वर्दी के बल पर सारे के सारे अन्याय कर रहा था। उसने पैसे दिये बिना समान खरीद लिया है। उसने धमक्कियाँ और मारपीट कर विरोध में आवाज़ उठानेवालों को चुप्पी कर दिया है। लेकिन उसके आठ साल का बेटे राजू ने अपने

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 38
2. वही - पृ. 439

पिता के अन्यायों से असहमत होकर पैसा देकर सामान खरीद लिया। रमाशंकर मारपीट करने पर भी राजू सत्य के रास्ते से अलग होने के लिए तैयार नहीं था। राजू ने अपने पिता को वर्दी से बाहर लाकर मनुष्य बनाने का निश्चय किया। इसलिए उसने पिता की वर्दी को आग में डाला। "उसे अपनी हिंदी पुस्तक का एक पाठ याद आया जिसमें लिखा था 'होली की आग में समस्त बुराइयाँ भी नष्ट हो जाती हैं, लोग ऐसा मानते हैं'। राजू उठा..... दरवाजे पर लटकी पिता की वर्दी उसने उतारी और कमरे से बाहर हो गया। बाहर होलिका दहन की गरम आँच की नरम तपन थी, उमंग थी और उत्साह। राजू ने लपक कर वर्दी लपटों में डाल दी और बिना किसी से बोले वापस घर में घुस गया।"[1] बेटा पिता का मन मानवीयता के संस्पर्श से संपन्न होने की प्रतीक्षा में है। पिता के अन्यायों और बुराइयों को अग्नि में वर्दी के साथ समाप्त होने की प्रतीक्षा करता है। 'बच्चा' नामक कहानी के सोलह साल का श्रवण कुमार अपने माँ-बाप को सही रास्ता दिखाता है। पार्टी, आडंबर में मस्त माँ-बाप को परिवार की ओर वापस लाने का महत्वपूर्ण कार्य बेटा निभाता है। "'तुम जैसा या पापा जैसा नहीं बनूँगा।' बच्चे ने हमारी संपूर्ण जीवन-शैली को खारिज करते हुए कहा। 'हम इतने बुरे हैं' 'बुरे और अच्छे का सवाल नहीं। आप में जीवन-दर्शन का अभाव है'।"[2] श्रवणकुमार के द्वारा ममताजी यह व्यक्त करना चाहती हैं कि हमारी संस्कृति को सुरक्षित रखने की क्षमता आज की पीढ़ी में है। कभी-कभी हमसे ज़्यादा परिपक्वता नयी पीढ़ी में है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 96, 97
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 219

'सिकन्दर' शीर्षक कहानी में सुठई नामक बालक घर की आर्थिक स्थिति को समझकर आगे चलता है। श्रमिक माँ-बाप को अपनी आवश्यकताओं के लिए झेलना वह नहीं चाहता है। उसे कॉलेज के क्रिकट टीम में खेलने के लिए ड्रेस खरीदने का पैसा घर में नहीं है यह समझकर वह माँ बनी एक स्वेटर पहनकर खेलने के लिए तैयार हो जाता है। और अपने सह खिलाडियों के सामने उस स्वेटर पर गर्व भी करता है। "यह स्वेटर मेरी माँ के हाथ का बुना हुआ है। तुम सबके स्वेटर-कोट से ज़्यादा गरम है यह। हैं तुममें से किसी के पास ऐसा स्वेटर ! मैं यही पहन कर खेलूँगी नहीं तो मैं यह चला।"[1] यह सुनकर पिता और माता को मन ही मन खुशी और गौरव महसूस होता है। पिता ने आँखें भरकर कहा "उसने अपनी एक बात से हार को जीत में बदल दिया।"[2] इन कहानियों के द्वारा ममताजी ने बच्चों की मानसिकता और जीवन के प्रति उनकी आशाभरी दृष्टि, दृढ़ता आदि पर प्रकाश डाला है।

2.3 ममता कालिया की कहानियाँ : सांस्कृतिक संदर्भ

हम जानते हैं कि वर्तमान समय भूमण्डलीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों की उपज है। समाज की छोटे-छोटे पहलू भी इस भूमण्डलीकृत संस्कृति से मुक्त नहीं है। ममता कालिया अपनी कहानियों में समाज के हर एक पहलू का ध्यान देकर उपभोग संस्कृति के बारे में हमें सचेत बना देती है। इसके लिए कहीं-कहीं ममताजी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 402
2. वही - पृ. 403

अपनी कहानियों में व्यंग्य का अस्त्र छुपाकर रखती भी है। इसलिए उपेन्द्रनाथ अश्क ने इस प्रकार कहा "उसकी कहानियाँ ठोस जीवन के धरातल पर टिकी है। निम्न-मध्यवर्गीय जीवन के छोटे-छोटे ब्योरों का गुंफन, नश्तर का-सा काटता तीख व्यंग्य और चुस्त-चुटीले जुमले उसकी कहानियों का प्रमुख गुण है।"[1] ममताजी अपनी कहानियों में भूमण्डलीकरण और उपभोग संस्कृति की नवीनतम औजारों का खुला चित्रण कर नवऔपनिवेशिक शक्तियों के प्रति आम जनता को सचेत बनाने की कोशिश करती है।

2.3.1 नवउपनिवेश का समय

आज नवउपनिवेश का समय है। औपनिवेशिक शक्तियों द्वारा अपने पूर्व उपनिवेशितों पर अधिकार कायम रखने को नवउपनिवेश कहते हैं। नवउपनिवेश वास्तव में उपनिवेशकों के पुनरागमन का द्योतक है। साम्राज्यवाद का यह नया रूप उपनिवेशी शक्तियों की तुलना में और भी खतरनाक है। क्योंकि वे प्रत्यक्ष रूप में नहीं, अप्रत्यक्ष रूप से या नये तरीकों से विश्व को अपने अधीन में रखता है। इसके प्रति हम एक हद तक अज्ञात हैं। इसलिए वह हमें आर्थिक गुलामी के साथ मानसिक गुलामी का भी शिकार बनाता है। "उपनिवेशवाद एक पर्वत की भाँति था, परंतु नवउपनिवेशवाद किसी हिम शैल जैसा है, जिसका सिरा ही केवल दिखता है और वह भी केवल मुट्ठी-भर प्रज्ञावान लोगों को।"[2] इससे यह समझा जा सकता

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 6
2. अवधेशकुमार सिंह - आलोचना - जनवरी-मार्च 2003 - पृ. 150

है कि नवउपनिवेश का स्वरूप आम आदमी की पहचान से परे है और उसे समझने के लिए सूक्ष्म और गहरी दृष्टि की आवश्यकता है।

नवउपनिवेश का सबसे प्रमुख हाथियार है भूमण्डलीकरण। यह पूँजीवाद का नया आयाम है। इसमें नवऔपनिवेशिक शक्तियाँ अविकसित देशों में पूँजी जमा कर वहाँ धंधा और बाज़ार शुरू करती हैं। यह साम्राज्य के बिना चलनेवाले आर्थिक शोषण की नवीनतम उपलब्धि है। यहाँ नवऔपनिवेशिक शक्तियाँ हमारी बुद्धि और दिमाग को संभालते हैं। इसलिए श्यामचरण दुबे ने इस प्रकार लिखा है "भूमण्डलीकरण एक ऐसी स्वेच्छाचारी प्रक्रिया है, जिसके नियमों का पालन हमें करना पडेगा और हम सबको उसके पीछे चलना पडेगा। ये यह भी तय करेंगी कि हमारी स्थितियाँ कैसी होंगी। उन्हें कैसी होनी चाहिए।"[1] नवउपनिवेश के संदर्भ में उत्पन्न इस अर्थव्यवस्था के विश्व व्यापी प्रभाव का परिणाम है बाज़ारवाद।

उपभोक्तावाद बाज़ार की तानाशाही का केन्द्र बिन्दु है। भूमण्डलीकरण की नीतियों के तहत उपभोक्तावाद का विस्तार हुआ। उपभोक्तावाद ऐसी एक परिकल्पना है जिसके द्वारा माल और सेवाओं को अधिकतर मात्रा में उपयोग करने के लिए प्रेरणा देता है। क्योंकि वस्तुओं का अधिकतर उपयोग बाज़ारवादी शक्तियों के लिए अनुकूल असर बन जाएगा। इसलिए कहा जा सकता है कि पूँजीवादी व्यवस्था का आधार उपभोक्तावाद है। इसने दुनिया को उपभोग की संस्कृति से परिचित करवाया। इसने जनता में निजी लाभ या स्वार्थ की भावना पैदा की। "उपभोक्तावादी समाज

---

1. श्यामचरण दुबे - समय और संस्कृति - पृ. 131

का आदर्श व्यक्ति वह नहीं है, जो सरल और ईमानदार है। वह है, जो खूब झूठ, कृत्रिमता और ढोंग जी सके। कुछ भी बेच सके, कुछ भी खरीद सके।"[1] इस उपभोक्ता संस्कृति का परिणाम है खरीदने की आदत। उपभोक्ता संस्कृति का सिद्धान्त ही यह है "मैं खरीदता हूँ, इसलिए मैं हूँ।"[2] इस मानसिकता ने बाज़ारवाद की जडों को मज़बूत बनाया।

2.3.2 बाज़ार की संस्कृति

बाज़ारवाद, भूमण्डलीकरण का सबसे प्रमुख तत्व है। भूमण्डलीकरण के साथ जो बाज़ार आया है, वह पहले के बाज़ार से बहुत भिन्न है। मुनाफा पर आधारित यह बाज़ार मानव को अपनी इच्छा के अनुसार चलनेवाले एक खिलौने के रूप में बदलता है। मुनाफे के अतिरिक्त बाज़ार से और कोई ध्येय नहीं उभरता है। "आधुनिक पूँजीवाद में स्थिति बदल गयी। अर्थ व्यवस्था पर समाज का नहीं बल्कि बाज़ार का दबदबा हो गया। समाज का संचालन बाज़ार के पिछलग्गू के रूप में होने लगा। पहले जहाँ अर्थ व्यवस्था सामाजिक संबन्धों में सन्निहित थी वही अब सामाजिक संबन्ध अर्थ व्यवस्था के अनुचर हो गया। अर्थ व्यवस्था का संचालन समाज के नियमों से नहीं बल्कि उसे अपने स्वतंत्र नियमों द्वारा होने लगा। दूसरे शब्दों में स्वविनियमित बाज़ार सर्वोपरि हो गया।"[3] अर्थात वर्तमान समय में बाज़ार की तनाशाही है।

---

1. शंभूनाथ - संस्कृति की उत्तरकथा - पृ. 160
2. सुभाष चन्द्र - नया ज्ञानोदय, सितंबर 2008
3. गिरीश मिश्र - बाज़ार और समाज : विविध प्रसंग - पृ. 131

बाज़ार अपने मोहक जाल से जनता को अपनी ओर आकर्षित करता है। जाने-अनजाने लोग उसमें फँस जाते हैं। आज मनुष्य को खुशी तो 'मालों' से मिलती है। छुट्टी के दिन भी आज लोग 'माल' में बिताते हैं। 'बाज़ार' नामक कहानी में ममताजी इसका स्पष्ट उदाहरण सामने रखती हैं। इस कहानी में दादी माँ अपने बच्चे और पोते के साथ समय बिताने के लिए छुट्टी की प्रतीक्षा करती रहती है। लेकिन छुट्टी के दिन आते ही वे शोपिंग के लिए जाने की तैयारियाँ करते हैं। "मैं सगुन से कहती हूँ, 'सुग्गी दादी के साथ सैर पर चलेगी न।' सगुन अपनी माँ से लिपटी बैठी थी। 'कहाँ?' उसने पूछा। 'पार्क में। तू झूला झूलना, मैं चक्कर लगा लूँगी'। 'छिः इस सड़े पार्क में मैं नहीं जाऊँगी।' सगुन ने मुझे सुस्त पडते देखा तो दौड़कर मेरे पास आयी, 'दादी सेण्ट्रल मार्केट चले तो ज़रा मज़ा आये'।"[1] आज की पीढ़ी यह समझता है कि छुट्टी का मतलब शोपिंग करना है या 'मालों' में घूमना है। घरवाले और सगे-संबन्धियों के साथ बिताने के लिए उसके पास समय नहीं है। 'काके दी हट्टी' कहानी के चंद्रप्रकाश इतवार की प्रतीक्षा इसलिए करता रहता है कि सिर्फ उस दिन पत्नी पिंकी को छुट्टी मिलती है। पिंकी एक कॉल सेंटर में काम करती है, शाम चार बजे से सुबह चार बजे तक। दिन भर वह सोती है, उस समय चंद्रप्रकाश दूकान के कामों में व्यस्त रहता है। दोनों को मिलने का दिन है इतवार। लेकिन पिंकी उस दिन शोपिंग के लिए छोड़ देती है। "इतवार की छुट्टी हुई तो भी पिंकी को फुर्सत नहीं। सेन्ट्रल मार्केट में घूमना, खरीदारी करना, खाट

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 89

खाना और लौटते टाइम दोनों हाथों में मेहंदी लगवा कर चले आना।"[1] बाज़ार और शोपिंग के प्रति होनेवाला यह भ्रम परिवार के मधुर क्षणों और आपसी संबन्ध को भी लूट लेता है।

बाज़ार शोपिंग को एक 'एन्टरटेनमेंट' के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत करता है। बाजार प्रत्येक अवधि में शोपिंग फेस्टुवल चलाकर जनता को अपनी ओर आकर्षित करता है। 'बाज़ार' नामक कहानी में शोपिंग के लिए जानेवाले घरवालों की तैयारी देखकर दादी को संदेह होता है कि असल में ये लोग शोपिंग के लिए चले जाते हैं या त्योहार के लिए। "बाज़ार के नाम पर घर में स्फूर्ति का संचार हो गया। सबको नहाने, तैयार होने की हड़बड़ी मच गयी। गोया, आज इतवार नहीं, त्योहार हो। शिखा और सगुन ने तैयार होने में इतनी देर लगा दी कि मुझे बैठे-बैठे झपकी आने लगी।......................... आखिरकार शिखा और सगुन अपने कमरे से निकली। माँ और बेटी गज़ब ढ़ा रही थी। शिखा ने कहा, 'वहाँ से हम गुडगाँव चलेंगे, वहाँ भी एक से एक सेल हुई है।"[2] इसी प्रकार बाज़ार तो सामान खरीदने के मूल तत्व से बदलकर लोगों को अपनी ओर हमेशा जुडा रखने की कोशिश करता है। इसलिए ही दूकान चलाने का ढ़ंग ही आज पूरी की तरह बदल गया है। पहले के ज़माने में लोग अपनी आवश्यक वस्तुएँ खरीदने के लिए दूकान का इस्तेमाल करते थे। पर आज उसका नया रूप 'माल' हमारे सामने खरीदारी को एक 'एन्टरटेनमेंट' के रूप में प्रस्तुत करता है। खरीदारी की इस नयी

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 9
2. ममता कालिया - थोडा जा प्रगतिशील - पृ. 90

संस्कृति से टकराकर यहाँ की छोटी-छोटी दूकानें बन्द हो रही हैं। 'काके दी हट्‌टी' में इसका स्पष्ट उल्लेख देखने को मिलता है। चन्द्रप्रकाश को अपनी छोटी दूकान बन्द करनी पडी क्योंकि आज लोग तो वातानुकूलीन मालों से सामान खरीदना चाहते हैं। यह देखकर पत्नी पिंकी कहती है "मेरी बात समझो। दूकान चलाने के ढ़ंग अब बदल गये हैं। छोटा सा पीसीओ भी हो तो लोग उसमें वीडियो गेम खेलना चाहते हैं, कोला पीना चाहते हैं। अब शॉप का मतलब सिर्फ शॉप नहीं एन्टरटेनमेंट शॉप हो गया है।"[1]

आज बाज़ार घर तक आ गया है। कोयम्बत्तूर से आकर दिल्ली में बसी दादी की नोस्टालजिया का लाभ उठाकर साडियाँ बेचनेवाले सेल्समैन को 'बाज़ार' नामक कहानी में चित्रित किया गया है। सेल्समैन के शब्दों की जादू में फँसाकर दादी ने एक साढ़ी के स्थान पर दो खरीदा है। उसे पता है दो साड़ियों की आवश्यकता नहीं है फिर भी उसने घर तक आये बाज़ार में चकित होकर दिवास्वप्न के समान दो साड़ियाँ खरीद लीं। घर में आये सेल्समैन का नया रूप है 'शोपिंग वेबसाइट'। घर में बैठकर हमें सामग्रियाँ आर्डर कर सकते हैं। दो-तीन दिनों के अंतर वे हमारे आँगन में सामग्रियाँ ला देते हैं। ऐसे वेबसाइट कई-कई प्रस्ताव देकर ग्राहकों को फँसाते हैं। आवश्यकता और ज़रूरत के बारे में सोचने की बुद्धि भी वे हमसे लूट लेते हैं।

आज का बाज़ार ऐसा एक भाव जनता को देता है कि सिर्फ विदेशी चीज़ों में गुणवत्ता होती है। स्वदेशी वस्तुओं का इस्तेमाल करना आज स्टैटस नहीं है।

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्‌टी - पृ. 15

'पिकनिक' नामक कहानी में विदेशी चीज़ों का सराहना करनेवाली नयी पीढ़ी का चित्रण ममताजी ने किया है। आज छोटे-छोटे गाँवों में भी कोला जैसे सॉफ्ट ड्रिंक की बिक्री होती है। इसमें माँ नारियल के पानी और चाय का गुणगान कर बेटे को प्रकृति की ओर सजग कराने की कोशिश करती है। लेकिन बेटा सोफ्ट ड्रिंक पीना गर्व समझता है। "वह कहता है, "चाय की क्या ज़रूरत है, ठंडा कोला पियो, हर जगह मिलता है, ताज़गी से भरपूर, सस्ता और स्वच्छ। यह तो कोला की शान है।"[1] बेटे के इस जवाब से हम समझ सकते हैं कि ये साम्राज्यवादी कम्पनियाँ कितनी आसानी से हमारे दिमाग का नियंत्रण करती हैं। देशी उत्पन्नों, प्राकृतिक चीज़ों के प्रति आज की पीढ़ी में जो नफरत है, वह यहाँ की छोटी-छोटी दूकानों के प्रति भी है। नयी पीढ़ी के लोग वातानुकूलित सूपर मार्केट या मालों से चीजें खरीदना चाहती है। यह आज लोगों की इज्जत की बात भी है। 'काके दी हट्टी' के चन्द्रप्रकाश के जीवन का खलनायक भी ऐसा एक 'सूपर मार्केट' है। सूपर मार्केट आने पर सभी लागों को वहाँ जाकर खरीदारी करना अच्छा लगा। इस लगाव ने आसपास की छोटी-छोटी दूकानदारों के चेहरे को रुआँसा बनाया। कोई नये सूपर मार्केट के बारे में पूछने पर चन्द्रप्रकाश इस प्रकार जवाब देता है "सुपर स्टोर की धूल से मेरी हट्टी का तो भट्टा बैठा देता है।"[2] जीने के लिए उन छोटे-छोटे दूकानदारों को अपनी दूकान सुपर मार्केट के मालिक को बेचकर वहाँ के सेल्समैन बनने पडे। लेकिन चंद्रप्रकाश अकेले ही उन साम्राज्यवादी शक्तियों के

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - निर्मोही - पृ. 411
2. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 11

विरोध में खडा। यह देखकर मालिकों ने कई वायदे देकर चंद्रप्रकाश को अपने वश में लाने की कोशिश की है। “चंद्रप्रकाश जी हम आपको एबीसी में एक सेक्शन का इंचार्ज बना देंगे, आपका सारा स्टॉक भी खरीद लेंगे और बाज़ार रेट से दुगुना, दूकान का मुआवज़ा देंगे। सोच लीजिए और मुझे कल बताइए। मैं इसी समय आऊँगा।”[1] चंद्रप्रकाश उन मालिकों का सामना अधिक समय तक न कर सका। लेकिन पराजित होकर उनके पैरों के नीचे जीने के लिए वह तैयार नहीं है। दूकान नष्ट होकर भी उसने सड़क के किनारे दो मेज़ों पर अपनी दूकान शुरू कर उनके प्रति अपना प्रतिरोध व्यक्त किया। चंद्रप्रकाश के द्वारा ममताजी ने हमारे मन में भी बाज़ारवादी साम्राज्यशक्तियों के प्रति विद्रोह और प्रतिरोध की भावना जगायी है। आज की बहुराष्ट्रीय कम्पनियों द्वारा संचालित हमारी बाज़ार व्यवस्था सिर्फ व्यावसायिक हित पर चलती है। अर्थ और मुनाफे के अतिरिक्त इसके केन्द्र में कुछ भी नहीं है। ममता कालिया ने अपनी कहानियों के द्वारा इनकी गूढ़ नीतियों, गुलामी के नये तरीकों के प्रति हमें वाकिफ कराने का प्रयास किया है।

2.2.3 विज्ञापनों की दुनिया

समाज में ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जो विज्ञापन से अनछुआ है। किसी न किसी रूप में विज्ञापन समाज को अपने जाल में फँसाता है। विज्ञापन तो नवऔपनिवेशिक शक्तियों के सबसे सशक्त औजार है। विज्ञापनों के द्वारा वे हमारे दिमाग का नियंत्रण करते हैं। बाज़ार को जनता तक पहूँचाने में विज्ञापन का महत्व सर्वाधिक है। क्या

---

1. ममता कालिया - काके की हट्टी - पृ. 13

खरीदना है या न खरीदना है यह तय लेने की हमारी प्रज्ञा को विज्ञापन जगत् हमसे लूट लेता है। 'बाज़ार' कहानी की शिखा मेगामार्ट में जाकर शोपिंग करना चाहती है। क्योंकि उसने एक विज्ञापन में देखा कि वहाँ तीन हज़ार रुपये के सामान खरीदने पर एक छतरी मुफ्त में मिलती है। "शिखा ने कहा, 'अरे मुझे भी कई चीज़ें लानी है। गौतम तुम्हें पता है मेगामार्ट में तीन हज़ार की शोपिंग पर एक छतरी मुफ्त दे रहे हैं।"[1] वास्तविकता तो यह है कि लोग आज इस मुफ्त वस्तुओं के पीछे हैं। मुफ्त मिलने के लिए वे अनावश्यक वस्तुओं को भी खरीदते हैं। असल में यह बाज़ार और विज्ञापन की सफलता है।

'निवेदन' नामक कहानी में बाज़ार का दूसरा चेहरा हम देख सकते हैं। अखबार में कटौती की सूचना देकर ग्राहकों को दूकान की ओर आकर्षित कराकर पैसा लूटने का चित्रण ममताजी ने इसमें किया है। कटौती न मिलने की जानकारी मिलने पर ग्राहक खरीदे माल छोडकर चले जाने का प्रयास तो करते हैं, लेकिन दूकानवाले धमक्कियाँ देकर रुपये का भुगतान कराते हैं। "काउण्डर पर पैसे देते समय बिल देखकर वह भडक गयी। कपडे की वही कीमत लगाई गई थी, जो थी। उसके पूछने पर उस बूढ़े कैशियर ने बड़ी रुखाई से कहा, 'अखबार अपनी तरफ से पचानवे प्रतिशत कटौती एनाउन्स कर दे, हम क्या कर सकते हैं?' मिनी ने बिल उसके हाथ पर पटकते हुए कहा, उसे कपड़ा नहीं चाहिए, वह ऐसी दूकान से कुछ नहीं लेगी। बूढ़े ने और भी ठंडी आवाज़ में कहा, 'कपड़ा कट चुका है, उसे लेना पडेगा।' रुपए एक तरह से वहाँ फेंककर, मिनी ने कपड़े का पैकेट उठाया

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 90

.... झुँझलाहट उसे इस बात पर थी कि दूकानदार सरेआम बेइमानी कर रहा है और लोग चुपचाप, बिना इज्जत कपड़े खरीद रहे हैं।"[1] यहाँ दूकानदार व्यापार नहीं लूटमार करता है। विज्ञापन में कई-कई वादे प्रस्तुत कर जनता को वे आकर्षित कर उनके पैसे की डकैती करते हैं। इस शोषण का प्रतिरोध करने की आवाज़ को भी ये बडे व्यापारी छीन लेते हैं। यदि कोई प्रतिरोध करते हैं तो उनका समर्थन करने के लिए भी कोई तैयार नहीं है।

इन छल-छद्मों के साथ विज्ञापन जनता में हीन मनोग्रंथि पैदा कर उत्पादनों का मुनाफा बढ़ाता है। विज्ञापन ऐसी एक धारणा देता है कि रूप, रंग, स्टाटैस के अनुसार मनुष्य की गरीमा बढ़ती है। प्रत्येक रंग को वह ऊँचा और अच्छा घोषित कर दूसरों के मन में हीनता का भाव पैदा कराता है। फेयरनस क्रीम लोगों को आज सबसे अधिक आकर्षित करनेवाली वस्तु है। लोग भिन्न-भिन्न कम्पनियों के फेयरनेस क्रीम का परीक्षण करते रहते हैं। किसी-न-किसी प्रकार फेयर होने की मानव की लालसा से ये कम्पनियाँ लाभ उठाती हैं। 'सिकन्दर' नामक कहानी के बच्चों के द्वारा ममताजी विज्ञापन की इस गूढ़ नीति का पर्दाफाश करने की कोशिश करती है। "सीपी कहती, 'यह फेयरनेस क्रीम नहीं चमड़ी उधेड़ने वाली क्रीम है।' सुठई कहता, 'इसे लगाने से फायदा हमें नहीं, उसे बनानेवाले को होता है।' पिता कहते, 'विज्ञापनों का मकसद होता है बिक्री और मुनाफा।"[2] विज्ञापन अच्छी-अच्छी मॉडल्स को प्रस्तुत कर रूप, रंग आदि के प्रति मोह और

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 140
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 399

अपने प्रति हीनता का भाव उत्पन्न करता है। और इसके बाद इसे सुलझाने के सही रास्ता के रूप में सौन्दर्यवर्धक सामग्रियों को लोगों के सामने प्रस्तुत किया जाता है। लोग उसमें पड जाते हैं।

2.3.4 मॉडलिंग की दुनिया

आज सिनेमा और विज्ञापन जगत् का द्वार है मॉडलिंग। फिल्म जगत् की चौंकाचौंध और पैसा के लालच में फँसकर युवा पीढ़ी के एक बडा प्रतिशत मॉडलिंग का रास्ता चुनता हैं। लेकिन सच्चाई तो यह है कि वह दुनिया उतना सुरक्षित और अच्छा नहीं है। जिस रफ्तार से हम जो ऐश ओर आराम हासिल करते हैं उतनी ही रफ्तार से उन सब के नष्ट होने की संभावना भी है। इसके साथ ही साथ हमें कई प्रकार के शोषण के शिकार भी बनने पडते हैं। 'कौवे और कोलकत्ता' नामक कहानी में मॉडलिंग जगत् का खुला चित्रण ममताजी ने प्रस्तुत किया है। मॉडलिंग की दुनिया में आराम का समय नहीं है। सब आपस में प्रतियोगिता करते रहते हैं। एक दिन के लिए छुट्टी लेने पर हाथों से सब के फिसल जाने की संभावना है। कहानी की केन्द्रीय पात्रा मिस बहार मॉडलिंग के चमकता सितारा थी। चार महीने के पहले तक चार इंज एड़ी की सेन्डिल पहनकर रैम्प पर चलती थी। तब सारा हॉल सीटी मारता है और सिसकारी लेता है। लेकिन वह एक दिन बाथरूम में फिसलकर फ्रेक्चर हुआ। छह हफ्ते बिस्तर पर पडा। तब से मिस बहार को चैन न मिला क्योंकि उसे पता है मॉडलिंग दुनिया में आराम तो हराम है। "दस हफ्तों में दीदी की दुनिया लुट गई। नयी-नयी लडकियाँ आकर रैम्प पर छा गईं। फोटोग्राफरों के एलबम में नये चेहरे चिपक गये। प्रायोजकों ने उसे

फोन पर सलाह दी, 'मिस बहार, आप बिलकुल जल्दी न कीजिए। हमारा काम तो चल ही रहा है। आप बेफ्रिक होकर आराम कीजिए, आपने बहुत काम किया है, अब आपको आराम की ज़रूरत है।"[1] प्रायोजकों के शब्दों से मिस बहार को समझ गया है कि अपना नाम मॉडलिंग दुनिया तो भूल गया है।

आराम मिलने पर मिस बहार के फिगर पर चर्बी चढ़ गयी। तब उसे शंका लगती है कि फिगर नष्ट होने के कारण से उसे अवसर न मिलेगा। इसलिए वह डयटिंग कर शरीर दुबला बनाती है। लेकिन सिर्फ पानी पीते-पीते वह बीमारग्रस्त भी बन जाती। साथ ही साथ निराशाग्रस्त होकर मन की स्थिति भी उछल जाती। शरीर के बारे में सोचते-सोचते वह पागल की तरह बन जाती है। उम्र बढ़ने के डर से अपना जन्मपत्री, हाईस्कूल सर्टिफिकेट सब फाड़ फेंके देते हैं। "कैसे पता लगेगी उम्र। मैंने अपनी जन्मपत्री, हाईस्कूल सर्टिफिकेट सब फाड़ फेंके हैं। बस एक तू अपनी उम्र का सही मानेजमेंट करें तो मैं अभी दस पास 28 की रही आऊँ।'.... दीदी के चेहरे पर शैतान की शरारत और चमक उभरी।"[2] मॉडलिंग की दुनिया स्त्री शरीर को बेनकाब करके-करके लोगों के मन में विशेषकर मॉडलों के मन में यह विचार देता है कि देह से अलग स्त्री कुछ भी नहीं है। इसलिए मॉडलिंग दुनिया से निकलने पर वे कभी-कभी विषाद रोग या आत्महत्या में आश्रय लेती हैं।

आज हर किसी भी वस्तु के विज्ञापन को स्त्री शरीर के बिना प्रस्तुत नहीं किया जाता है। यह देखते-देखते जनता शरीर के बारे में अधिक सचेत बन जाती

---

1. ममता कालिया - खुशक़िस्मत - पृ. 30
2. वही - पृ. 35

है। अपने शरीर को सुन्दर दिखाने के सिवाय वे कुछ नहीं सोचते हैं। कभी-कभी वहाँ संबन्धों को भी भूल जाते हैं। 'कौवे और कोलकत्ते' में छोटी बहन पर चोट लगाकर रोते वक्त दीदी अपने नाखून में रंग लगाने के काम में व्यस्त है। छोटी बहन पर ध्यान देने के लिए भी वह तैयार नहीं है। "कमरे में दीदी टेबिल लैम्प जला कर अपने नाखून रंग रही थी। उसने हेमा की तरफ देखा ही नहीं। जब उसने बिसूरते हुए कहा, 'दीदी.....' 'डिस्टर्ब मन कर, एक ओर कोट लगाना पड जायगा'।"[1] तब मानसिक रूप से आहत होकर छोटी बहन कहती है कि किसी अपरिचित से सहायता मांगती है तो घरवालों से भी अच्छा होता है। आज लोग शरीर और सौन्दर्य के सामने संबन्धों को भी नगण्य समझते हैं। विज्ञापन और मॉडलिंग का ऐसा प्रभाव मानव को उसी में ही केन्द्रित करने या और भी स्वार्थी बनने के लिए प्रेरित करता है।

2.3.5 आडंबर प्रियता और दिखाने की प्रवृत्ति

आज की व्यवस्था तो अर्थ पर आधारित है। नवऔपनिवेशिक शक्तियों ने ऐसे एक माहौल की सृष्टि की कि सबके मूल में धन है। धन के आधार पर आज समाज में मान्यता और इज्जत प्राप्त होती है। धन के प्रति मोह, आडंबरप्रियता और अपने को दूसरों के सामने बहत्तर रूप में दिखाने की मानव की प्रवृत्ति का खुला चित्रण ममताजी की कहानियों में देखा जा सकता हैं। आज मनुष्य अपनी खुशी मनाने के लिए पार्टियों चलते हैं और कभी-कभी वे उन पार्टियों को अपना आडंबर

---

1. ममता कालिया - खुशक़िस्मत - पृ. 37

दिखाने के एक माध्यम बना देते हैं। 'फरवरी एक शाम' नामक कहानी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। इसमें शहर की अमीर महिला शबनम अपना घर और संपत्ति के शान को दूसरों के सामने प्रस्तुत करने के लिए पार्टी चलाती है। पार्टी चलाने के लिए और कोई विशेष कारण तो नहीं है, सिर्फ अपना धन और स्टाटैस दूसरों को दिखाना उसका लक्ष्य है। "सुबह-सुबह शबनम का फ़ोन आया, "आज शाम तुम क्या कर रही हो?" आज हमारे फॉर्महाउस पर पार्टी है, तुम्हें आना है। पता याद है न!" 'कोई ख़ास ख़ुशी का मौका?' 'बस मौसम का जश्न समझो। ज़रूर आना, टालना मत'।"[1] पार्टी में पहूँचते लोग अपनी दोस्ती और मित्रता को बलवत करने के बजाय आपस में अपनी हैसियत और प्रतिष्ठा स्थापित करने में स्पर्धा करते हैं।

'चाभी' नामक कहानी में मानव की आडंबरप्रियता की ओर ममताजी व्यंग्य भरी दृष्टि से इशारा करती हैं। आज विवाह जैसे कार्य बन्धुजन और मित्रों के लिए गहने और कपड़े दिखाने के अवसर मात्र हैं। इससे ज़्यादा पवित्रता देने के लिए आज लोग तैयार नहीं है। इस कहानी में घरवाले और रिश्तेदार, गहने की अलमारी की चाभी नष्ट होने के कारण व्याकुल हो जाते हैं। क्योंकि चाभी न मिलने पर हल्के गहने पहनकर शादी में भाग लेना पडेगा। "'नहीं जी नाक कट जायेगी'। मासी को रोना आ गया। 'मेरे हाथों में तो एक छल्ला भी नहीं है। वे लोग सोचेंगे हम यतीमखाने से आ गये।' ....चारु ने मुँह फुलाकर कहा, 'तुम सब जाओ ब्याह में, मुझे नहीं जाना'।"[2] उनके अनुसार शादी में गहने न होना

1. ममता कालिया - थोड़ा सा प्रगतिशील - पृ. 94
2. वही - पृ. 105

नाक काटने के समान है। उनकी दृष्टि में मृत्यु ही इससे बहत्तर है। आज की संस्कृति तो दिखाने की संस्कृति है। लोग धन, मकान, संपत्ति, गाडियाँ, और गहने के अनुसार व्यक्ति के महत्व को आँकते हैं।

समाज में मान्यता या स्थान प्राप्त होने का एक ही मार्ग है धन। आज के सम्मेलनों की योजना इसका दृष्टव्य है। इन सम्मेलनों में योग्यता के अनुसार नहीं, 'डोनेशन' के आधार पर सम्मान प्राप्त होता है। 'एक अदद औरत' नामक कहानी में ममताजी ने रुपये को आधार बनाकर मिली इज्जत और सम्मान का चित्रण व्यंग्य भरी दृष्टि से किया है। शहर की युवा महिलाएँ एकत्र होकर परस्पर प्रेम और विचारों के आदान-प्रदान के लिए एक सम्मेलन आयोजित करती हैं। लेकिन हंसी की बात यह है कि सम्मेलन में चंदा में दिए रुपये के आधार पर पंक्ति में स्थान और आदर भी मिल जाएगा। "हम आपसे कुछ डोनेशन लेने आई हैं। इक्कीस रुपए डोनेशन देने पर आपको चार मुफ्त पास, इक्वायन रुपये देने पर आपको द्वितीय पंक्ति में स्थान और एक सौ रुपये देने पर आपको मुख्य अतिथि के साथ चाय पीने का सौभाग्य मिलेगा।"[1] मानव की ऐसी बदली हुई मानसिकताओं पर खुलकर आक्षेप करने में ममताजी हिचकती नहीं है।

आर्थिक रूप से और भौतिक सुख सुविधाओं के रूप से हम दूसरों से कितना आगे हैं यह दिखाने के लिए मानव आज तड़प रहे हैं। 'उड़ान' नामक कहानी में बेटा साक़ी माँ-बाप को भूलकर पैसे के पीछे भागता हैं। उसके व्यवहार

---

1. ममता कालिया - खुशक़िस्मत - पृ. 130

में दोनों दुःखी हैं। लेकिन दूसरों के सामने वे बेटे की उपलब्धियों पर गौरान्वित होते हैं। "मिश्रा दम्पति की मित्र मंडली में साक़ी की सफलताएँ कुछ इस अंदाज में दर्ज थीं - 'पाँच साल में चार पदोन्नति, वेतन आठ से बढ़कर बारह लाख, उसके मकान का किराया पच्चीस हज़ार, उसका आयकर सवा लाख'।........... मित्रों उन्हें ईर्ष्या से देखते, इतना कामयाब बेटा भी किस-किस को मिलता है।"[1] दूसरों के सामने वे अपने और बेटे की भौतिक सुविधाओं पर गर्व करते हैं। दूसरों को दिखाने और उनके सामने अपना महत्व स्थापित करने में वे खुशी ढूढ़ते हैं।

धन और संपत्ति का महत्व दिखाने की तरह अपने को भी दूसरों के सामने बहत्तर रूप में प्रस्तुत करने के लिए आज मानव प्रयत्न करते रहते हैं। हमेशा युवा रहने के लिए कई-कई क्रीमों, डायटिंग और मेकअप करने के लिए वे बहुत व्यस्त हैं। अपने शरीर और यौवन के प्रति दूसरों से प्रशंसा सुनने पर वे पुलकित हो जाते हैं। 'एक रंगकर्मी की उदासी' नामक कहानी में मिसेज़ मिश्रा अपने को युवा महसूस होने में गर्वानिवत होती हैं। "'आपको रिटायर होने में कितने साल है?' मैं उनका प्रयत्न पहचान कर दो एक साल बढ़ा देती, 'नौ साल।' 'अरे मैंने तो सोचा बीसेक साल होंगे। आप चालीस से एक दिन ऊपर नहीं लगती'। 'थैंक्स बट फैक्ट इज़ फैक्ट'। मन ही मन मैं खुश होती कि उनकी नज़रों में मैंने कुछ साल स्मगल कर लिये। कौन जीता है रिटायरमेंट की खबर होने तक। कह दूँगी ऐच्छिक अवकाश ले लिया। मैं उन्हें कैसे बताती कि मेरे इस युवा अधेड़पन के पीछे कितनी स्किन केयर, हैयर डाय, एक्सरसाइज और प्रसाधन सामग्री खर्च हुई है।"[2] 'अठावनवाँ

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 442
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 233

साल' नामक कहानी में इसका और एक उदाहरण हम देख सकतेहैं। नायक डी.के. अपने जीवन के अठावन साल को इतना डरता है कि आयु के बारे में सोचते-सोचते उसकी नींद भी नष्ट हो जाती है। दफ्तर पहूँचते ही वह शीशे में अपने अक्स की जाँच करता है। वह अधिकांश समय अपनी उम्र छुपाकर रखने की कोशिश में है। लेकिन डी.के. अब निराश है क्योंकि डाई पहले के समान पेरफेक्शन नहीं देता है। "लेकिन अब हफ्ता बीतते न बीतते डाई उतरने लगी और सिर में जगह-जगह सफेदी कुछ इस तरह नज़र आने लगी - जैसे स्कूल में श्यामपट ठीक से न पोंछा गया हो और जगह-जगह चॉक के निशान रह गये हो। बाकी जगह डाई के कारण, उनके काले बाल बहुत अधिक काले और सफेद बाल बहुत अधिक सफेद लगने लगे।"[1] उसे लगा कि उसने एक सूखे बगीचे के समान बन गया है। न मेकअप मदद करता है, न फैशन। दूसरों के द्वारा अपनी असली उम्र पहचानने को वह डरता है। इसी प्रकार दूसरों के सामने अपनी प्रतिष्ठा को सर्वोत्तम स्थापित करने की कोशिश में आज जनता तडप रही है। एक व्यक्ति और उसकी मानसिकता कितनी भी बुरी हो, संपत्ति है तो उसे सर्वमान्य मानने की जो नयी संस्कृति दुनिया में है, उसका पर्दाफाश करने का प्रयास ममताजी ने अपनी कहानियों के द्वारा किया है।

2.3.6 अंग्रेज़ी भाषा का असर

उपनिवेशी दौर में जिस प्रकार अपनी मिट्टी और उत्पादनों को हम सस्ता मानते हैं उसी प्रकार हमारी भाषा को भी हम निचली दर की मानते हैं। उपनिवेशकों

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 357

की भाषा अंग्रेज़ी थी। साम्राज्यवादी शक्तियों ने यहाँ के धन और संपत्ति को ले जाने के साथ अपनी भाषाओं के प्रति हमारी दृष्टि को ही बदल डाला है। फलतः अपनी भाषा को लेकर हीनता ग्रंथि महसूस करते हैं। आज सभी लोग ग्लोबल भाषा अर्थात अंग्रेज़ी के पीछे हैं। क्योंकि अंग्रेज़ी शासन अंग्रेज़ी भाषा के प्रति जनता के मन में अनजाने ही आदर का भाव पैदा कराने में सफल बन गया। इसके मूल में 1835 के मेकॉले के शिक्षा अधिनियम ने भी विशेष कार्य किया है। इसमें उन्होंने ऐसी एक जनता की सृष्टि करने का आदेश दिया है जो "A class of persons, Indian in blood and colour But English in taste, in opinion, in morals and intellect"[1] यह एक कटु सत्य है कि अग्रेज़ी शासन के इतने साल के उपरांत भी हम मेकॉले के इस आदेश को अनजाने ही पालन करते रहते हैं। इसलिए ही हम अंग्रेज़ी में बोलना आज का 'स्टाटस सिंबल' मानते रहते हैं। 'लकी' कहानी में ममताजी ने इसका स्पष्ट चित्रण किया है। कहानी में पिता अपना बेटा लकी को हिंदी के बदले अंग्रेज़ी सीखने का आदेश देते हैं। "फिर वे अपने ज़माने के स्टेट्समैन की इंग्लिश का गौरव-गान शुरू कर देता। कहते 'स्टेट्समैन का संपादकीय पढ़ने में बड़े-बड़ों के छक्के छूट जाते थे। बस गागर में सागर होता था। उसे पढ़ते समय बेकन के निबंध याद आते, वही सारगर्भित वाक्य, वही अनुशासनबद्ध भाषा, क्या मज़ाल एक भी लफ़्ज फालतू का आ जाय।' फिर पापा बताते कैसे उन्हें जीवन का प्रथम रोज़गार स्टेट्समैन ने ही दिलाया।"[2] कहानी में पिता अंग्रेज़ी का

---

1. मेकॉले - शिक्षा अधिनियम 1835
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 147

गुणगान करते-करते यह निष्कर्ष में पहूँच गये कि "ये हिंदीवाले कभी अंग्रेज़ी पत्रकारिता का मुकाबला नहीं कर सकते।"[1] हिंदी को तुच्छ मानकर पिता ने बेटा लकी को स्टेट्समैन पढ़ाने और समझाने के लिए एक ट्यूटर को रखा। बेटा अंग्रेज़ी सीखने के लिए कितने रुपये खर्च करने या कितनी ही मुसीबतों का सामना करने के लिए भी वह तैयार है क्योंकि उसकी राय में जीवन में सफलता पाने के लिए अंग्रेज़ी सीखना अनिवार्य है। यह आज के अधिकांश माँ-बाप की मानसिकता है।

'पीली लड़की' नामक कहानी में हिंदी अध्यापकों के प्रति घृणा और निंदा का नज़रिया रखनेवाले अन्य अध्यापकों का, विशेषकर अंग्रेज़ी अध्यापकों का चित्र खींचा गया है। "'आप कौन सा विषय पढ़ाती हैं?' 'अंग्रेज़ी। आप?' 'हिंदी', उसने कहा। मैं मन ही मन खुश हो गई। मेरा शुरू से ख्याल था कि अंग्रेज़ी पढ़ानेवाले हिन्दी पढ़ानेवालों से ज़्यादा योग्य होते हैं। हमारे कॉलेज में तो हम हिंदी विभाग से बोलचाल रखना भी पसंद नहीं करते थे।"[2] यहाँ के लोग भी सोचते हैं कि हिंदी या किसी भारतीय भाषा पढ़ना या पढ़ाना तो द्वितीय स्तर का कार्य है। हम भारतीय ही हमारी भाषा का महत्व को कम करते हैं।

वास्तव में हम अपने पूर्व उपनिवेशकों को अब भी अनुकरण करते रहते हैं। उनकी आदतों, प्रथाओं का हम आज भी अनुकरण करते हैं। इसलिए कहा जा सकता है कि उपनिवेशकों से हम जो मुक्ति पायी थी वह सिर्फ बाह्य तौर में है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 147
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 167

मानसिक रूप से आज भी हम उसके गुलाम हैं। इसका उदाहरण यहाँ के गाँव या शहर के नामों से मिलता है। भारत के अधिकांश गाँव या शहर के अब प्रचलित नाम तो अंग्रेज़ों द्वारा दिए हुए है। उन्होंने अपनी भाषा के अनुसार नाम तो बदल दिया। उनके शासन के खतम होने पर भी हम अंग्रेज़ों के दिए हुए नामों से अपनी मिट्टी को पुकारते हैं। ममताजी ने 'पिकनिक' नामक कहानी में इसका संकेत किया है। "उडगमंडलम जैसे मुश्किल नाम का क्या गज़ब सरलीकरण कर डाला अंग्रेज़ों ने। इस छोटे से पहाड़ी शहर को नन्हा से स्मार्ट नाम दिया है - ऊटी।"[1] सालों के बाद हम भी उन बदलावों का पालन करते आते हैं।

हरएक देश की भाषा उस देश के प्राण है। भाषा पर हुए किसी-न-किसी प्रकार का आक्रमण उस देश के संस्कार को हडप कर वहाँ के मानव को विचारहीन बनाते हैं। क्योंकि संघर्षों के द्वारा आगे बढ़ने की प्रेरणा भाषा के माध्यम से मानव समाज ने हासिल की है। इसलिए साम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने गुलामी देशों की भाषा पर अतिक्रमण कर वहाँ के जनता की शक्ति को छूट लिया है। क्योंकि सच्चाई तो यह है कि जिस देश को अपनी भाषा और साहित्य के गौरव का अनुभव नहीं है वह उन्नत नहीं हो सकता। हर देश की प्रगति के मूल में वहाँ की भाषा का महत्वपूर्ण स्थान है। देश को इकट्ठा करने में और आगे बढ़ाने में भाषा का योगदान महत्वपूर्ण है। इसलिए ही अपने देश की भाषा को सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व भी हमारा है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 412

2.3.7 नगर जीवन

'समाजशास्त्र विश्वकोश' के अनुसार "एक नगर अत्यधिक बृहत् आकार तथा जनसंख्यात्मक घनत्ववाला एक ऐसा समुदाय है जिसके निवासी विविध एवं अकृषिकार विशिष्ट कार्यों में संलग्न रहते हैं तथा जिनकी एक विशिष्ट जीवन शैली होती है जो प्रायः ग्रामीण शैली से भिन्न होती है।"[1] इस जीवन शैली को हम नगरबोध कहते हैं। अर्थात् नगरबोध पाश्चात्य विचारधाराओं, वैज्ञानीकरण और औद्योगीकरण के फलस्वरूप उपजी एक जीवन पद्धति है। आर्थिक विषमता, मशीनीकरण, व्यस्तता, भीड़, अजनबीपन, यौन संबन्धों का खुलापन, गतिशीलता, संबन्धों का विघटन, गंदी बस्तियाँ आदि नगरीकरण से उत्पन्न प्रक्रियाएँ हैं। नगरबोध वास्तव में नगरीकरण की इन प्रक्रियाओं से उत्पन्न एक मानसिकता है। ममताजी ने अपनी कहानियों में नगरबोध को गहराई से परखने और पहचानने का सफल प्रयास किया है।

2.3.7.1 नगरजीवन के प्रति आकर्षण

औद्योगीकरण के कारण गाँव से लोगों ने नगर में आकर बसना शुरू किया। भौतिक सुख-सुविधाएँ, धन कमाने की इच्छा, नौकरी का इन्तज़ार आदि कई कारण इस आकर्षण के पीछे हैं। लेकिन सच्चाई तो उतना मधुर नहीं है। लेकिन आर्थिक सुरक्षा की चिंता नई-नई नौकरियों को ढूँढ़कर शहर में ठहरने के लिए उन्हें विवश बनाती हैं। 'शहर-शहर की बात' नामक कहानी में नायक के मित्र

1. सं. हरिकृष्ण रावत - समाजशास्त्र विश्वकोश - पृ. 38

तरुण मन में ढ़ेर सारे सपनों को लेकर बंबई में पहूँचता है। ममताजी तरुण की प्रतीक्षाओं को इन शब्दों में व्यक्त करती है "उसने सुन रखा था कि बम्बई के हर दफ्तर में एयरकन्डीशनर है और हर घर में फ्लश की टट्टी। उसने सुना था वहाँ मूँगफली बेचेवाला भी तीन सौ रुपये महीने कमा लेता है।"[1] इसलिए तरुण विश्वास करता है कि यह शहर एक दिन मेरी जेब में होगा, ज़रूर होगा। सालों से बंबई के ऊब में दम घोटकर जीनेवाला नायक तरुण के प्रतीक्षाओं को तोडना नहीं चाहता है। इसलिए वह उससे कुछ न कहकर चला जाता है।

'अपने शहर की बत्तियाँ' नामक कहानी के पंकज और संजीव शहर की जीवन शैली से भ्रमित होकर अपना गाँव छोड़कर शहर की ओर निकले हैं। दिल्ली में पहूँचने पर उन्हें पहली बार भारतीय नागरिक होने पर गर्व लगे। दिल्ली जैसे किसी एक महानगर में आगे अपना जीवन बिताने का निर्णय उन लोगों ने किया है। "संजीव ने कहा, 'देखो, बडे शहर में रहकर दिमाग भी खुलता है और दिल भी।' पंकज बोला, 'मेरी तो दिल्ली तमन्ना है, कहीं दिल्ली में ही नौकरी मिल जाए।"[2] लेकिन धीरे-धीरे उन्हें महानगर के जीवन की सच्चाई का पता चलता है। वहाँ की महँगाई, उनकी पकड़ के बाहर थी और परिचित लोग भी अपरिचितों के समान जीने की शैली को वे आत्मसात नहीं कर सके। महानगर वास्तव में ऐसी एक चमकीली दुनिया है जो हमेशा लोगों को अपनी ओर आकर्षित करती रहती है। जीवन को हरियाली बनाने की इच्छा के कारण लोग बार-बार उसमें फँसते होती

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 78
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 321

रहते हैं। 'वह लड़का जिसे गर्मी लगती थीं' नामक कहानी के योगेश कुमार नगर में काम करता है। नगर में आने के बाद उसे वापस अपना गाँव और घर में जाने के लिए भी इच्छा नहीं है। नगर की सुख सुविधाओं में वह एकदम फँस जाता है। नौकरी स्थायी बनने के लिए योगेश कुमार अधिक समय काम कर मालिकों का ध्यान आकर्षित करता है। योगेश कुमार का एकमात्र लक्ष्य है कि किसी-न-किसी प्रकार नगर में रहना।

2.3.7.2 व्यस्तता और ऊब

महानगर तो व्यस्तता का प्रतीक है। वहाँ लोग अपना जीवन समयसारणी के अनुसार चलाते हैं। सुबह उठने से लेकर खाना और रात में सोना तक का समय पहले ही तय होता है। उससे थोडा समय किसी अन्य बात के लिए देना उनके लिए असंभव है। समय के अनुसार दौड़कर उनका जीवन इतना व्यस्त हो जाता है कि उनको किसी के साथ बात करने के लिए समय नहीं मिलता है। इस भागदौड़ में उनकी आत्मा भी लुप्ता हो जाती है। किसी को देखकर मुस्कुराने के लिए भी उनके पास समय नहीं है। यंत्र के समान वे हर दिन बिताते रहते है। इस संदर्भ में सुदर्शन नारंग का कथन यहाँ समीचिन है - "महानगर एक ऐसी भागदौड़ का पर्याय बन जाता है जहाँ कल कारखाने तीन-तीन शिफ्ट में चौबीस घंटे गडगडाते हैं। मर्कुरी और नियॉन बत्तियाँ रात को दिन में तब्दील किये रहती हैं। संबन्धों का एकमात्र आधार पद-प्रतिष्ठा और धन रह जाता है। आदमी कंप्यूटर बन जाता है और आत्मा का लोप हो जाता है।"[1] इस व्यस्तता के कारण लोगों को अपने पडोसी के

---

1. सुदर्शन नारंग - महानगर की कहानियाँ - भूमिका से

नाम का पता भी नहीं है। ग्रामीण और विशेषकर वृद्ध लोग जो नगर में आकर बसते हैं, वे इस यांत्रिक जीवन को सहन नहीं कर सकते हैं। यह कई मानसिक तनाव और संघर्ष का कारण बन जाता है। आजकल फ्लॉट या हाउसिंग कॉलनी में नेम प्लेट की संस्कृति उभर आती है। यदि नेम प्लेट है तो उनके नाम और काम की जानकारी दूसरों को प्राप्त कर सकते हैं। यदि नहीं है तो वे अपनी अनभिज्ञता में मस्त रहते हैं। इस प्रकार अपने भीतर छुपाकर जीनेवाले मानव पर ममताजी ने 'पंडिताइन' नामक कहानी में संकेत दिया है। इसमें वृद्ध माँ पंडिताइन कॉलनी के सेल्फ सेन्टेर्ड संस्कृति से जुड नहीं पाती। इसलिए वे घोबी, जमादार और नौकरों से पूछताछ कर अपना समय बिताती है, "कोलनी की संस्कृति यही है। अगर गेट पर नेम प्लेट लगी है तो अवगत हो जाइए अन्यथा अपनी अनभिज्ञता में मस्त रहिए। सिर्फ घरों में आने-जानेवाले धोबी, जमादार और नौकरों के ज़रिए छिटपुट जानकारी का आदान-प्रदान हो जाता है।"[1] नौकरी के बिना घर में सारा दिन बितानेवालों को शहर की इस नवीन संस्कृति से समझौता नहीं कर सकते हैं। 'परदेस' नामक कहानी भारत से अपने बेटों के साथ विदेश में जीने के लिए चले गए दो माताओं की कहानी है। बेबे और प्रसन्नी दोनों को अपने बेटे के साथ रहने से खुशी है। लेकिन वहाँ की जीवन शैली से वे टिक नहीं पाती है। अपने गाँव की बिल्कुल विपरीत परिस्थितियों से दोनों त्रस्त हो गये हैं। "उस छोटे से कमरे में ज़्यादा देर बैठ पाना उन के लिए मुश्किल था। फिर उन्हें अपनी गली की आदत पड़ी हुई थी, जब दोपहर हमेशा अड़ोस-पड़ोस में बीतती। आपस में बातें करने की

1. ममता कालिया - खुशक़िस्मत - पृ. 83

भी हद होती है।.................... इस ब्लाक में कुछ और हिंदुस्तानी रहते थे। उनसे उन्होंने बोलचाल शुरू कर ली थी। भाषा का सुख तो इन संपर्कों में था पर वैसी बेतकल्लुफ पारिवारिकता नहीं था जैसी जालंधर में मिला करती। अगर वे दो न होती तो यह तय था कि एक बहुत जल्द ऊब जाती।"[1] विदेश में जीनेवाले भारतियों से भी उन दोनों की एकरसता नहीं मिली है। इसलिए दोनों अपने गाँव की ओर वापस आये।

'शहर-शहर की बात' नामक कहानी में महानगरीय जीवन का यथार्थ चित्र पाठकों के सामने ममताजी ने प्रस्तुत किया है। नायक सालों से बम्बई में रहते है। उसकी राय में बम्बई तो, एक दिन मकान छिन जाने का, नल से पानी न आने का, रेल किराया बढ़ जाने का, बरसाती न खरीद पाने का, महंगाई बढ़ जाने की खबरों से भरा हुआ एक स्थान मात्र है। सालों से हुए महानगरीय जीवन ने उसके मन में ऊब और घृणा का भाव उत्पन्न किया है। इसलिए उसकी मानसिकता ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती है - "दरअसल मुझे भी नहीं पता था कि बम्बई को महानगर क्यों कहते हैं। फिलहाल मेरा ख्याल था कि वहाँ बसें आम बसों से ऊँची, रेलें आम रेलों से तेज़ और मकान आम मकानों से महँगे हैं, इसलिए उसे महानगर कहते हैं।"[2] ऊब, दरार, धोखा, अकेलापन, संत्रास आदि महानगरीय जीवन के अभिन्न अंग है।इसको गहराई से समझने के कारण हमेशा बक्षी ने इस प्रकार लिखा है "महानगर एक अधिक शोर करनेवाले खिलौने से अधिक कुछ नहीं था। गगनचुम्बी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 230, 231
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 77

अट्टालिकाएँ थीं। कार्बूजिएक शिल्प था, अद्योगिक उपलब्धि थी। मशीन की रेडिमेड सुविधाएँ थीं, ऐशो-आराम की रंगीनी थी। खुशनुमा सुबह से लगे अच्छी हो जाने वाली शाम थी - हर संघर्ष दफा। हर युद्ध विजित, हर मोर्चा तैनात............ ऐसे में एक ओर महानगर की दहरात है। षड्यंत्र है। छलफरेब हैं। दुर्घटनाएँ हैं। महामारी और संक्रामक रोग है, तनाव है, टूटना है, लेकिन दूसरी ओर ग्लेमर है। निजी व्यस्तताएँ हैं। हाथ हथेली है, ऐंबेलेन्स है, हर असंभव रोग का संभव इलाज है।"[1] महानगर को दो चेहरे हैं, एक तो सुख सुविधाएँ, आकर्षणीयता, धूम धाम मचाने का, सलामती का और दूसरा तो व्यस्तता, अजनबीपन, अकेलापन छल-छलाव, दुर्घटनाएँ, महामारियों का। ममताजी अपनी कहानियों में इन दो चेहराओं का खुला चित्रण तो करती हैं। वास्तव में भलाई और ख़राबी का यह मिश्रण जनता के मन में द्वन्द्व का भाव उत्पन्न करता है।

2.3.7.3 नगर और गाँव के बीच का द्वन्द्व

नगरबोध को हम अंग्रेज़ी में 'अरबन स्टाइल आफ लाइफ' कहते हैं। नवीनता का एहसास देनेवाले जीवन का यह तरीका वास्तव में एक जाल के समान है। यदि एक बार नगर की आकर्षणीयता से जकड़ जाए तो उससे मुक्ति पाना असंभव है। अनजाने ही हम उसमें फँस जाते हैं। इसलिए रामदरश मिश्र ने महानगर को 'मायावी' संज्ञा दी है : "महानगर कितना बड़ा शब्द है - कितना मायावी, कितना मोहक।"[2] हम जानते हैं कि औद्योगीकरण के समय से ही गाँव से

---

1. रमेश बक्षी - ज्ञानोदय 1966
2. रामदरश मिश्र - कितने बजे हैं

लोग शहर में आकर बसने लगे। नौकरी, धन, सुविधाएँ आदि कई कारण उसके पीछे हैं। लेकिन मानसिक दौर में उन्हें द्वन्द्व का अनुभव करना पडता है। एक ओर जीवन को हरियाली बनाने की सुविधाएँ, नौकरी आदि तो दूसरी ओर अपने गाँव की यादें। इन दोनों के बीच वे तडप रहे हैं। वापस जाने की अदम्य इच्छा होने पर भी कई कारण उसे पीछे की ओर घसीटते हैं। कुछ तो प्रायोगिक होकर अपनी मानसिकता पर विजयी होने पर कुछ तो मन ही मन द्वन्द्व भोगकर जी रहे हैं। इसकी ओर संकेत देते हुए धनंजय वर्मा जी ने इस प्रकार कहा है "नगर-महानगर का सम्मोहन ऐसा है कि उसमें फँसकर मुक्ति के लिए छटपटाते हुए भी आप मुक्त नहीं होते....... आपकी नियति उस पक्षी की हो जाती है, जो पिंचडे में एक बार रहकर खुली हवा और उन्मुक्त आकाश का आनन्द नहीं ले पाता।"[1] ममता कालिया ने 'अपने शहर की बत्तियाँ' नामक कहानी में गाँव और शहर के बीच के इस द्वन्द्व का स्पष्ट अभिव्यक्ति की है। पंकज और संजीव शहरीय जीवन शैली से भ्रमित होकर दिल्ली में आ गया। शहरीय जीवन की सुविधाओं में मस्त होने पर भी धीरे-धीरे उनके मन में अपने गाँव और वहाँ के लोगों की याद आने लगी। साथ ही साथ नगरों की व्यस्तता, महंगाई आदि से दोनों त्रस्त होने लगे। परिचित लोग या बातें करने के लिए कोई न होने की स्थिति में दोनों ने तय किया है कि अपने गाँव में वापस जाना ही अच्छा है। अपने गाँव की भलाई और वहाँ छोटी-छोटी आमदनी को छोडकर जाना कितना बेवकूफ निर्णय था, यह जानकारी दोनों को अपने गाँव

---

1. ज्ञानोदय - धनंजय वर्मा 1966

में वापस लाया। "हालांकि गाड़ी तेज चल रही थी, दोनों दोस्तों का मन उससे भी तेज़ और दिल कई-कई स्टेशन आगे भाग रहा था। जल्द से जल्द अपने सगे, सुपरिचित और सहज शहर में वे वापस पहूँच जाना चाहते थे। इस शहर ने तेईस साल इन्हें पाला था - पौधों की तरह। उन्हें अपने पर शर्म आई कि वे यहाँ से भाग निकलने की सोच रहे थे, अब जब से वे इस शहर को संवारने, संभालने की उम्र पर आ पहूँचे हैं।................ कुछ मिनिट बाद उन्हें क्षितिज की तरह दिख पड़ीं अपने शहर की बत्तियाँ।"[1] दिल्ली के जीवन और वहाँ के अनुभव ने उन्हें यह समझाया है कि जीने के लिए महानगरों में जीना एक ज़रूरत नहीं। मन चाहे तो गाँव में भी काम कर अच्छा जीवन बिता सकते हैं।

आज लोग गाँव से शहर, शहर से महाशहर, महाशहरों से विदेश की ओर बहते रहते हैं। लेकिन कुछ लोग तो इस बहाव की विपरीत दिशा में तैरते हैं, इसका उदाहरण है 'परदेसी' कहानी का नीरद। नीरद के भाई, बहन, कई रिश्तेदार, मित्र आदि विदेशों में और मल्टी नाशनल कम्पनियों में नौकरी खोजकर चले गये और उन्होंने नीन्द को भी प्रेरणा दी। लेकिन नीरद अपने स्वार्थों की पूर्ति के खातिर अपनी मिट्टी को भूलने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए उसने अपने मित्र को इस प्रकार जवाब दिया है "रिचार्ड, मैं तो तभी जानता था कि रोटी के लिए कोई अपनी मिट्टी नहीं छोड़ता। मेरा तो लिखने-पड़ने का काम है। शोहरत, बदनामी जो मिलनी है, यहीं निले। सात समुंदर पार चला गया तो कौन सुनेगा मेरी आवाज़, मेरे

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 323

शब्दों में से सारी खुशबू निकल जायेगी।"[1] इसी प्रकार अपना मन जो कहता है, उसको करने का साहस बहुत कम लोगों में है। पंकज, संजय और नीरद को हमारे सामने 'रॉल मॉडस' के रूप में रखकर ममताजी अपने आप खुश रहने की या अपने हाथ में जो कुछ है उससे संतुष्ट रहने की मानसिकता को अपनाने का आदेश दिया है।

2.3.8 प्रकृति और सहजीवि प्रेम

प्राचीन भारत में मानवीय विचारधारा को प्रमुख स्थान मिला था। तब मनुष्य प्रकृति से जुड़कर रहा था। लेकिन विकास के दौर में अन्य सभी क्षेत्रों के समान मानव की विचारधारा में भी परिवर्तन नज़र आ गया। मानवीयता, सहजीवि प्रेम, मूल्य आदि के प्रति विश्वास और दृष्टिकोण बदलता आ रहा है। आज के समाज और मनुष्य प्रकृति से दूर होते जा रहे हैं। इस समाज को प्रकृति की ओर वापस ले आने की अंतिम कडी आज की पीढ़ी है। यदि हम दृढ़निश्चय नहीं करे तो हमारी प्रकृति हमेशा के लिए नष्ट हो जाएगी। यह मानव जाति के अंत तक पहूँचाता है। ममता कालिया अपनी कहानियों के माध्यम से प्रकृति की सुरक्षा की आवश्यकता पर हमारा ध्यान खींचती है। 'नए दोस्त' नामक कहानी में ममताजी पाठकों को सहजीवि प्रेम सिखाने की कोशिश करती है। मनुष्यों के समान अन्य जीव-जन्तुओं से प्यार करने की आवश्यकता के बारे में ममताजी इस कहानी में बताती है। चूजों को अपने बच्चे को दोस्त के रूप में देनेवाली इस कहानी की माँ

1. ममता कालिया - खुशक़िस्मत - पृ. 82

वास्तव में नई पीढ़ी को प्रकृति के प्रति आकर्षित कराने का कार्य करती है। 'बच्चा' नामक कहानी में अपनी नौकरियों में व्यस्त माँ-बाप को प्रकृति की ओर आँख खोलने के लिए प्रेरणा देनेवाले बेटा का चित्रण ममताजी करती है। "बच्चा आकाश में बादलों के रंग देखने लगा, 'माँ, माँ, देखो कितनी ढेर सी कांपोजिशंस होती है आसमान में। इतनी तो कम्प्यूटर में भी नहीं आ सकती। मैं देखती। सचमुच सावन का आकाश, एक निरंतर आश्चर्य। घटाएँ काली, नीली, स्लेटी, सुरमई होती होती ओझल हो जाती। यकायक हम पीछे मुडकर देखते, अपनी अजूबी रंग-सज्जा में घटाएँ दूर वहाँ इठलाती मिलती।"[1] प्रकृति की सुन्दरता पर सालों बाद माँ ने ध्यान दिया है बच्चा बेटा के द्वारा।

आज लोगों को प्रकृति से खुशी नहीं मिलती है। समय बिताने के लिए वातानुकूलीन मॉल या वीडियो गेइम की ज़रूरत होती है। 'बाज़ार' में दादी अपनी पोती के साथ पार्कट में समय बिताना चाहती है। लेकिन पोती की राय में पार्क तो बोरिंग है। "मैं सगुन से कहती हूँ, 'सुग्गी दादी के साथ सैर पर चलेगी न।' सगुन अपनी माँ से लिपटी बैठी थी। 'कहाँ?' उसने पूछा। 'पार्क में'। तू झूला झूलना, मैं चक्कर लगा लूँगी'। 'छः इस सड़े पार्क में मैं नहीं जाऊँगी'। सगुन ने मुझे सुस्त पडते देखा तो दौड़कर मेरे पास आयी, 'दादी सेण्ट्रल मार्केट चले तो ज़रा मज़ा आये।"[2] जनता में ऐसी एक मानसिकता का रूपायन होता है कि प्रकृति सिर्फ उपभोग करने की वस्तु है। प्रकृति से जुडकर आगे जीने के लिए हम कभी-कभी

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 217
2. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 90

भूल जाते हैं। प्राकृतिक वस्तुओं को अनदेखा कर हम फास्ट फुट और सोफ्ट ड्रिंक्स के पीछे भागते हैं। 'पिकनिक' नामक कहानी का बेटा इसका उदाहरण है। वह कोला जैसे पेय के सिवा कुछ नहीं पीता है। लेकिन उसकी माँ बेटे की इस मानसिकता से परेशान होकर प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं की ओर उसे वापस लाने की कोशिश तो करती है। "असित चिढ़ गया। दाँत पीसते हुए बोला, 'आयी हेट दिस ब्लडी कोकोनट। यह बौड़म सी चीज़ हमारे व्यापार का रोड़ा है। क्या है यह, न ढ़ग का साइज़ न सूरत, पर लोग इसे सिर पर चढ़ाये हुए हैं'। 'इसकी ठंडक देखो, प्रकृति-प्रदत्त। कुछ भी कृत्रिम नहीं है इसमें। तुम एक नेचुरल चीज़ को नष्ट करोगे और कुछ नहीं।' मैंने कहा।"[1] बेटे के मन में माँ के शब्दों को कोई असर नहीं पडता। फिर भी पोते दादी के शब्दों को स्वीकार करते हैं और पोते को प्रकृति की ओर लाने में दादी विजयी भी हो जाती है। मनुष्य जीव-जन्तुओं, पक्षियों, पेड़ पौधों से मिल कर जीने पर ही प्रकृति शब्द का अर्थ पूरा हो जाता है। मनुष्य सिर्फ अपने को महत्व देकर जीता है तो प्रकृति अपूर्ण बन जाती है। यह प्रकृति के विनाश का कारण भी बन जाता है। प्रेमानंद चंदोला का कथन इस अवसर पर समीचीन है "प्रकृति का हर जीव यानी पेड-पौधे, प्राणी, पक्षी आदि सभी प्रकृति के महत्वपूर्ण अंग और पूर्जे हैं, जो इस ग्रह पर जीवन के प्राकृतिक तंत्र का संचालन और निर्धारण करते हैं। किसी भी कारण पौधे या प्राणी की किसी भी जाति को यदि गड़बड़ी पहुँचती है तो इसके परिणाम सृष्टि के सारे क्रिया-कलापों में महसूस किये जाते हैं।"[2] ममताजी अपनी कहानियों के द्वारा आज की पीढ़ी को और आनेवाली

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 415
2. प्रेमान्द चंदोला - पर्यावरण और जीव - पृ. 43

पीढ़ी को यह संदेश दिलाना चाहती हैं कि प्रकृति के संतुलन में वन्य-प्राणियों, पशु-पक्षियों आदि का भी उतना महत्व है, जितना मनुष्य का।

2.3.9 धार्मिक शोषण

नवउपनिवेश के दौर में धर्म सत्ता का सबसे प्रमुख औजार है। आज धर्म अपने मूल तत्व से बदलकर धन और अधिकार कमाने का एक साधन मात्र बन गया है अर्थात् आज धर्म अधार्मिक उद्देश्यों की पूर्ति का माध्यम है। धर्म की आड़ में सभी अर्थात् पुरोहित और धर्म संचालक अपना लाभ उठाते हैं। जनता का विश्वास और भक्ति को अंधविश्वास और बाह्याचरणों की ओर बदलने के पीछे इनके हाथ ही हैं। वे जनता के मन में ऐसा एक विश्वास पैदा करते हैं कि बाह्यआचरणों से ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है। 'मेला' नामक कहानी में इसका स्पष्ट उदाहरण देख सकते हैं। इसमें संतों के आदेशानुसार भक्तों मौन व्रत लेकर नाव पर यात्रा करते हैं। नाव डूबने स्थिति में भी वे मौन रखते हैं। शोर मचाकर अपना व्रत टूटने के लिए और ईश्वर को नष्ट करने के लिए वे तैयार नहीं है। "सभी सवारियाँ एक-दूसरी के गले लगाकर रो रही थीं, मौन रोदन, जिसमें शब्द की जगह सिसकियाँ थीं, अश्रु की जगह आँखों में भय............।"[1] पुरोहित जो कुछ कहते हैं उसे अंध-रूप में वे स्वीकार करते हैं। अंधा विश्वास जनता को अपने दिमाग का इस्तेमाल करने की क्षमता को नष्ट कराता है।

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 144

ममता जी ने 'खुशियों का लौटना' नामक कहानी में अंधविश्वास के एक और चेहरे का पर्दाफाश किया है। इसमें दादी विश्वास करती है कि बद्रीनाथ के आशीर्वाद से अपनी बहू गर्भवती बनी है। इसलिए दादी पोती को उसके तीन साल की अवस्था आने पर उसे लेकर बद्रीनाथ की यात्रा करती है। प्रेरणा नामक पात्र के द्वारा ममताजी ऐसे अन्धविश्वासों के प्रति अपना विरोध प्रकट करती हैं। प्रेरणा कहती है - "मन्नत उतारने भाभी अकेली जा सकती थी। छोटी-सी बच्ची को ऐसी दुर्गम जगहों में साथ घसीटने से क्या मतलब था?.......... बदरीनाथ की यात्रा बडे बूढ़े करते हैं, छोटे बच्चे नहीं।"[1] लेकिन वास्तविकता तो यह है कि अंधभक्ति जनता के आँखों में पर्दा डालती है। सच्चाई को समझने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

जनता की इस अंधविश्वास का लाभ धर्माचार्यों आर्थिक रूप से ही नहीं कभी-कभी शारीरिक रूप से भी करते हैं। अखबारों में से ही हम समझ सकते हैं कि बलात्कार के अपराधी के रूप में अक्सर तमाम धर्मों के पुरोहित तो शामिल हैं। लेकिन सबसे बडे दुःख की बात है कि धर्म और विश्वास के नाम पर धार्मिक जनता ही उन अपराधियों की सुरक्षा के लिए लडती हैं। कानून के लूप हॉल्स और जनता की अंध भक्ति का लाभ उठाकर वे समाज में स्वतंत्र रूप से रहते हैं। ममता जी 'मेला' नामक कहानी में इसका स्पष्ट उल्लेख करती है। इसमें एक स्वामिनी अपना अनुभव इन शब्दों में व्यक्त करती है - "स्वामी रामानंद अच्छे थे, पर उन्हें भी देह की दानवी भूख थी। आय टेल यू। एक रात मैं उन्हें कृष्णमूर्ति की फिलॉसफी

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 47

समझा रही थी। मुश्किल से नौ बजे थे, उन्होंने मेरे चोंगे में हाथ डाल दिया। बाय गॉड। मैंने प्रोटेस्ट किया तो वे बोले, 'कौन देखेंगा। किसी को पता भी नहीं चलेगा'......... जानती हो एक मिनिट को यहाँ बत्ती चली जाती है तो कितने बलात्कार हो जाते हैं इस बीच।"[1] इस प्रकार धर्माचार्य जनता का दैहिक शोषण और अन्याय का कार्य बेहिचक से करते रहते हैं क्योंकि सत्ता पर धर्म का हाथ उतना ही सशक्त है। धर्म और पुरोहितों का सबसे अधिक समर्थन सत्ता ही करता है।

2.3.9.1 सांप्रदायिकता

धर्माचार्यों और सत्ताधारी अपने लाभ के लिए धर्म के नाम पर जनता को आपस में लडाते हैं। धर्म के नाम पर होनेवाले ये आक्रमण सांप्रदायिक दंगे कहते हैं। दरअसल इन आक्रमणों को धर्म से कोई संबन्ध नहीं। इनका संबन्ध सिर्फ सत्ताधारियों और धर्माचार्यों के लाभ और स्वार्थ से है। ऐसे दंगों के संबन्धों पर प्रकाश डालते हुए विनय विश्वास ने लिखा है "सांप्रदायिकता का संबन्ध धर्म से नहीं है। किसी भी धर्म से नहीं। संबन्ध है लाभ-लोभ से। राजनीति से, क्रूरता से। सत्ता और वर्चस्व हासिल करने का एक प्रबल माध्यम है वह। धार्मिक भावनाएँ भडकाना, लोगों को संप्रदाय विशेष के आधार पर गोल-बन्द करना और दंगे करवाना इस माध्यम के प्रमुख रूप हैं। अधार्मिक उद्देश्य पूरे करने के लिए धर्म का इस्तेमाल इसका स्वभाव है।"[2] एकता के साथ जीनेवाली जनता के मन में धर्मांधता की

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 142
2. विनय विश्वास - आज की कविता - पृ. 72

चिनगारियाँ फूँक डालने के लिए वे एक अवसर ढूँढ रहे हैं। सत्ता परोक्ष रूप से जनता के मन में खतरा और संघर्ष का माहौल पैदा कराती है। ममता कालिया की 'उपलब्धि' नामक कहानी में इसका स्पष्ट उल्लेख देखने को मिलता है। इसमें जनता के द्वारा मुर्हरम और होली एक साथ मनाने का सुन्दर चित्र उन्होंने खींचा है। लेकिन धीरे-धीरे वहाँ इन धार्मिक पर्वों में पुलीस की सुरक्षा का इस्तेमाल होने पर जनता के मन में अनजाने ही भय और दूरी का भाव पैदा होता है। "गली में घूमती गश्ती पुलीस को देखकर ही पता चलता था कि होली-मुर्हरम अलग-अलग त्योहार हैं और इसलिए सम्भावित तनाव के विषय।"[1] ऐसी स्थिति में सांप्रदायिक दंगों को भड़काना उनके लिए आसान है।

सामान्यतः छोटी-छोटी घटनाओं को बड़ा करके दंगे तक पहूँचाया जाता है। देश में घटित किसी भी दंगे के मूल कारण तो सिर्फ दो-तीन व्यक्तियों के बीच का संघर्ष होगा। इस संघर्ष को या अनजाने में हुई गलती को इतने बडे दंगे के रूप में बदलने के पीछे कुछ लोगों के स्वार्थता और लोभ रहते हैं। 'उपलब्धि' नामक कहानी में एक बच्चे के हाथ से अनजाने हुई एक गलती हिंदू-मुसलमान दंगे के रूप में बदलने का भयानक चित्रण ममताजी ने किया है। मुर्हरम के दिन हुए मातम को देखकर बारजे पर खडे एक बच्चे के हाथ से ग्लास फिसलकर पानी मुसलमानों की देह पर पडा। यह देखकर कुछ लोगों ने तो आरोप किया कि हिंदू लोगों ने यह जान-बूझकर किया है और यह आरोप एक दंग के रूप में जल्दी ही बदल गया।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 179

"आस-पास के बच्चों को अचानक बृहत रफ्तार से मातम करते देख उसके दोनों हाथ अपने आप जोरों से सीने पर पड़ने लगे। ग्लास छूटकर बारजे पर गिरा और काफी पानी नीचे जुलूस पर जा गिरा। जुलूस में खलबली मच गई। 'पानी कहाँ से आया?' 'कोन नापाक पानी फेंक रहा है?' 'कोन काफ़िर मूत रहा है?' वगैरह चिल्लाती उत्तेजित भीड़ ऊपर नीचे गुनहगार की तलाश में सक्रिय हो गई। आग की तरह उत्तेजना जुलूस के दोनों छोरों तक फैला गई।"[1] वास्तव में यह है अधिकाँश सांप्रदायिक दंगों का कारण। इन दंगे में नष्ट और नाश सिर्फ आम जनता को भोगना पडता है।

आज एक धर्म या धर्मावलंबी को दूसरे का दुश्मन मानने की स्थिति पैदा हुई है। हर क्षेत्र में मनुष्य प्रगति के पथ पर थे लेकिन धर्म और जाति जैसी बातों में लोग और भी सिमट रहे हैं। हम जानते हैं कि सर्वधर्म समभावना ही भारत की विरासत है। हर धर्म दूसरे धर्म को आदर और इज्जत की भावना से देखने के लिए सिखाता है। सभी धर्म परस्पर स्नेह, विश्वास, क्षमा और दया का पाठ हमें सिखाते हैं। इसलिए भारतीय परंपरा सभी धर्मों के सामंजस्य को महत्ता देती है। धर्म के सही अर्थ का विश्लेषण करते हुए कृष्णदत्त पालीवाल ने इस प्रकार लिखा है "भारतीय धर्म की सभी परिभाषाएँ मनुष्य, प्रकृति के रिश्तों की पहचान कराती है। अनेक धर्म और धर्म ग्रन्थों के होने पर भी मनुष्य का धर्म सिर्फ एक है - सृष्टि को पहचाननेवाला धर्म। हमारे धर्म में स्वार्थ नहीं, परार्थ का भाव है। दूसरों को पीडित

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 181

करना ही अधमता है - नीचता है। धर्म का बीज वहाँ गड़ा हुआ जहाँ मैं 'हम' में एकाकार है।"[1] धर्म का इतना सुन्दर और आदर्श रूप अब खतरे में है। धर्म की गलत व्याख्या करनेवाले धर्माचार्यों ने इसे नष्ट-भ्रष्ट कर दिया है। धर्म आत्मीयता से बदलकर भौतिकता को अधिक स्थान देता है। यह हमारे धार्मिक विरासत और संस्कृति के नाश का कारण बन जाता है।

2.3.9.2 जाति भेद और दलित

भारतीय समाज व्यवस्था के मूल में वर्ण व्यवस्था का प्रमुख स्थान है। इसलिए भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन पर चर्चा करते समय वर्ण व्यवस्था से प्रारंभ होते भेदभाव पर विचार करना ज़रूरी है। वैदिक काल में सामाजिक कार्यों को विभाजित करने के लिए वर्ण व्यवस्था बनाई नई थी। लेकिन गुण और कर्म के आधार पर निर्धारित यह वर्ण व्यवस्था धीरे-धीरे जन्माधिष्ठित हो गयी। मनुष्य को मनुष्य से दूर करनेवाली इस वर्ण व्यवस्था ने समाज के एक बडे हिस्से को जीवन से और मूलभूत अधिकारों से वंचित किया। आज समाज में उस वर्ण व्यवस्था का परिवर्तित रूप जाति व्यवस्था विद्यमान है। जाति व्यवस्था का प्रभाव इतना तीव्र है कि आज मनुष्य को उसकी जाति के आधार पर ही पहचाना जाता है। प्रत्येक जाति के अपने नियम होते हैं और उन नियमों के विरुद्ध आचरण करने पर उसे जाति से बहिष्कृत करते हैं। जाति के नाम पर मनुष्य परस्पर मार डालने के लिए भी हिचकते नहीं हैं। प्रगति तो केवल भौतिक स्तर पर है, मन ही

---

1. कृष्णदत्त पालीवाल - दलित साहित्य बुनियादी सरोकार - पृ. 57

मन लोग और भी रूढ़ीग्रस्त हो रहा है। सभी प्रगतिवादी विचारों और समानता का भाव भी कागज़ों और भाषणों में सिमट रहा है। इसका स्पष्ट उदाहरण है 'परली पार' नामक कहानी। इसमें उच्च जाति के किशन ने निम्न जाति की सविता से प्रेम किया। यह जानकर किशन के माँ-बाप और रिश्तेदारों ने दोनों को मार डालने की तैयारियाँ कीं। उनकी राय में एक निम्न जाति की युवति बहू के रूप में आने से भी अच्छा है अपने इकलौते लडके को मार डालना। घरवालों की मानसिकता ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं "किशन ने बारी-बारी सबकी तरफ़ देखा। इस वक्त किसी की आँख में नरमी नहीं थी। सबकी आँखें आग बरसा रही थीं। किशन ने सविता से कहा, 'ये अपना घर नहीं है, दुश्मनों का घेरा है, चलो यहाँ से भाग लें।' जैसे ही वे मुड़े, चाचा ने अपनी लाठी अटकाकर सविता को गिरा दिया। किशन ने ललकारा, 'चाचा चक्कू चल जायेंगे, होश में रहो'। चौधरी ने कहा, 'आटे में चूहामार दवा रॉधकर दोनों को टिक्कड़ खिला दे किशन की माँ'।............... माँ ने दोनों बच्चों को कोठरी में बन्द करके डाल दिया। घर में विचार विमर्श चला। जब रात गहरा गयी चाचा, किशन और सविता को साथ लेकर गंगा जी की तरफ चले। उनकी तैयारी पूरी पक्की थी।.................. चाचा ने कहा, 'सेवकवा जैसा समझाया है वैसा ही करना। वापस आकर हमसे अपना इनाम ले जाना।"[1] घरवालों की गूढ़नीति के बारे में ज्ञात होकर वे नॉववाले की सहायता से गंगा नदी में कूद कर परली पार की दिशा में तैरने लगे। ममताजी ने कहानी को सुखात में समाप्त कर जाति भेद को पराजित कर आगे जीनेवाले प्रेमियों को हमारे सामने

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 25

प्रस्तुत किया है। वास्तव में कहानी की 'परली' तो समाज में मौजूद जाति भेद की भावना है। दोनों प्रेमियों द्वारा उसे पार करने का चित्रण ममताजी ने प्रतीकात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत कर जाति और धर्म भेद को हमारे मन से निकालने की प्रेरणा दी है।

जाति व्यवस्था के कारण सालों से सामाजिक अन्याय का शिकार बना एक वर्ग है दलित। विश्व के इतिहास में इतने भयानक और त्रासद भेदभाव को भुगतने के लिए विवश और कोई समाज कहीं नहीं है। अस्पृश्यता, छुआछूत से लेकर मनुष्य के रूप में जीने के अधिकारों से वंचित होकर जीनेवाले लोगों के त्रासद जीवन का पर्दाफाश है दलित साहित्य। दलित लोगों की जीवन स्थिति के बारे में ओमप्रकाश वाल्मीकि ने इस प्रकार लिखा है "दलितों को जानवरों से भी बदतर जीवन जीने के लिए बाध्य किये जाते रहे हैं। मानवीय हकों से उन्हें दूर रखा गया। दासत्व का यह जीवन दलितों की अवनति का कारण था। उनके विकास को जिस तरह अवरुद्ध किया गया, वह वर्ण व्यवस्था और उससे उपजी जाति व्यवस्था की देन था।"[1] दलितों के पुनरुत्थान के लिए सरकार ने कई योजनाएँ की हैं और इसके फलस्वरूप एक छोटा सा प्रतिशत बच पाया। लेकिन कितनी ही योजनाएँ और आरक्षण हो लेकिन उनकी प्रगति के रास्ते का सबसे बडी बाधा तो अन्य लोगों की मानसिकता है। इक्कीसवीं सदी में भी जनता के मन में जाति के नाम पर भेदभाव, उच्च-नीचत्व, छुआछूत की भावना कायम हैं। जाति के नाम पर पीछे की ओर धकेलने की सवर्ण मानसिकता पर समकालीन लेखक खासकर दलित लेखक

---

1. ओमप्रकाश वाल्मीकि - आलोचना - अक्तूबर-दिसंबर 2013

विशेष ध्यान देते हैं। ममता कालिया की 'रोशनी की मार' नामक कहानी में दलितों के प्रति समाज की इस सवर्ण मानसिकता का अंकन हुआ है। इसमें एक सवर्ण स्त्री का चित्रण किया गया है जो दलितों पर हमेशा घृणा की दृष्टि रखनेवाले समाज का प्रतिनिधि है। वह एक दिन बेहोश होकर गिर पडी। कहानी की नायिका बिटिया, एक दलित नारी है उसकी समयानुकूल प्रवृत्ति ने सवर्ण स्त्री की जान बचायी। लेकिन सिर्फ दलित होने के कारण बिटिया की महत्ता को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं है। उच्च वर्ग की निंदा और घृणा से आहत होकर बिटिया अपना रोष इस प्रकार प्रकट करती है, "सुन लो अच्छी तरह। हम कानो झूठ नहीं बोली। हमारे सच बोले से तोहार इज्जत चली जात है तो हम का करी। अरे तुम बाह्मनों की इज्जत का है, जा के चार बूँद गंगाजल छींट लो आपन ऊपर, आपन चूल्हें-चौका पर। वापस आय जाएगी इज्जत। हम वा दिन पास न होती तो इज्जत तोहर बच जाती पर जान तो चली जाती।"[1] बिटिया के इन शब्दों से उनके मन का आक्रोश और विद्रोह हम समझ सकते हैं। ममता कालिया इस कहानी के द्वारा प्रतिरोध करने की आवश्यकता के प्रति हमें जागृत कराती है। क्योंकि विद्रोह और प्रतिरोध के बिना समाज में कोई भी परिवर्तन नहीं आएगा। दादा साहेब रूपवते के अनुसार "किसी भी समाज को अपना उद्धार करना हो तो समाज मन में ही क्रांति घटित होने की आवश्यकता होती है। मन का इज्जत दौड़े बिना, उसका ईंधन प्रज्वलित हुए बिना रेल के डिबों की श्रृंखला गतिशील नहीं होगी। यह बात समाज मन और सामाजिक आन्दोलन के संदर्भ में सही है। किसी भी आन्दोलन के लिए

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कोवे - पृ. 222

पहले समाज की मानसिकता तैयार करनी होती है। मन की क्रान्ति ही सामाजिक क्रान्ति में प्रतिफलित होती है।"[1] वास्तव में समकालीन साहित्यकार जनता में क्रांति की मानसिकता उत्पन्न करने में सफल है। ममता कालिया भी इससे भिन्न नहीं है।

2.3.10 दायित्वहीनता

उपभोक्ता संस्कृति के केन्द्र में स्वार्थ भावना विद्यमान है। यह भारतीय संस्कृति के मूल में निहित 'लोकाः समस्ताः सुखिनो भवंतु' की भावना को तहस-नहस कर देती है। सबसे भयानक बात यह है कि अक्सर लोग उपभोक्ता संस्कृति के पीछे में मौजूद खतरे को पहचानता नहीं। इसका दुष्परिणाम समाज के हर क्षेत्र को भुगतना पडता है।

2.3.10.1 साहित्य के क्षेत्र में

आज साहित्य को धनोपार्जन और ख्याति प्राप्त करने के एक साधन के रूप में लोग समझते हैं। इसलिए इसमें समर्पण की भावना नहीं है। प्राचीन काल में इन्हें समाज में जो हैसियत हासिल की थी, वह आज नहीं के बराबर है। साहित्यकारों को अपने उत्तरदायित्वों के बारे में याद कराते हुए हज़ारीप्रसाद द्विवेदी इस प्रकार लिखा है "वस्तुतः संसार जितना भी आगे बढ़ता है या पीछे हटता है, उलझता है या ठिठकाता है.............. सबका प्रधान उत्तरदायित्व लेखकों पर है। स्पष्ट है कि यह उत्तरदायित्व बहुत व्यापक और महान है............... छोटा

1. सं. शरण कुमार लिंबाले - दलित साहित्य वेदना और विद्रोह - पृ. 112

लेखक हो या बढ़ा, समाज के प्रति उसका उत्तरदायित्व वही है। उसे संसार की वर्तमान समस्याओं को ठीक-ठीक समझना चाहिए और शांत चित से सोचना चाहिए कि मनुष्य को मनुष्यत्व के लक्ष्य तक जाने में कौन-कौन सी शक्तियाँ सहायक है और कौन-कौन सी बाधक। फिर उसे सहायक शक्तियों के प्रति सहानुभूति उत्पन्न करना चाहिए और बाधक तत्वों के प्रति विरक्ति।"[1] लेकिन आज साहित्यकार अपनी महान ज़िम्मेदारी को भूलकर प्रतिष्ठा, सम्मान, धन आदि के पीछे भागते हैं। समाज से संबन्धित समस्याओं की नब्जों को पकडने के बजाय सिर्फ उसके ऊपर से चले जाते हैं।

साहित्यकारों के इस उत्तरदायित्व साहित्य में प्रस्तुत करनेवाले साहित्यकार बहुत कम है। लेकिन ममता कालिया ने स्वयं साहित्यकार होने के नाते साहित्यकारों की समस्यायें, उनका दृष्टिकोण और खोखलेपन आदि को भली-भाँति समझ लिया है। इसका स्पष्ट गवाह है उनकी 'सेमिनार' नामक कहानी। आज कुछ साहित्यकार साहित्य को समय बिताने के उपाय के रूप में मानते हैं, कुछ तो प्रसिद्धि का साधन बनाते हैं। इन्हें समाज के प्रति कोई प्रतिबद्धता नहीं है। ऐसे साहित्यकारों के प्रति अपना व्यंग्य भरी दृष्टि ममताजी ने इस कहानी में व्यक्त की है। सेमिनार के नाम पर शिमला में मस्ती करने के लिए इकट्ठे होनेवाले साहित्यकारों की कहानी है 'सेमिनार'। कहानी की नायिका को अन्य साहित्यकारों के क्रियाकलाप, बढ़ाई आदि को देखकर गुस्सा आता है। दूकान में झाड़ू देखकर कलाकृति समझकर 'ड्रइंगरूम' में रखने के लिए तैयार होनेवाले साहित्यकारों की विवेकहीनता को ममताजी ने इस

---

1. हजारीप्रसाद द्विवेदी - हजारीप्रसाद ग्रंथावली - पृ. 466, 467

कहानी में सधैर्य व्यक्त किया है। "एक झाड़ू देख कर वीना लपकी, 'ओ हाउ ब्यूटीफुल!'..... झाड़ू एक बारीक धागे से बंधी थी। बीना ने उसे खोलकर फैलाया और अपनी कमर से लगाकर बोली, 'किसी लग रही है?' 'सुभान अल्ला'। विवेक ने कहा और अपना कैमरा कर दिया। तब तक अन्य दो लेखिकाएँ भी वहाँ आ गई। बीना ने उनको झाड़ू दिखाई। सब उसकी प्रशंसा करने लगीं। बीना ने कहा, 'मैं इसे खोलकर अपनी बैठक में लगाऊँगी। इसके पीछे काली मखमल की बेकग्राउन्ड दूँगी तब देखना'। सुरेखाजी ने कहा, 'मेरे बेडरूम की एक दीवार बड़ी सूनी और मनहूस है। मैं तो वहीं लगाऊँगी।' तीसरी बुद्धिजीवि ने दिल पर हाथ रखा, 'हाय मुझे तो दो दे दो, एक से काम कैसे चलेगा।'.... कलेजे से झाड़ू लगाए सभी उत्तर-आधुनिक लेखिकाएँ अपने कमरे में पहूँच गईं।"[1] साहित्यकारों के ऐसे बातें सुनने पर दूकानदार धीमी आवाज़ में कहा कि यह कलाकृति नहीं, सफाई करने का साधन है। यह जानने पर ये वरिष्ठ साहित्यकारों ने जल्दी ही तय किया कि अगली साहित्यिक रचना ज़रूरी झाड़ू और सफाई का काम करनेवाले लोगों पर होनी चाहिए। आज साहित्यकार नये-नये विषयों को ढूँढ़ते रहते हैं। ममताजी इस कहानी के द्वारा यह प्रश्न उठाती है कि साहित्यकार पाठकों के लिए लिखता है या अपने स्वार्थ के लिए? आज साहित्यकार प्रसिद्धि सम्मान, धन, प्रशंसा आदि को मंजिल समझकर लिखते हैं इसमें अपने अनुभव या विचारों की अभिव्यक्ति नहीं होती है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 15

साहित्यिक प्रतिभा सभी में नहीं है। वह तो एक कला है। लेकिन आज लोगों की धारणा है कि साहित्य-सृजन तो सीखा जा सकता हैं। इसलिए लोग साहित्य क्षेत्र में गुरुओं के पीछे भागते हैं। 'शिष्या' नामक कहानी में ऐसे साहित्यिक गुरुओं पर ममताजी व्यंग्य करती हैं। कुछ लोग अच्छी नौकरी न मिलने के कारण साहित्य को एक नौकरी के रूप में मानते हैं। ऐसी स्थिति में साहित्य सिर्फ अर्थोपार्जन का माध्यम बन जाता है। "ऐसे में राजेश को याद आया प्रत्यूष द्विवेदी जो कॉलेज के ज़माने से उसका साथी था। वह कोई स्थापित लेखक तो नहीं बन पाया लेकिन उसने जीवन के कई वर्ष साहित्य सेवा में बिता दिये। आजकल के कई दिग्गज रचनाकारों की प्रारंभिक कहानियों का सलाहकार और सुधारक वही था। वह अपना वक्त इस तरह साहित्य को सौंपता कि तमाम अच्छी नौकरियों के लिए वह ओवरएज हो गया।"[1] कुछ लोग तो साहित्य को इस प्रकार आजीविका का मार्ग मानते हैं तो कुछ इसे एक स्टाटस सिम्बल मानते हैं। संगीत, पेंटिंग आदि सीखने की तरह समय बिताने का या समाज में सम्मान मिलने के एक साधन के रूप में वे साहित्य सृजन को मानते हैं। "उसने मुँह बिचका कर कहा, "आजकल अफ्सरों की बीवियों में यह नया चोचला चला है, लेखिका बनने का। पहले लड़कियाँ संगीत सीखती थी, पेंटिंग करती थी, आजकल कलम के पीछे पड़ गई हैं।' ....राजेश बोला, 'साहित्य में लम्बी साधना करनी पडती है।' 'लम्बी साधना वालों का जमाना लद गया। अब झटपट लेखन होता है।"[2] दरअसल

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 86
2. वही - पृ. 87

साहित्य जगत् में पदार्पण करने के लिए लम्बी साधना करनी पडती है। लेकिन आजकल के ऐसी साहित्यिक ड्रेइनिंग कक्षाएँ साहित्यकारों और साहित्यिक रचनाओं की इज्जत एवं महत्ता को नष्ट कराती हैं।

कभी-कभी कुछ लोग अपने उत्तरदायित्वों से बच पाने के लिए साहित्यकार बन जाते हैं। 'कवि मोहन' में मोहन के पिता उसे दूकान की ज़िम्मेदारी सौंप देता है तो वह घोषणा करता है कि साहित्य है उसका रास्ता। क्योंकि घर के उत्तरदायित्व को स्वीकार करने के लिए वह तैयार नहीं है। "इसी एक क्षण में उसने तय किया कि अब से कविता लिखना ही उसका धर्म और कर्म होगा, वह अपनी प्रतिभा बाप की दूकान पर आटा-चावल तोलने में नष्ट नहीं करेगा।"[1] मोहन के मन में साहित्यकार बनने का अर्थ है अपने को प्रतिष्ठित और कीर्तिमान बनाना, ज़ोरदार तालियाँ मिलना, पैसा कमाना, फिल्म के निर्माता को अपने पीछे भगाना आदि। मोहन साहित्यकारों को मिले लाभों पर दृष्टि रखकर जीता है। उसके सपनों को ममताजी इन शब्दों में स्पष्ट करती हैं "एक दिन वह मशहूर हो जाएगा। वह कवि सम्मेलनों में तालियों की गड़गड़ाहट के बीच कविता पाठ किया करेगा। उसकी रचनाएँ रेडियो पर सुनने के लिए चौराहों पर भीड़ लग जाया करेगी। संपादक उसके सामने पानी भरेंगे। फिल्म निर्माता उसके पीछे दौड़ेंगे। चमकदार लड़कियों से घिरा वह और भी जानदार कविताएँ लिखा करेगा।"[2] वह समाज को सुधारने के बजाय अपने को विख्यात बनाकर रूचार का एक मशाल बनने की कोशिश करता

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 300
2. वही

है। मोहन साहित्य को सांप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे की तरह मानता है। अर्थात मोहन प्रसिद्धि और धन चाहता है, पर काम करना नहीं चाहता है। इसलिए मोहन साहित्य को जीने का एक आसान चरण मानता है।

पहले के ज़मानों में साहित्यकार को महत्वपूर्ण स्थान मिलता था। लेकिन आज के साहित्यकारों के स्वार्थभरी और गर्वभरी प्रवृत्तियाँ इनका महत्व को नष्ट करती हैं। ये प्रवृत्तियाँ अन्य लोगों के मन में साहित्यकारों के प्रति नीरस का भाव उत्पन्न कराती है। 'नयी दुनिया' की पूर्वा साहित्य सृजन को गौरव की दृष्टि से देखती है। पूर्वा लिखने की चपेट में आने पर एक नयी दुनिया का अनुभव करने लगी। उसकी राय में साहित्य, ज़िन्दगी का ही 'एनसाइक्लोपीडिया' है। मज़दूर, किसान आदि से लेकर पूरी दुनिया को समझने के साथ खुद अपने को भी सृजन के आनन्द से अभिभूत लगती है। लेकिन घरवाले पूर्वा के जीवन को सफल नहीं मानते हैं क्योंकि उनकी राय में कहानियाँ या कविताएँ लिखना समय नष्ट करने का एक रास्ता मात्र है। "बल्कि जब घर के लोगों को पता चला कि पूर्वा आजकल कहानियाँ लिखने लगी है, उनकी उससे रही सही उम्मीदें भी खत्म हो गई। परिवार को इसका थोडा सा अंदेशा और अन्दाज़ था कि समाज में साहित्यकारों का हश्र क्या होता है, वे यों ही गिरते पड़ते लिखते रखते हैं, फकीर की हैसियत से ज़िन्दगी बसर करते हैं और अंत में एक रोज़ पीले पडकर झर जाते हैं, कोई दिल के दौरे से, कोई तपेदिक से, कोई कमज़ोरी से। परिवार का ख्याल था कि लेखन इन सब बीमारियों को बढ़ाता है। पिता अक्सर दुःखी होकर पूर्वा से कहते, 'तुझे क्या फिक्र

है मुझे बता, किस बात को लेकर घुलती रहती है दिन रात'।"[1] पूर्वा ने अपने घरवालों को साहित्य-सृजन की अनुभूति का एहसास कराने की कोशिश की है लेकिन वे तैयार नहीं है। फिर भी पूर्वा मन ही मन खुश और संतृप्त है।

साहित्य-सृजन भी आज एक धंधा बन गया है। प्रकाशकों से जुड़कर कुछ आलोचकों और साहित्यकार साहित्यिक क्षेत्र को अपने कब्जे में सिमटते हैं। इसलिए कभी-कभी सच्चे साहित्य अंधेरे में पड जाते हैं, और कुछ रचनाएँ सिर्फ नाम के बल पर चर्चित भी बन जाती है। आज की सच्चाई तो यह है कि यदि ऐसे कूटनीतिज्ञों के साथ हाथ न मिलाते हैं तो साहित्यकार का आर्थिक स्तर बिलकुल बिगड़ जाता है। 'वसंत सिर्फ एक तारीख' नामक कहानी की नायिका चंदा का जीवन साहित्य के लिए समर्पित था। लेकिन परिवार के बोझ ने उसे साहित्य जगत् को भूलकर अन्य नौकरी ढूढने के लिए मज़बूत बनाया। उसकी राय में साहित्यकार बनाना बेरोज़गार बनाने के समान है। "दरअसल हम लेखन को समर्पित दम्पती थे। सारी दोपहर हम कलम घसीटते थे, शामें कॉफी हाउस में बीतती थीं। सुबह हम अखबारों के दफ्तरों में ताक-झाँक करते पाये जाते थे। ये सब अपने आप में पूर्णकालिक काम थे। फिर भी समाज के मान्य अर्थों में हम बेरोज़गार थे। हर महीना जब बीत जाता, हमें हल्का अचम्भा और गहरी खुशी होती कि हम भूख, महँगाई, बीमारी और दुर्घटनाओं को चकमा देते हुए एक और महीना ज़िन्दा रह लिये।"[2] इसलिए चंदा नौकरी के लिए चले जाने पर बच्चों को सांत्वना देकर कहा

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 314
2. वही - पृ. 210

कि "बेटे, आज अम्मा को जाने दो, हो सकता है जब अम्मा लौटे तो उसकी जेब रकम से भारी हो।"[1] आर्थिक विषमताएँ कभी-कभी साहित्यकारों की ईमानदारी पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं और कभी सम्मान और प्रशस्ती का आग्रह भी साहित्य के मूल्य को कम करा देते हैं।

2.3.10.2 चिकित्सा के क्षेत्र में

भारतीय शास्त्रों में चिकित्सक को 'दूसरा ईश्वर' कहा गया है। क्योंकि चिकित्सक हमेशा मानवीय जीवन के पक्ष में रहता है। लेकिन आज की वास्तविकता यह है कि चिकित्सा विज्ञान की सारी उपलब्धियाँ अन्य विज्ञानों की तरह मनुष्य विरोधी बन गयी हैं। क्योंकि आज चिकित्सा क्षेत्र भी एक धंधा है। किसी न किसी तरह मनुष्य जीवन की सुरक्षा कायम रखने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध डॉक्टर और नर्स आज अपनी जेब भरने के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचते हैं। मल्टि स्पेशल अस्पताल बनाकर मनुष्य को स्वस्थ नहीं, हमेशा के लिए रोगी बनाने का कार्य आज चलता है। पैसे के आधार पर रोगी को चिकित्सा देने की दयनीय स्थिति आज मौजूद है। वर्तमान स्थिति पर चेतावनी देकर जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव ने इस प्रकार लिखा है "चिकित्सा विज्ञान और तकनीक से जुड़े हुए लोगों की संवेदना मृत्यु के बोध से टकराते-टकराते, तोड़ते-तोड़ते क्रमशः जड़ हो जाती है। रुदन-कराह-पीडा और मृत्यु उनके लिए जीवन का सत्य है।"[2] मरीजों की आशा है कि

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 211
2. जगदीश प्रसाद श्रीवास्तव - शोर के विरुद्ध सृजन - संपादक जितेन्द्र श्रीवास्तव - पृ. 32

अस्पताल से मुस्कुराते वापस जाना। लेकिन आज की स्थिति बिलकुल बदल गयी है। ममताजी ने 'पर्याय नहीं' नामक कहानी में दो डॉक्टरों को हमारे सामने प्रस्तुत किया है एक तो 'डॉक्टर कैसे हों' का नमूना है तो दूसरा 'एक डॉक्टर कैसे न हों' का दृष्टांत है। इस कहानी के डॉक्टर सुनील टंडन अपना काम एक सामूहिक सेवा के रूप में मानता है। इसलिए उसने शहर के मल्टि स्पेशलिटि अस्पतालों को छोडकर गाँव में एक छोटा सा अस्पताल शुरू किया और अधिक फीस न लेकर इलाज भी किया। डॉक्टर सुनील टंडन का विचार और मानसिकता ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - "डॉक्टर दरअसल, हृदय से थोड़ा कलाकार, थोडा नेता और थोड़ा समाज सुधारक था। साथ ही वह भावुक भी था। वह तुरंत रोगी की जगह अपने को रखकर सोचता और पाता कि समाज में सिर्फ आर्थिक असमानता नहीं, हर तरह की, हर स्तर पर असमानता है। इसी असमानता से चलते मनुष्य इतना दीन हीन और दुःखी है। डॉक्टर हर एक के दुःख से उद्वेलित रहता। मरीज का स्वस्थ होना उसकी अपनी प्रतिष्ठा का भी प्रश्न है।"[1] लेकिन उसकी पत्नी नीना, वह भी डॉक्टर है, जो इसके बिल्कुल विपरीत है। नीना इलाज करने को सिर्फ नौकरी मानती है। उसकी राय में गाँव के इस छोटे अस्पताल को छोड़कर शहर के किसी मल्टि स्पेश्यालिटि हॉस्पिटल में काम करने पर फायदा होगा। "कई बार नीना को झुँझलाहट होती कि कैसे इतना चुस्त-दुरुस्त सा दिखनेवाला उसका पति महज आदर्शवाद की झख में अपने दिवंगत माता-पिता का संचित धन इस नर्सिंग होम में झोंकता जा रहा है। उसके बैच के अन्य कामयाब छात्र बड़े शहरों

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 196

में किसी न किसी अच्छे अस्पताल या मेडिकल कॉलेज से संबद्ध हो गए। इधर डॉ. सुनील ने इस ग्रामीण क्षेत्र में अपना नर्सिंग होम खोला और पहले ही हफ्ते में बाहर तख्ती लटका दी - 'निः शुल्क सलाह'। जी जल गया डॉ. नीना का। उसने तुरंत पति से कहा, 'तख्ती के नीचे अपना नाम लिखवाओ। यह धर्माचार सिर्फ तुम्हारा होगा। मैं तो सशुल्क सलाह दूँगी।"[1] नीना की इस मानसिकता के कारण वह बस एक्सीडेंट के मरीजों को इलाज देने के पहले पेमेंट करने का आदेश देती है। नीना डरती है कि यदि ये लोग बंधु जनों के आने के पहले मर गये या अस्पताल छोडे गये तो दवा का दाम कौन पेश करेगा। इसलिए नीना घायल हुए लोगों को बिना उपचार करके वापस भेजने की कोशिश करती है। यह देखकर दुःखी होकर डॉ. सुनील टंडन नीना को याद कराती है कि डॉक्टर की उपाधि स्वीकार करते समय मानव सेवा का संकल्प लेकर हरएक डॉक्टर सर्वीस में आता है और इसलिए ही लोग हमें डॉक्टर को ईश्वर की प्रतिनिधि मानते हैं।

'इलाज' कहानी में अभीधा लेखन कार्य में अधिक समय मग्न है। इसी के कारण उसकी आँखें गीली हो जाती है और उनसे पानी भी गिरता है। अभीधा इसका इलाज के लिए अस्पताल में जाती है। डॉक्टर कई टेस्ट कराकर उसे अस्पताल में दाख़िला करने की कोशिश करता है। अभीधा से डॉक्टर पूरी बात जानने के बजाय अपनी इच्छा की तरह टेस्ट कराने की कोशिश करता है तो अभीधा उसका विरोध करती है। "अभिधा ने अपनी दोनों आँखों पर हाथ रखते हुए पूछा, 'मैं जानना चाहती हूँ आप क्या करने जा रहे हैं।'

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 195

'मैं आपको जवाब देना ज़रूरी नहीं समझता।'

'जानना मेरा अधिकार है।'

'लुक मेडम', डॉक्टर ने दीवार पर लगे एक चित्र की ओर ऊँगली की 'आँख की ग्लांड से हम तरल पदार्थ निकाल कर जाँच करेंगे कि वह संक्रमित द्रव है या आँसू या कुछ और?'

'नहीं, वह संक्रमित द्रव नहीं है, उसमें से कोई बू नहीं आती।'

'यह आप नहीं, हमारी लैब तय करेगी, तब आपका उपचार आरंभ होगा।'

...............अभिधा ने कहा 'सॉरी डॉक्टर, मुझे इलाज नहीं करवाना'।"[1]

आजकल अस्पताल में बहुत ही छोटे-मोटे बीमारियों से आनेवाले मरीजों को डॉक्टरों द्वारा जबरदस्त परीक्षण-निरीक्षण करने का सुझाव देते हैं। क्योंकि इन भ्रष्टाचारी डॉक्टरों के मुख्य लक्ष्य असल में बीमारी का जाँच करना नहीं बल्कि किसी न किसी प्रकार मरीजों से पैसा लूटकर अपना जेब भरना है।

सरकारी अस्पतालों के आनाकानी या संवेदनहीनता इससे भी क्रूर है। आम जनता को भरोसा और आशा देने के बजाय इधर-उधर भागाकर उन्हें निराशग्रस्त बनाते हैं। 'खुशकिस्मत' नामक कहानी में ममताजी सरकारी अस्पतालों की लापरवाही और असावधान का स्पष्ट उदाहरण हमारे सामने प्रस्तुत करती है। सिर पर छब्बीस टांके लगने की आहत से आनेवाले युवक को डॉक्टर घंटों बाद

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्‌टी - पृ. 42, 43

इलाज करता है। इसका चित्रण ममताजी इस कहानी में करती है। डॉक्टर और नर्स यह सुझाव देकर चलते हैं कि थाने में ले जाकर प्रथम सूचना रपट लिखकर उसकी नकल अस्पताल में पहूँचाना नहीं तो घायल कितने भी बडे हों उसे हम न देखेंगे, न छुएगे। "अस्पताल में फैली गंदगी, लापरवाही और लीचडपन का वहाँ के डॉक्टरों की अनुपस्थिति, नर्सों के अनमनेपन और सहायकों की कामचोरी से अद्‌भुत सामंजस्य था............ डॉक्टर की लल्लो-चप्पो करने का कोई नतीजा नहीं निकला था। उसने गर्म चाय पीते और दांतों में दबाकर बिस्कुट तोडते हुए ठंडे लहजे में कहा कि वह किसी मरीज़ के लिए अपने नियम नहीं तोड़ सकता।"[1] अपनी नौकरी न करने के लिए कानून के लूप हॉलस की पीछे भागते हैं आज के सरकारी अस्पताल के कर्मचारी लोग।

आज तो तकनीक का युग है। इसके अनुसार चिकित्सा विज्ञान भी आगे बढ़ते जा रहे हैं। नए-नए उपकरणों के सहारे लोगों को खुद अपना शरीर और स्वास्थ्य का अवलोकन कर सकते हैं। स्वपरीक्षण करने के कई उपकरण आज मार्केट में उपलब्ध हैं। लेकिन ये उपकरण वास्तव में यह याद दिलाते हैं कि शरीर में बीमारी आने की संभावना तो अधिक है या बीमारी के कई लक्षण होते हैं। बीमारी और मृत्यु की चिंता हमारे दिमाग में भरने के लिए ये सामग्रियाँ सफल हो जाती हैं। इसलिए ममताजी ने 'बाज़ार' नामक कहानी में इस प्रकार लिखा है "दरअसल स्वपरीक्षणवाले सभी उपकरणों को उठाकर समुद्र में फेंक देना चाहिए।

1. ममता कालिया - खुशक़िस्मत - पृ. 23

ये उपकरण बदतमीज़ किस्म के सच बोलते हैं जो सीधे जाकर हमारे मनोविज्ञान में घुस जाते हैं। ये हमें जीवन के लिए नहीं, मृत्यु के लिए तैयार करते हैं।"[1] ये स्वपरीक्षणवाले उपकरण लोगों के मन में बीमारियों और मौत के बारे में भय पैदा कराते हैं। यह भय लोगों को अस्पताल से जोड देता है। वास्तव में अस्पतालवालों और दवा कम्पनियाँ इसका लाभ उठाती हैं। आम जनता उनकी गूढनीति का शिकार होकर अपना धन और स्वास्थ्य नष्ट करती रहती हैं।

2.3.10.3 शिक्षा के क्षेत्र में

भारतीय प्रार्थना में अध्यापक का श्रेष्ठ स्थान इस तरह व्यक्त किया है -

"गुरुब्रह्मा गुरु र्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः।"[2]

माने, गुरु ईश्वर के बराबर ही है। प्रसिद्ध दार्शनिक राधाकृष्ण ने अध्यापक के महत्व को दर्शाते हुए कहा - "समाज में अध्यापक का स्थान सशक्त एवं महत्वपूर्ण है। वह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक बौद्धिक परंपराओं एवं कौशल संचालित करने में केंद्रीय भूमिका निभाता है और सभ्यता को प्रज्वलित रखने में सहायता प्रदान करता है।"[3] अर्थात् अध्यापक सिर्फ बच्चों का विकास नहीं पूरे देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। लेकिन आज अध्यापन कार्य को सिर्फ

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 88
2. संपादक - महादेवशास्त्री जोशी - भारतीय संस्कृति कोश - पृ. 81
3. भाटिया एम.एम. और नारंग सी के - आधुनिक हिंदी शिक्षण विधियाँ - पृ. 118

एक काम के रूप में माननेवाली एक पीढ़ी का रूपायन हुआ है। यह हमारी आगामी पीढ़ी का ही नही, हमारी परंपरा, सभ्यता, प्रगति और पूरे देश के लिए विनाशकारक है। आज शिक्षा का मतलब फीस, ट्यूशन तक सीमित है। आज विद्यार्थी, विद्यार्थी नहीं है, वह केवल परीक्षार्थी है। शिक्षा के क्षेत्र में भी भ्रष्टाचार बढ़ गया है। आज कई अध्यापक अपना महत्व और स्थान भूलकर समाज और छात्र दोनों का शोषण करते हैं। इसके परिणाम स्वरूप अध्यापकों के प्रति समाज का नज़रिया बदल गया है। दो-तीन अध्यापकों की गलती की सज़ा तमाम अध्यापक बँधुओं को भोगना पडता है। वास्तव में ऐसे अध्यापकों के द्वारा हमारी अगली पीढ़ी और देश दोनों का भविष्य नष्ट हो रहा है। ममताजी ने 'खुशक़िस्मत' नामक कहानी में ऐसे अध्यापक वर्ग पर इशारा किया है। इसमें अपनी बहन के अघोषित परीक्षाफल के कारण विवेक सिंह अधिक परेशान है। उसे आगे पढ़ाने की इच्छा के कारण विवेक ने प्रिंसिपल के दफ्तर में कई बार आकर हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि इसकी साल खराब न जाए। एक बार विवेक ने प्रिंसिपल के निषेधात्मक जबावों के बदले पेपरवेट उठाकर मार कर प्रतिशोध किया। हम अखबारें में अध्यापकों पर बढ़ते हुए आक्रमणों के बारे में रोज़ पढ़ते हैं। ममताजी इस कहानी के द्वारा ऐसी खबरों के पीछे के सत्य को ढूढ़ने की कोशिश करती हैं। यदि अध्यापक स्वयं अपने उत्तरदायित्व और स्थान को समझ न पाएँगे तो युवापीढ़ी के गुमराह होने का दायित्व भी वे उठाना पडेगा।

अध्यापकों की उत्तरदायित्व हीनता के कारण आम जनता के मन में इनके प्रति इज्जत का भाव नष्ट हो रहा हैं। लोग इन्हें आराम कर तनखा काटनेवाले

समझते हैं। वे गुरु के पद को सिर्फ एक कर्मचारी के पद तक पहूँचाते हैं। आज लोग इसलिए अध्यापक बनाना चाहते हैं कि सिर्फ धन कमाने के लिए। पहले तो अध्यापन कार्य समाज सेवा है तो अभी यह आराम कर संपत्ति कमाने का रास्ता है। ममता कालिया 'अपने शहर की बत्तियाँ' नामक कहानी में अध्यापन वृत्ति पर लोग क्या सोचते हैं, इसका ब्योरा देती हैं। अपने सपनों की नौकरी के बारे में पूछने पर कहानी का पात्र पंकज अध्यापन कार्य को चुनता है। इसके कारण के रूप में वह बताता है "बडे से कालेज का फाटक, जहाँ छात्र हड़ताल पर हैं और अध्यापक स्टाफ रूप में आराम कुर्सियों पर पैर फैलाए आराम फर्मा रहे हैं। न पढ़ने से मतलब न पढ़ाने से ताल्लुक, चैन से तनखा काट रहे हैं हर महीने।"[1] पंकज की ऐसी मानसिकता या सोच का कारण ज़रूर उसकी पहचान के अध्यापक ही हैं। इसलिए लोगों की चिंताधारा या सोच पर गलतफहमी करने की ज़रूरत नहीं है।

कभी-कभी अध्यापक अपनी स्वार्थ पूर्ति के लिए छात्रों को इस्तेमाल करते हैं और उनके भविष्य को बरबाद करते हैं। 'नायक' नामक कहानी का डॉ. मोहन दीक्षित इसका सशक्त उदाहरण है। उन्होंने अपने आदर्शों के प्रचार के लिए छात्रों को अपना खिलौना बनाया है। नये समाज का निर्माण या एक बहत्तर दुनिया बनाने के लिए संघर्ष करने की आवश्यकता के बारे में कहकर उन्होंने छात्रों पर गहरा असर डाला। उन्होंने छात्रों में बगावत का इतना मीठा ज़हर फैला दिया कि छात्र घर और पढ़ाई को छोड़कर संघर्ष के रास्ता में निकल आये। उन्होंने छात्रों को प्रभावित

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 319

कराकर कॉलेज के अधिकारियों को घेराव किया और इस संघर्ष के नाम पर राजनीतिक क्षेत्र में भी अपना नाम कायम रखा। सच्चाई तो यह है कि इससे नुकसान सिर्फ छात्रों को है। ये सब देखकर सहकर्मी अध्यापकों का मन जल उठा और छात्रों को सच्चाई से अवगत कराने की कोशिश भी की। "अगर वह इतने बडे बागी होते तो नौकरी के बन्धन से अब तक मुक्त हो जाते। तुम जानते हो हर नौकरी की अपनी दैनिकता होती है और अनुशासन। वे उसके साथ समझौता करते है। यानी एक चौखटा जो उन्हें सूट करता है उसे मंजूर करते हैं, जो उन्हें सूट नहीं करता, उसे तोडने के लिए छात्रों को आगे कर देते हैं।"[1] अन्य अध्यापकों का यह शब्द और सच्चाई को समझने या मानने के लिए छात्र तैयार नहीं थे क्योंकि डॉ. मोहन दीक्षित के प्रभाव में छात्र तो पूर्ण रूप से पड गये थे।

'मुन्नी' नामक कहानी में धन और अधिकार को प्रधानता देकर छात्रों पर भेदभाव का नज़रिया रखनेवाले अध्यापकों पर प्रकाश डाला गया है। इसमें नये स्कूल में आने के कुछ दिनों के अंतर ही मुन्नी समझ पायी कि अच्छे अंक या प्रतिभा से कोई बात नहीं है, अध्यापकों से सराहना मिलने के लिए केवल एक ही शर्त है अमीर माँ-बाप की संतान होना। उसी प्रकार गलतियाँ की सज़ा भी सिर्फ गरीब बच्चों को भुगतनी पडती है। इन सबसे आहत होकर मुन्नी ने तय किया कि "मुझे ऐसे स्कूल में पढ़ना भी नहीं है, जहाँ इतनी बेइन्साफी हो।"[2] मुन्नी जानती थी कि ऐसा निर्णय उसकी शिक्षा में कई बाधाएँ डालेंगी फिर भी वह अपने तरीके से

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 84
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 439

प्रतिशोध करती है। स्कूल छोडकर वह ऐसे भेदभावों पर अपना विरोध प्रकट करती हैं।

ऐसे अध्यापकों के बीच आज भी कुछ अध्यापक बाकी हैं, जो अपने उत्तरदायित्वों को समझकर अगली पीढ़ी को पथ दिखाते हैं। ऐसे एक अध्यापक का चित्रण ममताजी 'एक रंगकर्मी की उदासी' नामक कहानी के द्वारा हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं। डॉ. मिश्रजी रिटायर होने के बाद भी अपने छात्रों के भविष्य के बारे में चिंतित थे। क्योंकि मिश्रजी की रिटायरमेंट के चार साल के बाद भी उस पद में कोई नियुक्ति नहीं हुई है। इसलिए मिश्रजी खुद विश्वविद्यालय में जाकर क्लास लेते हैं। कुछ लोग इस पर हँसने लगे तो मिश्रजी जवाब देते हैं "ऐसा है मैं न जाऊँ तो बच्चों का कोर्स कैसे पूरा होगा। मूर्खों ने मुझे रिटायर कर दिया और मेरी जगह कोई अगला रखा ही नहीं। मेरे विभाग में सात पद पहले से ख़ाली पडे हैं। यह बच्चों का कसूर नहीं है कि वे बॉंटनी में एम.एससी कर लेते हैं पर चार पादप भी नहीं पहचानते। जो टीचर हैं बस वाइवा और एक्ज़ामिनरशिप के जुगाड़ में लगे रहते हैं। फिर हम कहते हैं बच्चे कोचिंग क्लास में क्यों जाते हैं।"[1] अपनी तनख़्वाह को आधार न मानकर छात्रों के लिए अपना समय और ज़िन्दगी देनेवाला ही अच्छा अध्यापक बन जाता है। ऐसे अध्यापक ही हमारे देश और संस्कृति की सुरक्षा और प्रतिष्ठा कायम रखने में महान योगदान देते हैं।

---

1. ममता कालिया - प्रतिनिधि कहानियाँ - पृ. 131

2.4 निष्कर्ष

समकालीन साहित्य में वर्तमान समय की सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेश का चित्रण बहुत गहराई से देखा जा सकता है। समकालीन साहित्यकार ममता कालिया अपने आसपास के वातावरण को सूक्ष्म और गहरी दृष्टि से देख-परख कर सृजन करने में पूर्ण रूप से सफल हैं। इसलिए हमारे समाज का असली चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करने में वे हिचकती भी नहीं है। अर्थ पर आधारित आज की सामाजिक व्यवस्था में मौजूद बाज़ार की तानाशाही, उपभोगवादी संस्कृति, विज्ञापन का प्रभाव, संबन्धों में आये परिवर्तन, जड़ता, अपनी ओर सिमटने की प्रवृत्ति, उत्तरदायित्वहीनता आदि को अपनी कहानियों का विषय बनाकर पाठकों को वर्तमान परिस्थितियों और उपभोग संस्कृति के दुष्परिणामों के प्रति जनता को जागृत बनाने का कार्य ममताजी करती हैं

❖❖❖

तीसरा अध्याय

ममता कालिया की कहानियाँ : आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ

तीसरा अध्याय
ममता कालिया की कहानियाँ : आर्थिक और राजनीतिक संदर्भ

3.0 प्रस्तावना

आज पूरी दुनिया सिर्फ एक ही धुरी पर चलती है, वह है अर्थ। अर्थ का सीधा संबन्ध धन, पैसा, संपत्ति से है। मौजूदा संदर्भ भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था का है। भूमण्डलीकरण का दो पक्ष है - आर्थिक और सांस्कृतिक। सांस्कृतिक पक्ष पर चर्चा पिछले अध्याय में की गयी है। इस अध्याय में भूमण्डलीकरण के आर्थिक पक्ष, जो बाज़ारवाद से जुडा हुआ है, इस पर चर्चा की जाएगी। भूमण्डलीकरण की इस अर्थव्यवस्था ने अर्थ को आजकल के सबसे मूल्यवान वस्तु के रूप में बनाया, जिसके सामने मनुष्य भी हीनतम बन गया है। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था भी इस अर्थ की धुरी में फँस गयी है। यह भ्रम समाज में फैल रहा है कि समाज और देश की सेवा करनेवाले राजनीतिज्ञ भी अपने मूलभूत लक्ष्य से हटकर धन कमाने के रास्ते के रूप में राजनीति को मानते हैं। इसके कारण सब कहीं भ्रष्टाचार, अन्याय, अमानवीयता का बोलबाला हो रहा है। प्रस्तुत अध्याय में भारत की नई अर्थनीति से उत्पन्न भूमण्डलीकृत आर्थिक व्यवस्था और अर्थ की चंगुल में फँस गये राजनीतिक क्षेत्र की असलियत को ममताजी ने अपनी कहानियों में किस प्रकार व्यक्त किया है,

इस पर विचार किया जाएगा। इससे पहले यह देखना वाजिब होगा कि भारत का नयी आर्थिक परिस्थिति क्या है।

3.1 भारत की नई आर्थिक स्थिति

भारत लगभग दो शताब्दियों तक अंग्रेज़ों से शासित था। अंग्रेज़ों ने अपने लाभ के लिए भारत को पूरी तरह लूट-पाट किया। इसने भारत को पूरी तरह गरीबी में धकेल दिया, अर्थात् 1947 में जब अंग्रेज़ ने भारत छोड रहे थे तब स्वतंत्रता के अतिरिक्त गर्व करने के लिए हमारे पास कुछ भी नहीं था। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत सरकार के सामने चुनौतियों का ढेर था। गरीबी, भोजन की कमी, मुद्रा स्फीति की समस्या, निरक्षरता, स्वास्थ्य चिकिल्सा की कमी, आधारित संरचना की कमी आदि ने भारत की स्थिति को और भी समस्यापूर्ण बना दिया। इन समस्याओं का हल करने के लिए और आर्थिक स्थिति का पुनर्निर्माण के लिए भारत सरकार के सामने एक ही रास्ता था, वह है योजना पद्धति। आर्थिक नियोजन में सरकार ने सबसे पहले भारतीय अर्थव्यवस्था की सुरक्षा पर खतरा उठानेवाली सारी समस्याओं की सूचि बनायी और इस सूचि के अनुसार तुरन्त समाधान आवश्यक समस्याओं पर पहले दृष्टि रखी है। पंचवर्षीय योजना पद्धति इसका पहला कदम थी। भारत साम्राज्यवादी शक्तियों से मुक्त करने पर स्वतंत्र भारत के पहला प्रधानमंत्रि जवहरलाल नेहरू ने देश को आर्थिक प्रगति के पथ पर लाने के लिए इन पद्धतियों का प्रस्ताव रखा। गरीबी, असमानता, कृषि में निम्न उत्पादकता, औद्योगिक तथा आधारित संरचना की कमी आदि समस्याओं का दीर्घकालीन हल

उसका लक्ष्य था। इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए नेहरूजी ने 1950 में योजना आयोग की स्थापना की और 1951 में भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना का प्रस्ताव रखा। इसके पाँच वर्ष बाद इस योजना का पुनर्मूल्यांकन कर अगली पंचवर्षीय योजना का प्रबन्ध किया जाता है। इस महान कदम में जवहरलाल नेहरू के साथ वी.सी. महलानोबीस, बी.आर. गाडगिल, बी.के.आर.वी. राव आदि ने अपना विशेष योगदान दिया। आर्थिक समृद्धि, रोज़गार में वृद्धि, आय की असमानताओं की कमी, गरीबी की कमी, अर्थव्यवस्था का आधुनिकीकरण आदि आर्थिक नियोजन का लक्ष्य था।

प्रधानमंत्री जवहरलाल नेहरू ने औद्योगीकरण के आधार पर भारत की आर्थिक नीति को बढ़ावा देने की कोशिश की और भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था की वकालत भी की। उनकी राय में बुनियादी और बड़े-बड़े उद्योग की स्थापना भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास का आधार है। इसलिए भारत की दूसरी पंचवर्षीय योजना और 1956 के औद्योगिक नीति संकल्प ने राष्ट्रीय औद्योगीकरण को पूरा करने के लिए सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यमों के विकास पर ज़ोर दिया। भारतीय अर्थव्यवस्था के मुख्य क्षेत्रों के विकास में तेज़ी लाने के लक्ष्य से सार्वजनिक उपक्रमों की स्थापना की। इसके साथ इंदिरा गाँधी की सरकार ने 1969 में भारत के सबसे बड़े चौदह निजी बैंकों का राष्ट्रीकरण किया और 1980 में अतिरिक्त छह बैंक का। 1991 तक के भारतीय आर्थिक विकास का स्वरूप, निजी उद्यम पर रोक या संयम लगाई गई भारत की औद्योगिक नीति है।

भारतीय अर्थव्यवस्था के प्रति नवउदारवादियों का मानना यह है कि भारत के नियंत्रित और नियोजित अर्थव्यवस्था में आम आदमी को उन्नति नहीं मिली है। इसके कारण के रूप में वे बताते हैं कि विश्व बाज़ार में अपने को सही रूप में प्रस्तुत करने की असफलता, अंतराष्ट्रीय निवेशीकरण का अभाव, विदेशी कर्ज, मुद्रा स्फीति के दबाव, सेवा और वस्तुओं की गुणवत्ता की कमी आदि। भारत में 1975-90 तक का समय राजनीतिक अस्थिरता का दौर था। राजीवगाँधी-हत्या, बार-बार के चुनाव, केन्द्र सरकार का जल्दी-जल्दी गिरना आदि ने देश की आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति में परिवर्तन के लिए विवश बना दिया। इन सबके परिणामस्वरूप सार्वजनिक क्षेत्रों में उत्पन्न दोष और असफलता देखकर भारतीय सरकार 1991 में नई अर्थनीति का प्रस्ताव लाई है। 1991 से 1996 तक पी.वी. नरसिंह राव की सरकार थी। नरसिंह राव सरकार ने भारतीय अर्थव्यवस्था की पुनर्रचना का जबरदस्त कदम उठाया। इसके अनुसार भारतीय सरकार ने कम वित्तीय प्रदर्शन और दक्षता का सामने करनेवाली कम्पनियों को पूँजी जुटाने के लिए कई सार्वजनिक उपक्रमों में निजीकरण करना शुरू किया। भारत के पूर्व वित्तमंत्रि श्री. पी. चिदम्बरन का वक्तव्य है "हमारे देश में एक ऐसी वित्तीय प्रणाली स्थापित करने की ज़रूरत है जो सक्षम होने के साथ-साथ किसी भी चुनौती का हल तुरन्त निकाल सकती हो। न तो हम बेलगाम पूँजीवादी अर्थव्यवस्था चाहते हैं और न साम्यवादी अर्थव्यवस्था। हम बेहत्तर नियमन पर आधारित वित्तीय प्रणाली स्थापित करना चाहते हैं।"[1]

1. पी.वी. सजीव - वैश्वीकरण के युग में भारत, भूमिका से

सार्वजनिक क्षेत्र के दोषों और असफलताओं को देखकर भारत सरकार ने 1991 में जिस नई अर्थनीति का प्रस्ताव किया, वह भारतीय समाज में गुणों के साथ दोष भी लायी। क्योंकि भारत जैसे विकासशील देशों द्वारा अपनाई गयी नई अर्थनीति नवऔपनिवेशिक शक्तियों द्वारा रचे गये आर्थिक शोषण का नया तरीका था। इसके लिए उन्होंने भूमण्डलीकरण, निजीकरण, उदारीकरण, बाज़ारीकरण जैसे औजारों के ज़रिए आर्थिक शोषण के लिए कूटनीति तैयार की। गाट, वर्ल्ड बैंक, International Monetary Fund, World Trade Organization आदि संगठनों की स्थापना कर नवसाम्राज्यवादी शक्तियों ने विकासशील और अविकसित देशों पर अपना कब्जा और अधिकार को और भी सशक्त बना दिया।

3.2 भूमण्डलीकरण

नवउपनिवेशवाद का सबसे प्रमुख और खतरनाक औजार है भूमण्डलीकरण। यह वास्तव में एक पश्चिमी अवधारणा है जो 20वीं शती के अंतिम शतक में सशक्त हुआ। विकसित देशों ने एक साथ मिलकर इसकी योजना की। विकासशील देशों और तीसरी दुनिया के देशों को आगे आ जाना, देशों के बीच की आर्थिक असमानता को मिटाना इसका लक्ष्य था। संपूर्ण विश्व को एक इकाई में लाने के उद्देश्य से ग्लोबल गाँव, विश्व मानव आदि धारणाएँ प्रस्तुत की। इसने राष्ट्रों की सीमा को पिघलने की कोशिश तो की गई। इसके बारे में प्रभा खेतान का वक्तव्य है "भूमण्डलीकरण वह प्रक्रिया है जो वित्त पूँजी के निवेश, उत्पादन और बाज़ार द्वारा राष्ट्रीय सीमाओं में ही वर्चस्वी नहीं, बल्कि राष्ट्रीय सीमा से भूमण्डलीय आधार पर निरंतर अपना प्रसार करना चाहती है। इसका निर्णय क्षेत्र सारी दुनिया

है। यह अपनी मुद्रा के कार्यक्षेत्र को निरंतर पुनः समायोजित करती है, किसी भी कम्पनी की फैक्टरी, ऑफीस और उसके कर्मचारी अधिक लाभ कमाने के लिए राष्ट्रीय सीमा के बाहर कहीं भी जाने को तैयार रहते हैं। इन भूमण्डलीय निगमों के प्रबन्धकों ने अपनी तकनीकी क्षमता के आधार पर नए अंतराष्ट्रीय संबन्धों का निर्णय किया है, जिससे उत्पादन एवं उपभोग की क्षमता बढ़ी है। आज पूँजी और सूचना की राष्ट्रीय सीमाओं की सहजता से आर-पार आना-जाना संभव होने से जो नए नेटवर्क बने हैं, उन्होंने पूँजी, सेवा और वस्तु की अंताराष्ट्रीयता को बढ़वा दिया है।"[1] इसलिए हमें यह स्वीकार करना पडता है कि विज्ञान और तकनीकी की प्रगति और भूमण्डलीकरण के माहौल ने दुनिया की दूरियों को मिटाया है। इसी दृष्टि से देखने पर या इस योजना की शुरुआती तौर पर यह पूर्ण रूप से सदुद्देश्य पूर्ण था।

लेकिन आगे चलने पर भूमण्डलीकरण की नीति में बदलाव आने लगा। विकसित देशों याने नवऔपनिवेशिक शक्तियों ने इसे पूरी दुनिया में अपना अधिकार फैलाने के रास्ते के रूप में बदल दिया। यह पूरी दुनिया को व्यापार की दृष्टि से देखते हैं। जल्दी से जल्दी और अधिक से अधिक आर्थिक लाभ कमाने की इस भागदौड़ में पर्यावरण की अनियंत्रित शोषण, अति-उत्पादन की प्रेरणा, सार्वजनिक क्षेत्रों और सेवाओं का वस्तुतीकरण, निजीकरण, सांस्कृतिक भिन्नताओं को नष्ट कराना, स्थानीय उद्योगों के बदले निर्यात उद्योगों को प्रोत्साहित करना जैसी कई बातें शामिल हुई हैं। व्यापार की दृष्टि पर संसार को परखने पर नवसाम्राज्यवादी

---

1. प्रभा खेतान - भूमण्डलीकरण : ब्रांड, संस्कृति और राष्ट्र - पृ. 15

शक्तियाँ अपने को लाभ न देनेवाले सभी वस्तुओं का नाश करती हैं। भूमण्डलीकरण की असलियत को व्यक्त करते हुए मैनेजर पाण्डेय ने इस प्रकार लिखा है, "पूँजीवाद को दिग्विजयी बनाना, सारी दुनिया का पश्चिमीकरण करना, जिसका वास्तविक अर्थ है अमेरिकीकरण। इसका परिणाम होगा मानव समाज में आर्थिक विषमता का विस्तार, प्रकृति तथा पर्यावरण का विनाश और हिंसा की संस्कृति का उत्तरोत्तर प्रसार, जो पूँजीवादी संस्कृति की अनिवार्य विशेषताएँ हैं।"[1] इसलिए बताना ही पडता है कि यह योजना अपने आरंभकालीन सदुद्देश्यों से पूर्ण रूप से हटकर स्वार्थों की पूर्ति का योजना बन गयी है। यह मानवीयता का भी घातक बन गयी है। प्रभा खेतान का वक्तव्य यहाँ समीचीन है - "विकासशील देश स्वयं से विकसित देशों के वर्चस्व की तुलना में कैसे खुद को बचाए और कैसे मध्यम वर्ग पर चलें, इस पर भी चर्चा ज़रूरी है। भूमण्डलीकरण तो वह बिजली है, जिससे आपका घर रोशन भी हो सकता है और आपके घर में आग भी लग सकती है।"[2] अर्थात् भूमण्डलीकरण की अवधारणा को हम ध्यान से संभालना चाहिए। क्योंकि हर योजना के पीछे औपनिवेशिक शक्तियाँ अपनी स्वार्थपूर्ति की एजेंडा छिपाती रखती हैं। उदाहरण के लिए विश्वग्राम की अवधारणा भूमण्डलीकरण की देन है। व्यापार या वाणिज्य के क्षेत्र में विश्व को एक इकाई में सिमटकर तीसरी दुनिया को लाभान्वित करना इसका लक्ष्य है। लेकिन बाद में क्या होता है कि नव साम्राज्यवादी शक्तियों ने अपनी इच्छाओं के अनुसार इन अवधारणाओं को सुधार कर संपूर्ण

---

1. मैनेजर पाण्डेय - आलोचना की सामाजिकता - पृ. 165
2. प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ - पृ. 24

देशों में व्यापार करने और व्यापारिक कारखानों को खोलना शुरू किया। यह अविकसित देशों पर अपना कब्जा स्थापित करने का एक रास्ता मात्र बन गया। इसके साथ मुक्त बाज़ार की परिकल्पनाओं के ज़रिए पूँजी के निवेशिकरण की प्रक्रिया को इसने सतत रखा है। यह विकासशील और अविकसित देशों के प्राकृतिक संसाधनों, कुटीर उद्योगों और बाज़ार के नाश का कारण बन गया। हर कहीं पूँजी का वर्चस्व स्थापित करने में और बाज़ार केन्द्रित दुनिया के रूपायन करने में भूमण्डलीकरण के कुछ खतरनाक घटकों का योगदान भी हुआ है। आगे इन पर चर्चा की जाएगी।

3.2.1 भूमण्डलीकरण के प्रमुख घटक

उदारीकरण, निजीकरण, नवउदारवाद आदि भूमण्डलीकरण के प्रमुख घटक है।

3.2.1.1 उदारीकरण

यह बाज़ार की शक्तियों को ज़्यादा स्वतंत्रता और मौका देनेवाली नई अर्थनीति है। राजकिशोर जी के अनुसार "वह पूरी सभ्यता को एक निर्मम और निरंकुश महाबाज़ार में बदल डालता है, जहाँ उस चीज़ का कोई मूल्य नहीं है जो बिकाऊ नहीं है और उस आदमी का कोई अर्थ नहीं है जिसके पास क्रय की क्षमता नहीं है।"[1] उदारीकरण वास्तव में बाज़ार सभ्यता को पनपने का सबसे प्रमुख और शक्तिशाली घटक है। यह नीति आर्थिक रूप से पिछडे होनेवाले देशों को धन ऋण

---

1. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति, मुख पृष्ठ से

देकर और वहाँ के व्यावसायिक क्षेत्र पर पूरा कब्जा स्थापित करने में नवसाम्राज्यवादी शक्तियों को सहायता देती है। यह स्वदेशी व्यापारों के संपूर्ण नाश का कारण बन जाता है। अर्थात् उदारीकरण की नीति के अनुसार किसी भी देश में उद्योगों की स्थापना करना या उद्योगों को चलाने में वहाँ के देशीय सरकार द्वारा निर्धारित नियंत्रणों और नियमों को हटाना। इससे विकासशील और अविकसित देशों में विदेशी निवेश का दरवाज़ा खोल दिया गया। इसने राजनीतिक और सार्वजनिक क्षेत्र के महत्व को घटा दिया। इससे नवऔपनिवेशिक शक्तियों को अन्य देशों के राजकोष, सबसीडी, मुद्रा स्फीति आदि पर अधिकार मिलता है। "उदारीकरण-ग्लोबीकरण की अर्थनीति विकास को विदेशी पूँजी पर पूरी तरह निर्भर कर देती है। विदेशी पूँजी प्राप्त करने के लिए सरकारों को अंताराष्ट्रीय शक्तियों के सामने झुककर भीख माँगनी पडती है। इसी कारण राष्ट्र के अन्दर, सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर, उसकी दखलन्दाजी बढ़ती है। सरकार की किसी भी नीति को अपने हित में परिवर्तित करने में वे सफल होते हैं। वित्त-व्यवस्था पर उनका पूरा नियंत्रण रहता है। राष्ट्रीय कोष का एक बडा अंश विदेशी कम्पनियों के लिए अनुकूल स्थिति पैदा करने के लिए खर्च होता है, बडे व्यापार पर कर बन्द हो जाता है, लोककल्याणकारी, कार्यकलापों पर सरकारी कोष से खर्च करना बंद हो जाता है।"[1] इसने धीरे-धीरे विदेशी धन पर चलानेवाले गैर-सरकारी संगठनों पर निर्भर होने की आदत जनता में बढ़ायी। किसी महत्वपूर्ण निर्णय लेते वक्त देशी सरकार को भी नवऔपनिवेशिक शक्तियों के हितों का अनुसरण करना भी पड़ता है।

---

1. किशन पटनायक - भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि - पृ. 26

भारत के संदर्भ में 1985 में राजकोषीय नीति की घोषणा उस समय के वित्त मंत्री विश्वनाथ प्रताप सिंह ने की है। इसका लक्ष्य था आयात कर में कटौती, आयात कोटे को समाप्त करना आदि। इस घोषणा ने भारत में एक नई अर्थनीति यानि उदारीकरण का द्वार खोला। साथ ही साथ उस समय में राजनीति क्षेत्र भी अस्थिरताओं से भरा था। इसका प्रतिफलन सार्वजनिक क्षेत्र में भी देखा गया। सार्वजनिक क्षेत्रों के दोषों और असफलताओं का हल करने के लिए और आर्थिक प्रगति अपनाने के ध्येय से 1991 में भारतीय सरकार ने उदारीकरण की नीति को अपनाया है। भारतीय सरकार की आशा थी कि इससे सार्वजनिक क्षेत्रों में राजनीतिज्ञों और अधिकारियों का हस्तक्षेप कम हो सकता है और यह देश के व्यावसायिक क्षेत्र में उन्नति लाने में सहायक बन जाएगा। इसलिए उदारीकरण की नीति को पूर्ण रूप से स्वीकार करने की सहमति सरकार ने दे दी है। इसके फलस्वरूप भारत में लाइसेंस प्रणाली को हटा दिया गया। अर्थात् पहले भारत में किसी व्यक्ति या संस्था को कोई औद्योगिक या व्यावसायिक कार्य चलाने के लिए सरकार से अनुमति लेनी पडी थी। इसी प्रकार लाइसेंस अपनाने के लिए कई राजनीतिज्ञों के हाथ-पाँव पकडना पडा है। इसने लाइसेंस प्राप्त करने में और व्यावसायिक कार्य आरंभ करने में देरी पैदा की। भारत सरकार के उदारीकरण की नीति अपनाने से कोई भी व्यक्ति या संगठन को बिना अनुमति से औद्योगिक गतिविधि आरंभ कर सकता है। यह भारत को आर्थिक रूप में कामयाब बनाने में सहायक तो है, लेकिन इससे नवऔपनिवेशिक शक्तियों को व्यावसायिक गतिविधियों के द्वारा देश के अधिकार में हस्तक्षेप करने का रास्ता भी खुल जाता है।

3.2.1.2 निजीकरण

निजीकरण साम्राज्यवादी शक्तियों का नया कुचक्र है। यह देशी सरकारों को असफल स्थापित कर सार्वजनिक क्षेत्रों को बहुराष्ट्रीय कंपनियों के नीचे लाने का षड्यंत्र है। उद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य, खेती, सेवा, यातायात जैसे सभी सार्वजनिक क्षेत्रों पर वे अपना कब्जा स्थापित कराते हैं। बेहत्तर सुविधा के नाम पर सरकारी संस्थाओं या सार्वजनिक क्षेत्रों को वे हडप लेते हैं और आम आदमी के अधिकारों को छीन लेते हैं। सरकारी सुविधाएँ, आरक्षण जैसे जनता के हक को बेहत्तर सेवा के नाम पर निगम हस्तक्षेप करते हैं। निजीकरण होने पर सार्वजनिक क्षेत्र एकदम आम जनता से अलग हो जाता है। शायद उनको बेहत्तर सेवाएँ तो मिलेंगी लेकिन उन सबका खर्च आम जनता के कंधों पर ही आता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों को अधिकार मिलने पर वे यहाँ पूँजी का निवेश करते हैं। ऐसी स्थिति में देश का नियंत्रण देश के अधिकारियों से नवऔपनिवेशिक शक्तियों पर आ जाता है। "मगर विडंबना तो यह है कि - भूमण्डलीय निगमों के सशक्त होते ही राष्ट्रीय सरकारें उन बाहरी ताकतों पर निर्भर करने लगती हैं तथा उन नियमों के अधीन हो जाती है।"[1] ऐसी स्थिति में तत्कालीन स्वार्थ या लाभ के लिए देश और देश की संपत्ति, पर्यावरण आदि का नुकसान होता है। निजीकरण सार्वजनिक क्षेत्रों का ही नहीं सभी वस्तुओं का निजीकरण करता है। भूमण्डलीकरण की एक विशेषता है वस्तुकरण है। विश्व बाज़ार हर वस्तु की कीमत को निश्चित करता है। जल, हवा, जंगल,

---

1. प्रभा खेतान - बाज़ार के बीच : बाज़ार के खिलाफ - पृ. 35

औषधि आदि सभी प्राकृतिक संपत्तियों पर भी वे अपना अधिकार स्थापित करते हैं। पेटेंट के नाम पर सबका अधिकार जनता या देशों से लूटकर नवसाम्राज्यवादी शक्तियों के अधीन आ जाती है। निजीकरण के द्वारा कॉरपेरेट शक्तियाँ वादा देती है कि जिनके पास ज़्यादा पैसा है उनको इन सबका गुण मिल जाएगा यह वास्तव में आम आदमी के अधिकारों का हनन है।

3.2.1.3 नवउदारवाद

भूमण्डलीकरण का वर्तमान दौर नवउदारवाद पर आधारित है। नवउदारवाद का दूसरा नाम है कोरपोरेटीकरण। किसी भी देश की आर्थिक और राजनीतिक बातों को किसी कोरपोरेट शक्तियों द्वारा नियंत्रित करने की स्थिति को नवउदारवाद माना जाता है। अर्थात् यह बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की तानाशाही ही है। उदारीकरण और निजीकरण ने नवउदारवाद को आज की तरह कामयाब बनाने में सहायता दी है। क्योंकि देश के अधिकाँश सार्वजनिक क्षेत्रों में भी नवउपनिवेशिक शक्तियों ने हाथ तो रखा है और सार्वजनिक क्षेत्रों से जनता को दूर रखा है। बाद में उन्होंने यहाँ बाज़ार की तानाशाही स्थापित की है। इसमें आम जनता गुलाम बन गयी है। आज बाज़ार की हर वस्तु का मूल्य वे निर्णय करते हैं। यह आम जनता को जीवन यापन के लिए अर्थ के पीछे भागने की स्थिति में पहूँचाती है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सार्वजनिक क्षेत्रों से सरकार और आम जनता को अलग कराकर उन पर कोरपोरेट शक्तियों का अधिकार स्थापित कर अपनी इच्छा के अनुसार वस्तुओं की कीमत प्रस्तुत कर मुनाफा कमाने की गुप्त एजेंडा है नवउदारवाद।

3.2.2 भूमण्डलीकरण के समर्थक संगठन और नीतियाँ

अंताराष्ट्रीय मुद्राकोष, गैट, विश्वव्यापार संगठन आदि भूमण्डलीकरण के समर्थक संगठन है।

3.2.2.1 अंताराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्वबैंक

दूसरे विश्वयुद्ध के बाद होनेवाले आर्थिक संकट से विकासशील और अविकसित देशों को बचाने के लिए आर्थिक सहायता देने के लक्ष्य पर अंताराष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्वबैंक की स्थापना हुई। 1994 में प्रसिद्ध अर्थशास्त्री जे.एम. कैईंस ने इसका सूत्रपात किया। इसके द्वारा अंताराष्ट्रीय वित्तीय व्यवस्था में संतुलन लाना और संतुलन के निर्वाह पर सहायता भी दे सकता है। लेकिन आगे चलने पर इसने अपने मूल उद्देश्य से हटकर विकासशील देशों में विदेशी पूँजी के अनियंत्रित प्रवाह का द्वार खोल दिया है। राजकिशोर जी के अनुसार "इन संस्थाओं का गठन विभिन्न राष्ट्रों को आर्थिक सहायता और ऋण देने के लिए किया गया था, ताकि वे आर्थिक संकट से निकल सकें और अपनी अर्थव्यवस्था का पुनर्निर्माण कर सकें। ध्यान देने की बात यह है कि मुक्त अर्थव्यवस्था की वकालत करनेवाली इन संस्थाओं का निर्माण बाज़ार की शक्तियों ने नहीं, सरकारों ने किया था। स्पष्टतः इनमें उन सरकारों का वर्चस्व था, जो मुक्त बाज़ार की अर्थव्यवस्था का पक्षधर है।"[1] इसलिए इनके निर्माण सरकारों द्वारा होने पर भी परिणाम में कोई बदलाव नहीं आया। नवसाम्राज्यवादी शक्तियाँ अपने कार्यक्षेत्र को बढ़ावा देने के लिए और

---

1. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - पृ. 39, 40

कब्जा स्थापित करने के लिए इसके मूल मकसद को तोड मरोड किया। यह विकासशील देशों में विदेशी पूँजी का अनियंत्रित प्रवाह का कारण बन गया। इसने धीरे-धीरे विकासशील देशों को करोडों डोलरों के कर्ज की स्थिति तक पहूँचाया है। बाद में इस कर्ज से दिवालिया इन देशों की मुक्ति के नाम पर उन्होंने और भी कर्ज दिया है। इस प्रकार कर्ज के ऊपर कर्ज देकर इन देशों को नवउपनिवेशिक शक्तियों ने अपने कब्जे में ला दिया।

3.2.2.2 गैट (GATT - General Agreement on Tariff and Trade)

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद 1947 में अंताराष्ट्रीय व्यापार में उन्नति लाने के लक्ष्य से गैट का गठन हुआ। गैट के द्वारा विश्व व्यापार को आसान बनाया गया है और व्यावसायिक सिद्धान्तों पर आधारित सेवा भी निर्धारित की गयी है। 1993 में विश्व के 136 राष्ट्रों के हस्ताक्षर मिलने पर गैट का नया और शक्तिशाली रूप प्रस्तुत हुआ है। 1999 में भारत ने भी गैट से समझौता किया। लेकिन आगे चलने पर अमेरिका जैसे नवसाम्राज्यवादी शक्तियों ने इसे अपनी कूटनीति के लिए इस्तेमाल किया। इसने मानव, समाज और पर्यावरण के ऊपर निगमों का अधिकार स्थापित करवाया। यह धीरे-धीरे कोरपोरेट की बौद्धिक संपत्ति को सुरक्षित रखने के लिए विकसित देशों का एक षड्यंत्र मात्र बन गया और इसके द्वारा बहुराष्ट्रीय निगमों के लक्ष्यों को स्वीकार न करनेवाले देशों और सरकारों के सामने बाँधाएँ डालकर वे व्यवधानों को हटाते हैं।

3.2.2.3 विश्व व्यापार संगठन

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विकासशील देशों और वहाँ के श्रमिकों की सुरक्षा को लक्ष्य करके विश्व व्यापार संगठन का रूपायन हुआ है। हवारा चार्टन ने इसकी प्रस्तावना की और यह आशा की गयी है कि इससे पूँजी के निवेशीकरण में नियंत्रण कर सकेंगे और अविकसित एवं विकासशील देशों में मुनाफा कमा सकेंगे। लेकिन परिणाम तो इसका ठीक विपरीत हुआ। यह संगठन भी गरीब देशों को लूटने का मार्ग मात्र बन गया। इसकी सच्चाई के बारे में प्रभा खेतान ने इस प्रकार लिखा है कि "सुधार के करीब एक दशक बाद भूमण्डलीकृत पूँजीवाद द्वारा समाज को किए गए वायदे पूरे नहीं हुए। मसलन, विश्व संगठन की नकाब उल्ट गई - वह कितना अमीर परस्त है, इसे सारी दुनिया जान गई है। उरूवे दौर में तर्क दिया जाता था कि उदारीकरण से हर साल दुनिया के देशों को 123 से 510 अरब डॉलर तक की आमदनी होगी, जिसका फायदा देश को होग। विकासशील देशों को 86 अरब से 122 अरब डॉलर तक की भागीदारी मिलेगी। लेकिन हुआ ठीक इससे उल्टा। अमीर देशों ने अपने कारोबार को बढ़ाया और गरीबों के बाज़ार पर अपनी गिद्ध दृष्टि गड़ दी।"[1] ये सब संगठन भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था की सकारात्मक पक्षों को ज़ोर करते हुए सामने आ रहे हैं लेकिन ये सब गरीब और विकासशील देशों के सामने सिर्फ नकारात्मक बन रहा है। इसके माध्यम से पूँजीवादी अर्थव्यवस्था की जडों और भी मज़बूत बनाने के ज़रिए और कुछ भी नहीं

1. प्रभा खेतान - ब्रांड, संस्कृति और राष्ट्र - पृ. 29

हुआ है। इन अर्थनीतियों को अपनाने के कारण भारतीय अर्थव्यवस्था भी इस भूमण्डलीय व्यवस्था से त्रस्त है।

3.3 भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था से त्रस्त भारतीय समाज : ममता कालिया की कहानियों में

भूमण्डलीकरण के प्रभावों के मायाजाल में पूरे विश्व के लोग फँस रहे हैं। भारतीय समाज भी इससे अलग नहीं है। अर्थ और उपभोग की अंधी दुनिया को प्रस्तुत कर मानव की सोच की शक्ति को भी भूमण्डलीय शक्तियाँ छीन लेते हैं। सफलता और कामयाबी के लिए आज सिर्फ एक ही शर्त है, वह है अर्थ। नवऔपनिवेशिक शक्तियों की इस नया तानाशाही के बारे में जनता अज्ञात है। साहित्यकार जनता के प्रति हमेशा उत्तरदायी है। इसलिए वे अपनी रचनाओं के द्वारा नवऔपनिवेशिक शक्तियों की इस दोबारा तानाशाही के प्रति जनता को अवगत कराने की कोशिश करते रहते हैं। भूमण्डलीकरण और बाज़ार की इस दुनिया में फायदा सिर्फ अमीर लोगों को मिलता है। आम जनता अपनी आजीविका के लिए तडपती रहती है। ममता कालिया ने अपनी कहानियों के द्वारा भूमण्डलीय अर्थव्यवस्था और उससे उत्पन्न आर्थिक तंगी के प्रति जनता को अवगत कराने की कोशिश की है।

3.3.1 बाज़ारवाद

भूमण्डलीकृत अर्थव्यवस्था में नवऔपनिवेशिक शक्तियाँ विकासशील और अविकसित देशों में पूँजी जमा कर वहाँ बाज़ार शुरू करती है और बाज़ार के द्वारा

ही वहाँ की अर्थव्यवस्था का नियंत्रण भी करता है। यह आर्थिक शोषण का नवीनतम उपलब्धि है। "आर्थिक पूँजीवाद में स्थिति बदल गयी। अर्थव्यवस्था पर समाज का नहीं बल्कि बाज़ार का दबदबा हो गया। समाज का संचालन बाज़ार के पिछलग्गू के रूप में होने लगा।"[1] यह बाज़ार की तानाशाही स्थापित कर दिया। भूमण्डलीकरण ने पूरी दुनिया को बाज़ार में तब्दील कर दिया। सुभाष शर्मा ने इस प्रकार लिखा है कि भूमण्डलीकरण जहाँ समूचे विश्व को घर से बाहर तक एक बाज़ार में तब्दील कर दिया जाता है अर्थात् हर चीज़ हर जगह किसी कीमत पर खरीदी या बेची जाती है।

बाज़ार सबसे पहले अपने मोहक रूप प्रस्तुत कर जनता को अपनी ओर आकर्षित करता है और जनता में ऐसी एक भावना भी उत्पन्न करता है कि खुशी सिर्फ 'मालों' से या शोपिंग से मिल जाता है। 'बाज़ार' कहानी में ऐसी मानसिकता से युक्त घरवालों का चित्र देखा जा सकता है। इसमें दादी छुट्टी के दिन की प्रतीक्षा इसलिए करती है कि उस दिन अपने बेटे और पोते के साथ कुछ समय बिता सकती है। लेकिन छुट्टी के दिन पोते दादी के साथ समय बिताने के लिए तैयार नहीं है। वे शोपिंग के लिए 'मॉल' में जाने की मूड़ में हैं। "मैं सगुन से कहती हूँ, 'सुग्गी, दादी के साथ सैर पर चलेगी न।' सगुन अपनी माँ से लिपटी बैठी थी।

'कहाँ?' उसने पूछा।

'पार्क में। तू झूला झूलना, मैं चक्कर लगा लूँगी।'

---

1. गिरीश मिश्र - बाज़ार और समाज : विविध प्रसंग - पृ. 131

'छिः इसे सड़े पार्क में मैं नहीं जाऊँगी।' सगुन ने मुझे सुस्त पडते देखा तो दौड़कर पास आयी, 'दादी सेण्ट्रल मार्केट चले तो ज़रा मज़ा आये।"[1] घरवालों के साथ रहने से भी ज़्यादा खुशी इन्हें 'मॉलों' में घूमने से मिलते हैं।

बाज़ार हमारा दिल को ही नहीं दिमाग को भी लूट लेता है। आज हमें क्या खरीदना है या न खरीदना है, यह निर्णय बाज़ार करता है। उनके जाल में फँसकर जनता अनावश्यक सामग्रियों का खरीदारी करती है। 'बाज़ार' कहानी की शिखा 'मॉल' में इसलिए जाता है कि तीन हज़ार की शोपिंग पर एक छतरी मुफ्त में मिलती है। वास्तव में शिखा को शोपिंग करने के लिए या खरीदने के लिए ज़रूरी कोई भी वस्तु नहीं है। लेकिन मुफ्त में एक छतरी मिलने की जानकारी मिलने पर वह जल्दी-ही-जल्दी 'मॉल' में पहूँचती है। शिखा की उत्सुकता इन शब्दों में व्यक्त है "गौतम, तुम्हें पता है मेगामार्ट में तीन हज़ार की शोपिंग पर एक छतरी मुफ्त दे रहे हैं।"[2]

बाज़ार की शक्तियाँ नये-नये रूपों में जनता को फँसाती हैं। यदि लोग बाज़ार की ओर नहीं आये तो बाज़ार जनता की ओर या घर में आकर मोहित कराता है। ओनलाइन शोपिंग इसका नया उदाहरण है। किसी न किसी प्रकार जनता के हाथ से अर्थ अपनी हाथों में सिमट कराने की तरीका वे समझते हैं। घर में दादी के नोस्टालजिया का लाभ उठाकर साड़ियाँ बेचनेवाले सेल्समान को 'बाज़ार' कहानी में ममताजी चित्रित करती है। सेल्समान के शब्दों की जादू में

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 90
2. वही - पृ. 90

फँसाकर दादी एक साड़ी के स्थान पर दो साड़ियाँ खरीदती हैं। घर में आ गये बाज़ार का इस रूप को देखकर दादी को दिवास्वप्न जैसा लगता है। इसीप्रकार की खरीदारी का एक और नया रूप है ओनलाइन शोपिंग। कई-कई 'शोपिंग वेबसाइट' हमारे सामने प्रस्तुत कर आवश्यकता, ज़रूरत आदि के बारे में सोचने की क्षमता वे हमसे छीन लेते हैं। मोहक वादाएँ देकर बाज़ार जनता को अपनी ओर आकर्षित करता है। उनकी लूट करने की बाज़ार की नयी तर्ज को 'निवेदन' नामक कहानी में ममताजी प्रस्तुत करती है। अखबार में कटौती की सूचना देकर ग्राहकों को बाज़ार की ओर आकर्षित करता है। लेकिन सामान खरीदने पर कटौती न देता है। अधिकतर लोग अपने स्टाटैस नष्ट होने को भय के कारण बिना कुछ कहकर सामान खरीदकर वापस जाते हैं। यदि कोई विरोध करता है तो दूकानवाले धमक्कियाँ देकर रुपये का भुगतान कराते हैं। "काउण्डर पर पैसे देते समय बिल देखकर वह भडक गयी। कपडे की वही कीमत लगाई गयी थी, जो थी। मिनी ने बिल उसके हाथ पर पटकते हुए कहा, उसे कपड़ा नहीं चाहिए, वह ऐसी दूकान से कुछ नहीं लेगी। बूढ़े ने और भी ठंडी आवाज़ में कहा, 'कपडा कट चुका है, उसे लेना पडेगा।"[1] इसे व्यापार नहीं लूटमार कहना ज़्यादा अच्छा होगा। वादाओं में फँसाकर दूकान में जनता को आकर्षित कराकर दूकानदार ग्राहकों के पैसे का डकैती करता है। स्टाटैस, इज्जत जैसे अनावश्यक भय देकर आवाज़ उठाने की क्षमता भी इन शक्तियों ने पहले ही जनता से छीन लिया है। इसलिए प्रतिरोध करने के लिए तैयार होने पर भी उसका समर्थन करने के लिए भी कोई भी तैयार नहीं है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 140

बडे-बडे 'मालों' की इस तानाशाही में छोटी-छोटी दूकानें आगे जा नहीं सकती हैं। बाज़ारवादी शक्तियाँ जनता के मन में ऐसा एक विचार उत्पन्न करती हैं कि बडे-बडे मालों में खरीदारी करना इज्जत की बात है। वह विचार जनता को वातानुकूल सूपर मार्केट और मालों की ओर आकर्षित करता है। 'काके दी हट्टी' नामक कहानी के चन्द्रप्रकाश अपनी छोटी दूकान से मिलनेवाली आय से जीता है। लेकिन उस शहर में आ गये बडे सूपर मार्केट ने चन्द्रप्रकाश की आजीविका को बन्द करवाया। इसलिए वह कहता है "सूपर स्टोर की घूल ने मेरी हट्टी का तो भट्टा बैठा देना है।"[1] सूपर स्टोर के प्रभाव में पडकर आसपास के सारे छोटे दूकानदारों को अपनी दूकानों उनको ही बेचकर सूपर स्टोर के मज़दूर के रूप में बदलना पडा। जीने के लिए उनके गुलाम बनने की स्थिति वे पैदा कराती हैं।

3.3.2 बेरोज़गारी

मौजूदा संदर्भ में नौकरी के क्षेत्र से जुडी हुई अनेक समस्याएँ पैदा हो रही हैं। बेकारी, वेतन की कमी, पदोन्नति के लिए संघर्ष, ओवर टाइम, डारजेट पूरा करने की परेशानी, नौकरी की आस्थाई आदि इसमें कुछ है। आज अधिकांश युवा पीढ़ी तो उच्च शिक्षित है। शिक्षा का प्रचार इसका सकारात्मक पक्ष तो है। लेकिन शिक्षा स्तर का गिरावट, अर्थ पर आधारित शैक्षिक प्रणाली आदि के कारण प्रतिभा या गुण के बिना अनेक लोग उच्च शिक्षित बनकर आ रहे हैं। यह नौकरी के क्षेत्र में प्रतियोगिता को और भी कठोर बनाता है। इसके साथ ही साथ औद्योगिक क्षेत्र

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 11

का अद्‌भुत विकास से यंत्र और मशीन का युग सामने आया है। यह मानव श्रम को और नौकर की संख्या को कम कराता है। "एक छिपा संदेश है - मुक्त बाज़ार में ज़्यादा कर्मचारियों वाली कम्पनी, कम्पनी के स्वास्थ्य के लिए खराब है और हर तरह से इससे बचना चाहिए। वे आज स्थायी रोज़गार निर्माता नहीं रही है। भूमण्डलीकरण का सबसे कमज़ोर पक्ष यही है।"[1] बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की यह नीति हज़ारों लोगों की नौकरी में दुविधा की स्थिति पैदा करती है। वे मनुष्यों से ज़्यादा यंत्रों और मशीनों को महत्व देती हैं। ऐसे संदर्भ में एक नौकरी के पीछे युवा पीढ़ी भागदौड करनी पडती हैं।

ममताजी ने अपनी कहानियों में बेकारी से त्रस्त और आर्थिक संकट में फँसे लोगों के जीवन पर भी दृष्टि डाली है। 'उसका यौवन' नामक कहानी के द्वारा वे यह व्यक्त करती हैं कि आज अच्छी नौकरी मिलना एक 'चांस' है। आज की युवा पीढ़ी इस 'चांस' के पीछे दौडती है। जो इसमें विजयी हो जाती है, उसका जीवन सुरक्षित हो जाएगा। कहानी की पंक्तियाँ हैं, "अरे, आपको चांस मिल गया तो बढ़िया नौकरी, बढ़िया बीवी पा गये, नहीं पडे होते इन्हीं रानी मंडी की बदबूदार गलियों में। असली चीज़ है चांस।"[2] इस कहानी का नायक विराम उच्च शिक्षित है और बेरोज़गारी से त्रस्त भी है। वह अपनी योग्यता को न मानकर कोई भी काम करने के लिए भी तैयार है। उसके साथी भी शिक्षा के अनुसार नौकरी न मिलने के कारण आजीविका के लिए छोटी-छोटी दूकानों में भी काम करते हैं। लेकिन

---

1. प्रभा खेतान - भूमण्डलीकरण : ब्रांड, संस्कृति और राष्ट्र - पृ. 108
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 310

घरवालों के स्टैटस और उनके गर्व के अनुसार नौकरी न मिलने के कारण घरवाले उसे परेशान करते हैं। घरवालों की सोच ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं "पर वह इतने मामूली काम कैसे कर सकता है? पिताजी के नाम पर बट्टा नहीं लगेगा, ए.जी. आफिस में काम करते हैं, सरकारी नौकरी है उनकी। भैया लज्जित नहीं होंगे, इतनी बड़ी दवा कम्पनी में मैनेजर हैं, भाभी युनिवर्सिटी में पढ़ाती हैं। ममाजी तो शर्म के मारे इलाहाबाद आना छोड देंगे। हैदराबाद के श्रेष्ठ वैज्ञानिकों में एक हैं। चाचाजी बदायूँ में सिटी मजिस्ट्रेट हैं। वे सब कैसे बर्दाश्त करेंगे कि उनके खानदान का एक होनहार लड़का मरीजों को अटकलपच्चू मीठी गोलियाँ बांटे या साबुन-बट्टी बेचे। और अम्मा? वह तो सदमें से मर जायेगी। कितने अरमानों से उसे पाला है?"[1] ऐसी स्थिति में विराम को महसूस हुआ कि पढ़ाई सब बेकार है, क्योंकि अब उसके जीवन रेलगाडी की तरह दौड आकर नौकरी की प्लेटफॉम पर रुक गयी है। कभी-कभी उसे लगता है कि यह स्थिरता हमेशा के लिए है, यहाँ से आगे नहीं जा सकता है।

आज तो उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या तो बढ़ती जा रही है। एक ही पद के लिए हज़ारों लोग आवेदन पत्र देते हैं। उसमें सबसे अधिक योग्य, सिफारिश युक्त, रिश्वतखोरी देने के लिए सक्षम व्यक्ति उस पद पर आसीन हो जाता है। ममताजी की 'अपने शहर की बत्तियाँ' नामक कहानी में इसका संकेत मिलता है। इसके पंकज और संजीव दोनों घनिष्ठ मित्र हैं और नौकरी की खोज में हैं। पंकज

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 310

ने एक कॉलेज में अध्यापक बनाने के लिए आवेदन पत्र दिया है। इसके बारे में मित्रों के बीच की बातचीत प्रस्तुत कर ममताजी ने नौकरी के लिए प्रतीक्षा करनेवाले लोगों की संख्या कितनी बडी है, इस पर संकेत किया है। "खुदा खैर करे। मैंने तो यह भी पता नहीं किया कि मेरी नौकरी पर कितने हज़ार लोगों की अर्जियाँ हैं।

'तुम्हारे आवेदन पत्र की संख्या क्या थी?'

'तीन सौ पाँच।'

'यानी तीन सौ पाँच लोग हिंदी का प्राध्यापक होने की न्यूनतम योग्यता रखते हैं। और तुम्हारे पास तो पी.एच.डी भी नहीं है।"[1] अर्थात, उसको हज़ारों लोगों की अर्जियों का सामना करना पडेगा। घरवालों की उम्मीद उसके मन को और भी बेचैन किया है। इसलिए पंकज ने इस प्रकार कहा है 'मैं तो तुम्हारे सिवा किसी से बात तक करना गवारा नहीं करता। भाई की पाँच चिट्ठियाँ आई पडी हैं, जवाब में उन्हें क्या लिखूँ। मुझे तो अपने घरवालों की उम्मीदों से डर लगने लगा है। जिसे देखो, वहीं उम्मीदों की लालटेन जलाए बैठा है।' 'पिताजी समझते हैं मैं भरपूर कोशिश नहीं करता, इसलिए मुझे नौकरी नहीं मिलती। उनके ज़माने से ले कर आज तक चीज़ें कितनी बदल गई हैं वे नहीं समझते।"[2] नौकरी न मिलने की बेचैनी के साथ घरवालों की प्रतीक्षाओं ने उनके जीवन को और भी संघर्षपूर्ण बनाया है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 319
2. वही - पृ. 319

'प्रिया पाक्षिक' कहानी में ममताजी कुछ युवकों की जीवन-स्थिति को व्यक्त कर बेकारी की तीव्रता को व्यक्त करने की कोशिश करती हैं। "राजकुमार को बेकारी के पाँच साल का अनुभव था। उसके शब्दों में अब वह एम.ए. तक का पढ़ा-लिखा सब भूल चुका था। विपिन चार साल से नौकरी की तलाश में लगा था और इस सिलसिले में बैंक में चपरासी पद तक के लिए अर्जी दे चुका था। अंशुमान ने कम्पटीशन के इम्तहानों में बैठ-बैठ कर आँखें सुजा ली थी और वह अपने के लिए कहा करता था, "'अब तो मैं अस्त हुआ। हौसला वस्तु हुआ।' वे सब अपने को बेरोज़गारी के विशेषज्ञ कहते थे।"[1]

'पण्डिताइन' नामक कहानी में नौकरी के लिए कई बार प्रतियोगितात्मक परीक्षाओं का सामना कर हताश हुए अवधेश राय नामक युवक की मानसिकता को चित्रित किया गया है। कई डिग्रियाँ होते हुए भी आजीविका चलाने के लिए एक कॉलेज में चपरासी का काम करता है। अपनी शिक्षा के अनुसार नौकरी न मिलने के कारण उसके मन की हताशा की गहराई इतनी है कि जो सभी बातों के नगण्य और नफरत की दृष्टि से देखता है। उसकी मानसिकता ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती है "जब अच्छी नौकरी नहीं मिलेगी तो खराब नौकरी करेंगे ही। फिर आजकल चपरासियों को कौन काम होता है। शान से धूप में खडे होकर बीड़ी पीते हैं या स्टूल पर बैठे रहते हैं। कॉलेजों में तो बस कागज़ इधर-उधर करने का काम होता है, सो कर देंगे।"[2] हताशा के अंत में एक ओर इसी प्रकार की नफरत की

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जांच अभी जारी है - पृ. 64
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 84

दृष्टि युवा वर्ग में पैदा होती है और दूसरी ओर न्याय का मार्ग छोडकर अन्याय के रास्ते से नौकरी हासिल करने की मानसिकता पैदा होती है। 'बसंत-सिर्फ एक तारीख' नामक कहानी की चंदा चौधरी और उसके पति साहित्यकार हैं। लेकिन साहित्य साधना से घर का खर्च न चलाने की स्थिति में चंदा नौकरी की तलाश करती है। "मैं बेरोज़गार से बारोज़गार होना चाहती है........ बेरोज़गारी हमारा पश्तैनी रोज़गार था।"[1] अपनी परिचित प्रिंसिपल से किसी-न-किसी प्रकार हाथ पैर पकड़कर नौकरी में चंदा प्रवेश करती है। इसके लिए प्रिंसिपल एक गर्भवती अध्यापिका को नौकरी से निकालते वक्त चंदा खामोश रहती है क्योंकि घर की आर्थिक स्थिति उतनी बिगाड़ी हुई थी। किसी न किसी प्रकार एक नौकरी की उसको उतना ही ज़रूरत थी। अन्याय के प्रति सबसे पहले शब्द उठाने के लिए दायित्ववान है साहित्यकार। साहित्यकार होते हुए भी अन्याय का रास्ता अपनाने के लिए चंदा विवश हो जाती है। न्याय और अन्याय की रस्साकसी में चंदा के मन के अन्याय का पक्ष ही विजयी हुआ। लेकिन इसी प्रकार पा जाने वाली नौकरी से उसे खुशी नहीं मिली और उसे लगा उसका दिल एकदम शीत से अकड़ हो गया। "मेरे पैरों में कँपकँपी उठी, जैसी स्कूल के दिनों में दौडने से पहले उठा करती थी। दिमाग में कोई दमामे बजा रहा था।...... मेरे अन्दर एक वसंत अभी अभी झुलसकर मर गया था।"[2]

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 107
2. वही - पृ. 113

नौकरी न मिले तो जीने के लिए कोई न कोई रास्ता अपनाने के लिए लोग विवश हो जाते हैं। इनमें कुछ तो सही होंगे और कुछ एकदम गलत। 'छोटे गुरु' कहानी में एक युवक नौकरी की खोज में हताश होकर जीने के लिए एक आश्रम में गुरु का वेश पहनकर रहता है। और जनता का विश्वास और भक्ति से लाभ उठाकर वह धन कमाता है। इस कहानी के द्वारा ममताजी यह जाहिर करना चाहती है कि नौकरी मिलने से भी ज़्यादातर आसान है दुनिया को छलाकर जीना। छोटे गुरु इसमें सफल भी हुआ है। ऐसी स्थितियाँ समाज में अन्याय पनपने का कारण बन जाती हैं। आजीविका के लिए अधिकाँश लोग अन्याय का रास्ता चुनते हैं। यह समाज की तालमेल और सुरक्षा में बाधा डालती है।

3.3.3 आर्थिक विपन्नता

हम जानते हैं कि आज समाज में अर्थ के अतिरिक्त किसी का भी महत्व नहीं है। अर्थ की इस महानता में सबसे पहले इंसानियत की महत्व नष्ट हो जाती है। हिसाब की दुनिया में आज लोग जीते हैं। यह दुनिया मनुष्य के बीच अधिक धनी बनाने की प्रतियोगिता का सृजन करती है। इसके बारे में ममताजी ने इस प्रकार लिखा है - "इन्सान के आपसी व्यवहार से परे भी एक दुनिया होती है - हिसाब की दुनिया, जिसमें गिनती और गिनती का जोड़ ही सबसे बडी चीज़ होती है।"[1] ऐसी स्थिति में मानव का लक्ष्य किसी-न-किसी प्रकार धनी बनना हो जाता है। लेकिन मौजूदा संदर्भ में यह असंभव है। आज की परिस्थितियाँ मध्यवर्गीय

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 61

लोगों को गरीब और गरीब लोगों को और भी गरीब बना देती हैं। आम आदमी के सपनाओं को ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - "विराम लेटे लेटे ऊँध गया। उसे सपना आया कि वह बम्बई पहूँच गया है, हवाई जहाज से। हवाई सीढ़ी से उतरने के पहले वह हाथ हिला रहा है। तड़-तड़.... तालियाँ की आवाज़ से पूरा एयर पोर्ट गूँज उठा है। उसे रसिवी करने हेमा मालिनी से लेकर पद्‌मिनी कोल्हापुरी तक सब आयी है। वह बड़ी शान से अपनी टोयोटा में बैठ जाता है बिना किसी पर भी एक नज़र डाले। फिल्मों में वह ऐसी भूमिकाएँ करता है जिनमें एक गरीब नौजवान संघर्ष करते-करते सीधा करोड़पति हो जाता है। वह हर स्मगलर को मार गिराता है, हर वेश्या का उद्धार करता है, वह बच्चों को गोद में उठाकर गाना सुनाता है, वह हीरोइन को चींटी की तरह मसल डालता है।"[1] लेकिन सच्चाई तो यह है कि आम आदमी के लिए यह सब हमेशा के लिए सपना रहेंगे।

मध्यवर्गीय और गरीब लोग ज़िन्दगी आगे बढ़ाने के लिए कोशिश करते रहते हैं। महंगाई की इस दुनिया में आवश्यक सामग्रियों का दाम चुकाने के लिए के तडप रहे हैं। आज बाज़ारवादी शक्तियाँ हर सामग्री का मूल्य निश्चय करती हैं। आयात-नियात वैसी बातों को प्रस्तुत कर वे हर वस्तुओं का मूल्य बढ़ाकर आम जनता का दम घोटती है। महंगाई से त्रस्त आम आदमी की परेशानियों को ममताजी अपनी कहानियों में व्यक्त करती हैं। 'अपने शहर की बत्तियाँ' नामक कहानी में नौकरी की खोज में महानगर में आए हुए पंकज और संजीव को बेकारी से ज्यादा

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 309

मुसीबत महंगाई से महसूस हुई। खर्च को पूरी तरह संभालने पर भी उन्हें आगे वहाँ ठहरना मुश्किल बन गया। "मांसाहारी होते हुए भी उन्होंने शकाहारी भोजन मंगाया। साबुत उड़द की दाल, आलू गोभी के साथ उन्होंने गिन कर आठ रोटियाँ मंगाई। लेकिन दाम चुकाते वक्त वे चौंक गए। यही खाना तेईस रुपये का हो गया। अपने शहर के चुन्नीलाल के ढ़ाबे में इतने खाने का बिल मुश्किल से पाँच रुपया आता। दोनों को तकलीफ हुई।.................. उन्हें डर था कि इसी रफ्तार से पैसे खतम हो गए तो वे शायद वापसी का टिकट भी न ले पाएँ। सहसा उन्हें यह शहर पराया लगने लगा। उन्हें लगा वे परदेश में हैं।"[1] शहर और वहाँ के बाज़ार आम जनता के सामने एक भयानक रूप धारण कर लेते हैं। यह दुनिया सिर्फ अमीर लोगों के लिए है।

3.3.3.1 आर्थिक संकट से ग्रस्त परिवार

मानव जीवन के केन्द्र में अर्थ लाने पर इसका असर हमारे पारिवारिक जीवन पर भी पडा है। एक ओर परिवारवालों की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए दौडने पर दूसरी ओर अर्थ के अनुसार संबन्धों में भी बदलाव आने लगा। "उदारीकरण निश्चय ही आर्थिक क्षेत्र में घटित होता है, लेकिन यह मनुष्य और मनुष्य के बीच के रिश्ते को फिर से परिभाषित भी करता है।"[2] अर्थ केन्द्रित मानव के पारिवारिक जीवन के विभिन्न संदर्भों पर ममताजी अपनी कहानियों में प्रकाश डालती हैं। 'बीमारी' नामक कहानी में अर्थ के नाम पर संबन्धों में आनेवाले

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 322
2. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - मुख पत्र से

बदलावों पर प्रकाश डालती है। इसमें भाई और भाभी बीमारग्रस्त बहन के इलाज के लिए शहर में आते हैं लेकिन उसके लिए पैसा खर्च करने के लिए दोनों तैयार नहीं है। पैसा खर्च होने के भय से उसे घर ले जाने में वे इनकार करते हैं। अस्पताल से निकलते वक्त भाई खर्च किए गए रुपये की सूचि बहन को देता है। "मैंने भाई से पूछा, 'तुम्हारे अपने पैसे तो नहीं लगे किसी चीज़ में।' भाई ने झेंपते हुए अपनी जेब से पर्स निकाला और कई कागज़ उल्ट-पल्ट कर एक कागज़ मुझे थमा दिया। उसमें उन पैसों का हिसाब था, जो इधर-उधर मेरे सिलसिले में आने-जाने में खर्च हुए थे और जो फल मेरे लिए लाए गए थे। मैंने भाई से कहा, "कैश में अपने पास ही रख रही हूँ ज़रूरत पड सकती है। तुम चैक ले लोगे?" उसकी पत्नी ने तुरन्त सिर हिला दिया, 'हाँ, हाँ बैंक में एकाउण्ड है इनका' मैंने एक चैक अस्पताल के नाम काट कर पर्स में रखा और एक भाई को थमाया।"[1] पैसा नष्ट होने की स्थिति में सगे संबन्धों को भी इंकार करने के लिए मनुष्य तैयार हो गया है। आश्चर्य की बात यह है कि अब उसमें मानव को कोई गलती भी नहीं लगती है।

धन की कमी संबन्धों ही नहीं प्रेम की गहराई में भी बदलाव लाने का कारण बन जाता है। विवाह के बाद जीवन के खर्च को उठा न पाकर शहर के प्रसिद्ध प्रेमी साहनी और बगालन को अपने प्रिय साइकिल को बेचना पडा। 'प्यार के बाद' नामक इस कहानी के आरंभ में ममताजी ने इन दोनों प्रेमियों द्वारा साइकिल पर जाने का सुन्दर दृश्य खींचा है। यह दृश्य देखकर गाँव वाले उन्हें

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 47

कबूतर बुलाया करते थे। लेकिन बेरोज़गारी के साथ दोनों के खर्च को संभाल न सकने पर उन्हें साइकिल, रेडियो जैसी उनकी सारी सामग्रियों को बेचना पडा। यह प्रेमियों से ज़्यादा शहरवालों का दिल टूटा, "बलराज ने ताज्जुब में गर्दन आगे बढ़ाई, 'इनकी साइकिल कहाँ गई, रिक्शे में कैसे उजबक लगते हैं।' 'बेच खाई होगी।' मैंने मुँह बिचकाया। बलराज बात नहीं समझा। वह देर तक रिक्शे को जाता हुआ देखता रहा। फिर हताश आँखों से वह सिर के ऊपर छाये पेड में इमलियाँ गिनने लगा।"[1] कहानी के अंत में ममताजी इस निर्णय पर आती है कि आर्थिक तंगी उन्हें प्रेम से भी निकाल कर होगा। नहीं है तो उसके जीवन का इतना अमूल्य हिस्सा, माने साइकिल उन्हें बेच नहीं सकते।

धन होने के अनुसार घर की खुशी में और परिवारवालों के आपसी संबन्ध में बदलाव आ जाता है। धन है आज सबका आधार। 'पहली' नामक कहानी में माँ-बाप को वेतन मिलनेवाले पहले तारीख में घर में खुशी होती है, घरवाले हँसते हैं, आपस में बातें करते हैं और मज़ाक भी उठाते हैं। लेकिन रुपये कम होने के अनुसार खुशी भी धीरे-धीरे समाप्त हो जाती है। ये देखकर घर का छोटा बच्चा माँ से पूछता है "कितनी अच्छी होती पहली तारीख अम्माँ, अच्छा अम्मा अगर पहली तारीख न आये तो?"[2] वह छोटा बच्चा हर महीने पहली तारीख की प्रतीक्षा करता रहता है। और साथ ही साथ वह डरता है कि यदि पहली तारीख नहीं आये तो खुशियाँ घर से हमेशा के लिए नष्ट हो जाएँगी।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 165
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 81

मध्यवर्गीय लोग हमेशा प्रतीक्षा में जी रहे हैं। मुसीबतों से मुक्त अच्छे दिनों की प्रतीक्षा में वे छोटी-छोटी बचत भी रखते हैं। उनके जीवन का केन्द्र ही इन बचत और बोनस आदि हैं। 'काली साडी' में इसका सशक्त चित्रण हम देख सकते हैं। "इस बार बोनस का तो पता ही नहीं चला। कौन रोज़ रोज़ मिलता है। इसी के लिए तुम धरना देते हो, हडताल करते हो। साल भर मनसूबे बाँधते हो। बोनस मिलेगा तो कूलर खरीदेंगे। बोनस मिलेगा तो गैस खरीदेंगे, बोनस मिलेगा तो......' 'मेरी तो अभी बनियानें भी नहीं आ पायीं और बोनस खतम हो गया। मैं तो किसी से शिकायत नहीं करता।' घर-खर्च जोड़ा गया तो पता चला कि एक नहीं दो-दो बोनस भी सारी ज़रूरतें पूरा नहीं कर सकते।"[1] घर के खर्च और बचत की चिंता में वे कभी-कभी जीने के लिए भी भूल जाते हैं। 'दाम्पत्य' कहानी के आलोक और सुनीता भी इसी प्रकार जीने के लिए भूल गया दंपति है। आर्थिक मुसीबत ने उनके जीवन को नरक बना दिया है। अलोक की अपेक्षा सुनीता ने अर्थ को अधिक प्रधानता दी। इसलिए छोटी-छोटी बातों में भी कंजूसी दिखाकर जीवन के सुन्दरमय क्षणों को उसने बरबाद किया है 'उसकी बडी इच्छा हुई कि सुनीता इस वक्त जागी हुई होती। वे दोनों चाप बनाते और चाय पीते हुए उससे उसने उन खयालों के बारे में बताया जो अक्सर उसे आते रहते हैं। ये खयालात उनकी ज़िंदगी की निजी या मौजूदा मुश्किलों को हल नहीं करते, लेकिन उनके जेहन को एक नया अंदाज़ देते। पर यह मुमकिन नहीं था। उसके छूने से सुनीता जाग जाती। यकीनन वह उठ कर

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 239

वही कहती, जो वह अक्सर कहती है, "हे भगवान! तुम अभी तक सोये नहीं। क्या कर रहे थे। पता नहीं तुम्हें रोज-रोज़ मशक्कत करने की क्या पडी रहती है।"[1] सुनीता के मन में हमेशा बिजली, पानी का बिल, सब्जों की बढ़ी हुई दाम, घर का खर्च आदि का हिसाब है। इसके अतिरिक्त कुछ भी न सोचने की स्थिति तक वर्तमान परिस्थितियाँ मानव को पहूँचाती है।

आर्थिक मुसीबतों के कारण अपनी इकलौती बच्ची को एक कमरे में बंधी रखकर काम करने के लिए मजबूर होते माँ-बाप की जीवन व्यथा का चित्रण हुआ है 'जी' नामक कहानी में। जगजीत सिंह और चित्रा दोनों गायक दम्पति है और वे एक बडे होटल में संगीत का लाइव-शो आयोजित कर जीवन बिताते हैं। बीच में चित्रा माँ बनी। इसलिए चित्रा संगीत के लाइव-शो से कुछ साल के लिए विदा लेना चाहती है। लेकिन होटल के अधिकारी दोनों के बिना शो चलाने के लिए तैयार नहीं थे। ऐसी स्थिति में चित्रा भी शो में जाने के लिए विवश हो जाती है। "मालिक जी.एस.सूरी ने कहा था, 'शो के समय आपका फोकस बच्चे पर नहीं, मेहमानों पर होगा। आपकी पत्नी, हॉल में बच्चे के पास नहीं जायेगी, हम आप दोनों की आर्टिस्ट इमेज चाहिए, पैरेण्ट इमेज नहीं चलेगी।"[2] उन दोनों का आर्थिक मुसीबतों ने मालिक की हर शर्तों को स्वीकार करने के लिए उन्हें विवश बना दिया। इसलिए बच्ची को होटल के एक कमरे में अकेला छोडकर उन्हें शो चलाना पडा। आर्थिक परिस्थितियाँ मानव के जीवन स्थितियों को कितना त्रासदीपूर्ण बना देती है, इसका

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 59
2. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 23

सशक्त उदाहरण है 'खिड़की' नामक कहानी। इसके शिवचरण बाबू आर्थिक संकट के कारण वृद्धावस्था में भी कठिन काम करने के लिए विवश हो जाता है। कहानी के आरंभ में बडी अटैची को खुद उठाकर सीढ़ियाँ चढ़नेवाले शिवचरण बाबू का दृश्य ममताजी ने इतनी मार्मिकता से चित्रित किया है कि पढ़नेवालों का मन भी द्रवित हो जाता है। कहानी की पंक्तियाँ है "पहली बीस सीढ़ियाँ वे उत्तेजना में चढ़ गए लेकिन अगली एक-एक सीढ़ी उन्हें भारी लगने लगी। ऊपर आते-आते तक घुटने बिल्कुल जवाब दे गए। पुल पर एक मिनिट सुस्ता कर उन्होंने स्वगत कथन किया, 'तीन-तीन बेटियों का बाप कुलियों पर पैसे लुटाए, यह भी तो नहीं बनता'। फिर वे लश्टम-पश्टम पुल पार कर ही गए।"[1] शिवचरण बाबू का यह कथन वास्तव में भारत के आम जनता को विवशता का प्रतीक है। आर्थिक तंगी उनके गले घोटते रहते हैं।

दिन-व-दिन बढ़ती हुई महंगाई पारिवारिक खर्चों को तोड-मरोड करती है। बढ़ती हुई महंगाई आम जनता को आँख बन्द कर बाज़ार जाने के लिए विवश बनाती है। आज कोई भी वस्तु ऐसी नहीं है जो महंगाई से अनछुई है। 'काली साड़ी' के विनोद और कल्पना दोनों को वेतन होते हुए भी कुछ भी बाकी नहीं है। "मकान का किराया, बिजली का बिल, बच्चों की फीस, रिक्शे का भाड़ा, दूध के दाम देते-देते तक वेतन का लिफाफा 'राय नाम सत्य है' बोल पडा। विनोद रोजमर्रा की गाड़ी हांकता जिसकी राह में छोटे-छोटे गड्ढे पड़ते रहते-राशन, गैस, किताबें और

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 154

कभी-कभी खड्ड-मेहमान, रिश्तेदार, बीमारी। पर पसंद तो पसंद है। वह बाज़ार से गुज़रती है, पैदल, प्रतिदिन। आँख बन्द करके तो चला नहीं जाता। रोज़ाना चीज़ें पसंद आती रहती है, भूलती रहती है।"[1] कल्पना अपने बच्चों को विभिन्न तरीके की सब्जियों से कुछ स्पेशल डिशस देना चाहती है। लेकिन सब्जियों का दाम उस इच्छा से कल्पना को पीछे खींचता है। "स्टाफ रूम में आयी पत्रिकाओं में कल्पना अक्सर व्यंजन विधियाँ पढ़ती रहती है। कई बार वह तय करती है आज कुछ स्पेशल बनायेगी। पर आज तक उसमें से एक भी व्यंजन वह आजमा नहीं पायी..... ये महंगे व्यंजन तो उन घरों के चोंचले हैं, जहाँ औरतें पलंग पर पडी-पडी बोर होती रहती है और छठे छमासे कभी रसोई का रुख करती हैं।"[2] आर्थिक तंगी मध्यवर्गीय लोगों को अपने जीवन की छोटी-छोटी इच्छाओं को अधूरा छोडकर जीने के लिए विवश बनाती हैं। वे आशा करते हैं कि एक दिन उनकी सारी इच्छाओं की पूर्ति होगी। लेकिन वह तो कब होगा इसके बारे में उन्हें पता ही नहीं है।

'दर्पण' नामक कहानी की नायिका बानी विवाह के बाद पति से सिर्फ इतना मांगती है कि कमरे में एक ड्रैसिंग टेबिल होना चाहिए। क्योंकि बानी अपना रूप सौन्दर्य हर दिन देखकर खुश होना चाहती थी। लेकिन किराए पर रहनेवाले घर और वहाँ के खर्च के बीच नया ड्रैसिंग टेबिल पति को एक बोझ था। उपयोगिता को ध्यान में रखकर सामान खरीदनेवाले पति ने बानी की इच्छा को

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 232
2. वही - पृ. 236

प्राथमिकता नहीं दी है। और सालों बाद जीवन एक स्थायी स्थिति तक पहूँचने पर पति बानी के लिए एक बड़ा सा ड्रैसिंग टेबिल खरीद दिया। लेकिन तब तक जीवन के सांध्यवेला तक पहूँच गये। उस सांध्य वेला में बानी को शीशे की ज़रूरत भी नहीं थी। "एक लम्बे अर्से बाद बानी ने अपने को आज आदमकद आईने के आगे खड़ा पाया। लेकिन यह क्या। यह वह किसे देख रही थी। उसने अपने पीछे मुड़ कर देखा, नहीं उसके आसपास और कोई औरत नहीं थी। यह वही थी, जिसका प्रतिबिम्ब इस वक्त दर्पण में पड रहा था, परेशान, पस्त चेहरा, रुखी निस्तेज आँखें, सूखे ओठ, कनपटी पर चंद सफेद बाल और झुर्रियाँ पडे हाथ। देह के आरोह-अवरोह, सब गायब थे। बाकी थे, ढीले कन्धे, चपटा वक्ष, वक्ष से ज़्यादा पुष्ट कूल्हे और कमर।"[1] अब बानी उस शीशे को डरती है और अपने कंधों पर से शाल उतार कर दर्पण को ओढ़ लिया। मध्यवर्गीय परिवारों की आर्थिक स्थिति की असली दस्तावेज़ है यह कहानी। इन परिवारों के लोग जीवन भर आर्थिक रूप से स्थायी स्थिति तक पहूँचाने के लिए कोशिश करते हैं लेकिन अंत में जब स्थायित्व आ जाता है तो उनके पास जीन के लिए या खुशी होने के लिए कुछ भी बाकी नहीं रहता। जगह की कमी के कारण घर के एकमात्र अलमारी को बेचने के लिए निर्णय ले गये परिवार की कहानी है 'अलमारी'। आर्थिक विषमता ने उस परिवार को एक कमरावाला मकान किराए पर लेने के लिए विवश बना दिया। उस कमरे की जगह की कमी ने उन्हें ऐसे निर्णय लेने के लिए मज़बूत बना दिया।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 393

अर्थ को अपने पति या बेटे से भी ज़्यादा महत्व देने वाली माया नामक वृद्धा की कहानी है 'गुस्सा'। बेटे को भी एक रुपया देने के लिए माया तैयार नहीं है। एक बार अपने हाथ में अधिक आये हुए हज़ार रुपये दोनों बेटे को देने के लिए पति तैयार हुआ। इस पर माया ने पति पर भडक गया। "अच्छा, यहाँ सदाव्रत खुला है, जो बाँट देंगे, लुटा देंगे। उनकी मेमें एक घंटे में बाज़ार जा कर उजाड़ देंगी। मैं जानती हूँ कैसे मैंने पाई-पाई जोड़ कर घर बनाया है। हर तिमाही बीमें के लिए रुपये तो मैं ही देती थी। बस, जो है बच्चों में लुटा दो। कभी मेरा भी सोचा है, तुम्हारे बाद मेरा क्या होगा?"[1] पत्नी की धन केन्द्रित ऐसी मानसिकता से त्रस्त होकर पति घर छोडकर चला गया। फिर भी माया अपने जीवन के अंतिम क्षणों बेटे और बहुओं के साथ बिताने के लिए तैयार नहीं है। अपने हाथ से धन नष्ट होने के भय ने उसे अकेले जीने के लिए प्रेरित कर दिया। माया अपने जीवन भर सगे-संबन्धियों से भी ज़्यादा महत्व धन को दिया है। 'उपलब्धि' नामक कहानी का चेतन भी ऐसा एक व्यक्ति है जो पैसा कमाने की अंधी दौड़ में घरवालों को भूल गया था। उसकी धारणा थी कि घरवालों से बातें कर समय बिताना व्यर्थ है और उससे कोई फायदा नहीं है। लेकिन एक दंगे में घर, दफ्तर, नौकरी, संपत्ति सब कुछ उसे नष्ट हुआ। पत्नी और बेटी के जीवन भी खतरे में पड़ते समय चेतन खुद ही समझ गया है कि धन से अधिक मूल्य होनेवाले कुछ बातें बाकी हैं। "लेकिन रिक्शे में प्राची और बबलू के साथ बैठते हुए चेतन को लगा उसका कोई नुकसान नहीं हुआ है।

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 153

उसके सबसे बड़ी उपलब्धि तो उसके पहलू में है।"[1] ममताजी इन कहानियों के द्वारा यह व्यक्त करना चाहती है कि हर व्यक्ति के जीवन की सबसे प्रमुख और प्रधान बात अपना परिवार ही है। परिवार और संबन्धों को धन के सामने भूलनेवाला ही है सबसे बडा बेवकूफ।

'सिकन्दर' नामक कहानी में ममताजी सीपी के माँ-बाप के माध्यम से विपरित आर्थिक परिस्थितियों में कैसे आगे जाने और परिवार की धुरी को कैसे संभालने का सशक्त नमूना प्रस्तुत करती हैं। सीपी के माँ-बाप अपनी छोटी सी कमाई से आगे जीने की कोशिश करते हैं। पिता को स्थायी नौकरी भी नहीं है। फिर भी बदलनेवाले मौसम, महंगाई और बाज़ार के प्रलोभन आदि में अपने परिवार न गिराकर जीने के लिए उन्होंने कोशिश की है। इसलिए उन्होंने अपने बच्चों से यह सिद्धान्त सिखाया है जो जीवन की मज़बूरियों में हारने के बदले उनमें से मनोरंजन निकालकर आगे जाते हैं, वे ही वास्तव में सिकन्दर हैं। पिता की इस सिद्धान्त का समर्थन का ममताजी ने इस प्रकार लिखा है "यह पराजय नहीं है, पराजितों का शास्त्र भी नहीं, जीवन का शास्त्र है, संघर्ष के ताप से तपा हुआ।"[2] प्रतिकूल परिस्थितियों में पराजित होकर सिर झुकाने के बजाय कैसे अपना जीवन और अपने परिवार को आगे बढ़ाना है, इसका आदर्श चित्र ममताजी इस कहानी के माँ-बाप के ज़रिए हमारे सामने प्रस्तुत करती हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 81
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 400

3.3.3.2 आर्थिक अभाव से त्रस्त जीवन की सांध्य वेला

परिवार में हमेशा उपेक्षा के पात्र हैं वृद्ध लोग। आज का माहौल उपयोगिता पर आधारित है। यह मानसिकता वृद्ध लोगों को घर के कूड़े से भी दयनीय स्थिति तक पहूँचाती हैं। किसी न किसी प्रकार उन्हें घर से निकलाने की कोशिश नई पीढ़ी करती है। क्योंकि नयी पीढि के लोग सोचते हैं कि उनके लिए इलाज जैसी बातों पर रुपये नष्ट होने के बजाय उनसे और कोई फायदा नहीं मिलता है। जीवन की अंतिम वेला में आमदनी है तो स्थिति में थोडा कुछ परिवर्तन तो आ जाता है। ममताजी ने अपनी कहानियों में वृद्ध लोगों की इस त्रासदीपूर्ण जीवन पर विशेष ध्यान तो दिया है। 'तासीर' नामक कहानी की कंसल बाबू छोटी-छोटी बातों पर विशेषकर रुपये की हिसाब में अत्यधिक सख्त है। पाठकों को पहले ऐसा लगता है कि वह कितना स्वार्थी है। लेकिन वास्तविकता इससे बिल्कुल अलग है। उसकी आर्थिक परेशानी ने उसे उतना कंजूस बना दिया। लेकिन उसके पडोसवाले यह समझे बिना उस पर मज़ाक उठाते हैं और कुछ लोग उसके साथ बिना किसी सहानुभूति से व्यवहार भी करते हैं। यह उसे मानसिक रूप से एकदम तोडता है। कंसल बाबू अपने मकानों की किराए से हर महीने की पहली तारीख में सबका जैसे दूध, सब्जी, बिजली का हिसाब देता है। लेकिन उसके दूधवाले हर दिन पैसा मांगकर उसे परेशान करते हैं। उसके आयु को भी मानने के लिए वह तैयार नहीं है। "अर्जुन ने कहा, 'बाओजी मैं रोज़ की रोज़ दूध का दाम लूगा। 'देखो भई, हम पहली को हिसाब करते हैं। कोई देर सवेर हो तो कहो।' 'ऐसा है कि सानी पानी का खर्च बहुत बढ़ गया है। फिर आप ठहरे पके आम। कल तो आप टपक जाएँ

तो हम दूधका दाम किससे वसूलें। कोई लड़का बच्चा भी नहीं जो चुकता कर दें।' ....कंसल बाबू एकदम काठ हो गए। लड़खड़ाते कदमों से वे अंदर आए, मेज पर भगौना रखकर वे तख्त पर धम से बैठ गए। उन्हें लगा आज अपने अड्डे तक जाने की भी ताकत उनके पैरों में नहीं रही।"[1] उनकी आयु और स्वास्थ्य-स्थिति को न मानकर छोटी-छोटी बातों में भी उसे तंग कराने पर कंसल बाबू का सारा प्रतिरोध और ताकत को नष्ट हो गयी और इसका असर उसके शारीरिक तौर पर भी पड़ा।

आर्थिक तंगी के कारण दूसरों से अलग होकर रहनेवाले वृद्ध दम्पतियों की कहानी है 'वरदात'। बेटा उच्च पद पर काम करता और शहर में रहता है। माता-पिता के खर्च के लिए पैसे देने के लिए वह तैयार नहीं है। बेटा इतना बडे पद पर होने के कारण उनकी आर्थिक तंगी को समझने के लिए दूसरे लोग तैयार नहीं है। लोग सोचते हैं कि साहब कंजूस स्वभाव के कारण ऐसे हरकतें करते हैं। घर में चंदा के लिए आये हुए मित्रों से वह कुपित हो जाता है और अपनी विवशता को व्यक्त करते हुए कहता है "आप तो खामखाह नाराज़ हो गये। बात यह है कि, हमारी कोई आमदनी तो है नहीं, रिटयर्ड लाइफ है। पैंसठ की उमर हो चली। कब भगवान के यहाँ से बुलावा आ जाय, कह नहीं सकते।"[2] लेकिन साहब की विवशता को समझने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 186
2. ममता कालिया - काके दी हट्‌टी - पृ. 115

वृद्धावस्था में माँ-बाप की उपेक्षा करने के साथ ही साथ उनके पास बची-खुची बचन को भी छीन लेने के लिए भी आज की पीढ़ी नहीं हिचकते हैं। 'पण्डिताइन' नामक कहानी में अपने अनपढ माँ के नाम पर बैंक और डाकघर में होनेवाले बचत को झूठी पर झूठी कहकर अपनानेवाले बेटों को चित्र देख सकते हैं। माँ को छलाने में बेटे आपस में लडते हैं। "बडे बेटे ने माँ से कहा, 'नाम लिखे आवे के सौ-खतरे हैं अम्मा। तुम कुछ जानो न बूझो। कहीं बैंक में कोई तुमसे दस्तखत करवा ले तो लुट जाओ'। पण्डिताइन डर गयी, 'बेटा हम समझौ न बूझौ, तुम करो हिसाब किताब।"[1] माँ से ऐसा एक जवाब मिलते ही बेटे ने सभी खाते के अधिकार तो अपने-अपने नामों पर पारित किया और जल्दी ही जल्दी माँ का स्थान घर के उपेक्षित कमरे में बन गया। वृद्धावस्था में आमदनी न होने की विवशता के साथ उस समय रक्षक होने के लिए उत्तरदायी बच्चे ही उनकी लूटपाट करते हैं। यह वृद्ध लोगों के जीवन को और भी दर्दनाक बनाता है।

3.3.4 कम वेतन

आर्थिक विपिन्नता मानव को अधिक से अधिक काम करने के लिए मज़बूत बनाती है। लेकिन अपने परिश्रम के अनुसार वेतन न मिलने पर जीवन की स्थिति और भी विडंबनापूर्ण बन जाती है। वेतन में भेदभाव और पर्याप्त वेतन न देना जैसी बातों पर आवाज़ उठाने के लिए कभी-कभी आम जनता असमर्थ हो जाती है। नौकरी मिलने की मुसीबतें, नौकरी नष्ट होने का भय आदि उसकी

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 87

आवाज़ को छीन लेते हैं। ममताजी अपनी कहानियों में वेतन की कमी के कारण संघर्ष की गयी आम जनता के जीवन संघर्षों को प्रस्तुत करती हैं। 'बगिया' नामक कहानी के कुन्दन एक टेक्स्टइल स्टोर में काम करता है। कई छोटी-छोटी अस्थायी नौकरियों के बाद उसे स्टोर में नौकरी मिली। लेकिन वहाँ की स्थिति उतना आस्थाजनक नहीं है। छोटी-छोटी बातों पर भी गालियाँ के अंगारे बरसे मालिक और हमेशा ईर्ष्या के साथ व्यवहार करनेवाले सहकर्मी लोग होते हुए भी घर की आर्थिक स्थिति के कारण कुन्दन को वहाँ टिका रहना पडा। बिना किसी कारण से भी मालिक यों उस पर गाली बरसाता है - "सेठ हीरालाल भडक गयें, 'क्यों-क्यों न करो। बस मैंने कह दिया, नहीं करवाना तुमसे इस काउंटर का काम। तुम कपड़ा ज़्यादा नापते हो, कम बताते हो। कोई चार आने मीटर का कपटा तो है नहीं जो तुम्हें मनमानी करने दें। तुम तो हमें बेच खाओगे।'

'लेकिन सेठ जी, यह एकदम झूठ है। मैंने आज तक ज़्यादा कपड़ा नहीं नापा, आप खुद जाँच सकते हैं।'

'मेरी तो आँखों में मीटर लगा है कुन्दन लाल। काम करना है तो होश में करो'।"[1] कुन्दन की आर्थिक विवशता के समझकर मालिक उसके साथ क्रूर व्यवहार करता है। क्योंकि मालिक और सहकर्मी लोगों को पता है कि उसको इस नौकरी की कितनी ज़रूरत है। उसी प्रकार 'शॉल' नामक कहानी की ननकी एक स्कूल में ग्यारह सालों से चपरासिन का काम करती है। अभी तक उसकी नौकरी

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 61

स्थायी नहीं हुई। नौकरी स्थायी करने के लिए क्या करना है उसे इसका पता नहीं है। ननकी की आर्थिक दुविधाओं के प्रति अच्छी तरह जानते हुए भी सहकर्मी अध्यापिकाएँ सहायता करने के लिए तैयार हैं। "उस स्कूल में काम करते ग्यारह साल हो गये थे, लेकिन उसकी नौकरी अभी भी कच्ची थी। कच्ची नौकरी कैसे पक्की होती है, यह ननकी को मालूम नहीं था। इतना मालूम था कि कच्ची नौकरीवालों को पक्की नौकरीवालों से आधा वेतन मिला करता है।"[1] आर्थिक दुविधाओं से मुक्ति पाने के लिए आम जनता नौकरी करती है। लेकिन अन्य लोग उनकी परिस्थितियों और अज्ञानता को समझकर उनका शोषण करते हैं।

नौकरी के क्षेत्र में भेदभाव की शिकार है 'लगभग प्रेमिका' की सुजाता। वह तीन-सालों से एक विमन्स कॉलेज में प्रवक्ता है। लेकिन उसकी नौकरी तो अभी भी अंशकालिक है। हर साल उस कॉलेज में नयी-नयी नियुक्तियाँ होती हैं और पदोन्नतियाँ भी। लेकिन सुजाता सालों से अंशकालिक पद के वेतन पर पूर्णकालिक काम कर रही है। कॉलेज में बिना किसी अनुभव से भी कई लोग वहाँ पूर्णकालिक अध्यापक बन जाते हैं। उनके बारे में सुजाता इस प्रकार कहती है, "नयी साड़ियों में जो नये चेहरे आते, उनके बारे में पता चलता, किसी का पिता घडियों का सबसे बड़ा व्यापारी है, तो किसी का चाचा इनकमटैक्स कमिश्नर है। मेरी जडें इतनी पक्की नहीं थीं।"[2] सुजाता के पति को भी स्थायी नौकरी नहीं है। इसलिए माँ-बाप और घर का खर्च चलाने के लिए उसे एक नौकरी की ज़रूरत है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - जाँच अभी जारी है - पृ. 112
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 130

सिफारिश और रिश्वतखोरी देने की क्षमता न होने के कारण उसे बिना किसी शिकायत से वहाँ ज़ारी करना पड़ती है।

3.3.5 डॉक्टरों की आर्थिक लालच

इलाज करना सबसे महत्वपूर्ण समाज सेवा है। इसलिए डॉक्टर को हम ईश्वर के समान मानते हैं। पहले हम इलाज को एक पुण्य प्रवृत्ति मानते थे। लेकिन आगे जाने पर इलाज को एक नौकरी के रूप में मानने की प्रवृत्ति रूपायित हुई। धन केन्द्रित मानसिकता और प्रोफनल कोर्स की भारी शुल्क आदि ने इसे धन कमाने का रास्ता बनाया। इसलिए अस्पताल को आज एक धंधा मात्र माना जाता है। मल्टी स्पेश्यालिटी अस्पतालों की बढ़ती हुई संख्या इसका प्रमाण है। एक सूपर स्पेश्यालिटी आई अस्पताल का वर्णन ममताजी ने 'इलाज' नामक कहानी में इस प्रकार किया है - "मिन्टो पार्क से मीनाक्षी आइ हॉस्पिटल की बिजलियाँ जगमगाती दिखती। हॉस्पिटल डिस्नेलैण्ड जैसा जादुई लोक लगने लगता। फाटक के आगे कारों की कतार अस्पताल की कामयाबी का ऐलान करती और फाटक से सटी दवा की दुकान पर ग्राहकों की भीड़ जता देती कि कलकत्ते में आँख के मरीज़ दिन भर बढ़ रहे हैं।"[1] ऐसे अस्पतालों से पहले ही जनता के दिमाग में ऐसी एक धारणा जमी है कि सिर्फ स्पेश्यालिटी अस्पताल और वहाँ के डाक्टर ही कामयाब है और भारी भरकम होना उनकी कामयाबी का प्रमाण है। बड़ी संख्या की तनख्वाह स्टाटस आदि के कारण डॉक्टर भी ऐसे अस्पतालों में काम करना चाहते हैं। 'पर्याय

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 38, 39

नहीं' नामक कहानी के डॉ. नीना के द्वारा ममताजी डॉक्टरों की इस मानसिकता की पर्दाफाश करती हैं। डॉ. सुनील एक नर्सिंग होम में काम करता है। उनकी पत्नी नीना को इसमें एतराज है। उसकी राय में किसी मल्टी स्पेश्यालिटी या मेडिकल कॉलेज में काम करने पर जेब भर जाएगी। "कई बार नीना को झुँझलाहट होती कि कैसा इतना चुस्त-दुरुस्त सा दिखनेवाला उसका पति महज आदर्शवाद की झख में अपने दिवंगत माता-पिता का संचित धन इस नर्सिंग होम में झोंकता जा रहा है। उनके बैच के अन्य कामयाब छात्र बड़े शहरों में किसी न किसी अच्छे अस्पताल या मेडिकल कॉलेज से संबद्ध हो गए। इधर डॉ. सुनील ने इस ग्रामीणों क्षेत्र में अपना नर्सिंग होम खोला और पहले ही हफ्ते में बाहर तख्ती लटका दी -'निःशुल्क सलाह'। जी जल गया डॉ. नीना का। उसने तुरंत पति से कहा, तख्ती के नीचे अपना नाम लिखवाओ। यह धर्माचार सिर्फ तुम्हारा होगा। मैं तो सशुल्क सलाह दूँगी।"[1] आज के डॉक्टर इलाज करने से भी ज़्यादा शुल्क के बारे में सोचते हैं।

मानवीयता, सहानुभूति, दया आदि को प्रधानता देने के लिए उत्तरदायी डाक्टर या अस्पताल आज कई अमानवीयताओं का पक्षधर बन गये हैं। इसका कारण है अर्थ केन्द्रित मानसिकता। ऐसे डॉक्टर और अस्पताल इलाज देने के पहले ही शुल्क अदा करवाते हैं। मरीजों के हाथ के सारे रुपये हडपना इनका लक्ष्य है। डॉ. नीना एक दुर्घटना में घायल लोगों के इलाज करने के पहले ही फीस अदा करने के लिए आदेश देती है। 'पर्याय नहीं' की यह डॉ. नीना वास्तव में इन

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 195

डॉक्टरों का प्रतिनिधि है जो इलाज को पैसा कमाने का ज़रिया मानते हैं। गहरी चोट लगाकर अस्पताल में लायी गयी औरत और उसकी बच्ची का इलाज करने के लिए नीना तैयार नहीं है। क्योंकि उस स्त्री के पति के पास तब पर्याप्त रुपये नहीं थे। इसलिए सिर्फ ड्रेसिंग करके वापस किया है। "औरत के पति ने काउंटर पर अपनी जेब खाली कर दी। उसे पास सिर्फ छह सौ बावन रुपये थे। 'यह एडवांस आप जमा कर लीजिए। बाकी पैसों का इंतजाम मैं शहर से लाकर कर दूँगा। आप मेरा घर बचा लीजिए डॉक्टर साब।' नीना ने कहा, 'इन दोनों को भर्ती करनी पडेगी। आपकी चोट की ड्रेसिंग कर देते हैं। आप कल तक कम-से-कम एक हज़ार एडवांस और जमा कर दें। वैसे मरीज को देखकर ही अंदाज लगेगा।' सुनील ने अपनी डॉक्टर पत्नी की तरफ थोडा चीखकर देखा। जिन हृदयहीन डॉक्टरों के बारे में उसने कहानियों में पढ़ रहा था या फिल्मों में देखा था, नीना इस वक्त उसे वैसी लगी।"[1] जिन लोगों के इलाज नीना ने किया, उनके हाथों से सबकुछ छीन लेने में उसे कोई गलती नहीं लगी। क्योंकि वह सोचती है कि पढ़ाई के लिए उससे ज़्यादा तो उसने खर्च किया था, उन सबको मरीजों से वसूल करना है। अस्पताल का बिल देखकर एक ने नीना से पूछा - "एक दिन में इतना खर्च तो मुम्बई, दिल्ली के अस्पतालों में भी नहीं होता डॉक्टर साब, किसी ओर का बिल तो नहीं दे दिया आपने।"[2] नीना को हमारे सामने प्रस्तुत कर ममताजी यह व्यक्त दिलाना चाहती हैं कि आज का डॉक्टर ईश्वर का पर्याय नहीं है। उसे ईश्वर मानने की पुरानी धारणा

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 197
2. वही - पृ. 198

आज के ज़माने में सही नहीं है। इस दृष्टि से कहानी का शीर्षक भी काफी समीचित है। आज अस्पतालों में आते ही अस्पतालवाले इलाज के पहले कई टेस्ट करने के लिए आदेश देते हैं। इसमें किन-किन टेस्ट की ज़रूरत है या नहीं, इसके बारे में मरीज अनभिज्ञ है। मरीज डॉक्टरों पर पूरा विश्वास रखकर उनके आदेशों को स्वीकार करते हैं। आम जनता के विश्वास और अज्ञता का लाभ उठाकर या डराकर वे उन लोगों से टेस्ट कराते हैं। किसी न किसी प्रकार पैसा लूटना ऐसी मल्टी स्पेश्यालिटी अस्पतालों की नीति है।

'इलाज' कहानी की अभीधा प्रूफ रीडर का काम करती है। अधिक काम करने के कारण उसकी आँखों से पानी आना शुरू हुआ। अभीधा शहर के जानेमाने एक अस्पताल में गयी। लेकिन वहाँ के डॉक्टर और नर्स अभीधा को मिलते ही इलाज करना शुरू किया और भिन्न-भिन्न टेस्ट के लिए भिजवाया। अभीधा को क्या कहना है, यह सुनने के लिए डॉक्टर तैयार नहीं है। ऐसी स्थिति में अभीधा ने डॉक्टर के विरुद्ध घोर विरोध प्रकट किया। "अभीधा ने अपनी दोनों आँखों पर हाथ रखते हुए पूछा', 'मैं जानना चाहती हूँ आप क्या करने जा रहे हैं।'

'मैं आपको जवाब देना ज़रूरी नहीं समझता'।

'जानना मेरा अधिकार है'।"[1] लेकिन अभीधा के सारे विरोधों को नगण्य मानकर डॉक्टर बलपूर्वक ही उसका इलाज करना शुरू किया। डॉक्टर एक बज़र दबाने पर कई नर्सें प्रकट हुईं। उन लोगों ने अभीधा को जाने से मना कर दिया।

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 42

आज को कई जाने-माने अस्पतालों के भीतर यह ही हो रहे हैं। एक मरीज को मिलने पर अन्य अस्पतालों में या डॉक्टरों के पास जाने की अनुमति न देकर किसी-न-किसी प्रकार उसकी जेब खाली करते हैं। इस कहानी में ममताजी ऐसे अस्पतालों की असलियत को खुलकर दर्शाती है। साथ ही साथ एक डॉक्टर कैसे होना चाहिए इस पर भी ममताजी प्रकाश डालती है। 'पर्याय नही' नामक कहानी में ममताजी लिखती है - "डॉक्टर दरअसल, हृदय से थोड़ा कलाकार, थोडा नेता और थोडा समाज सुधारक था। साथ ही वह भावुक भी था। वह तुरंत रोगी की जगह अपने को रखकर सोचता और पाता कि समाज में सिर्फ आर्थिक असमानता नहीं, हर तरह की, हर स्तर पर असमानता है। इसी असमानता के चलते मनुष्य इतना दीन और दुःखी है। डॉक्टर हर एक के दुःख से उद्वेलित रहता।"[1] ममताजी एक आदर्श डॉक्टर के रूप में डॉ. सुनील टंडन को हमारे सामने प्रस्तुत कर ऐसे डॉक्टरों की एक पीढ़ी के उभर आने की आवश्यकता पर ज़ोर देती है।

3.3.6 कलाकारों और साहित्यकारों की आर्थिक विषमता

कला और साहित्य संस्कृति का केन्द्र है। इनसे आजीविका चलानेवालों की संख्या तो बहुत अधिक है। लेकिन आज के ज़माने में इससे आजीविका चलाना मुश्किल है। अस्थायी वेतन के साथ समाज में कम हो गया इसका महत्व भी इसका कारण है। कला और साहित्य को अनावश्यक एवं समय बीतने की वस्तु मात्र माननेवालों की संख्या बढ़ती जा रही है। 'वसंत सिर्फ एक तारीख' के चंदा और

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 196

उसके पति साहित्यकार है। दोनों साहित्य को गंभीर काम मानते हैं। लेकिन धीरे-धीरे दोनों समझ जाते हैं कि मात्र साहित्य सेवा से जीवन आगे नहीं चलेगा। “दरअसल हम लेखन को समर्पित दम्पति थे। सारी दोपहर हम कलम घसीटते थे, शामें काफी हाउस में बीतती थी। सुबह हम अखबारों के दफ्तरों में ताक-झाँक करते पाये जाते थे। ये सब अपने आप में पूर्णकालिक काम थे। फिर भी समाज के मान्य अर्थों में हम बेरोज़गार थे। हर महीना जब बीत जाता, हमें हल्का अचम्भा और गहरी खुशी होती कि हम भूख, महँगाई, बीमारी और दुर्घटनाओं को चमका देते हुए एक और महीना ज़िन्दा रह लिये।”[1] ममताजी व्यक्त करती है कि साहित्यकार को बेरोज़गार कहना ही बेहत्तर है। क्योंकि दोनों की स्थिति में ज़्यादा बदलाव तो नहीं है। इसलिए चंदा साहित्य सृजन को अंशकालिक काम के रूप में रखकर आजीविका चलाने के लिए एक नौकरी ढूँढ़ती है।

कलाकार की आर्थिक दुविधाओं का सशक्त चित्रण है ‘बेतरतीब’ नामक कहानी। नाटककार आनन्द जनप्रिय अभिनेता है, समाचार पत्रों में भी उसके बारे में खबरें आ जाती है। लेकिन कहानी में लेखिका व्यक्त करती है कि सिर्फ तारीफ से जी नहीं सकते, जीने के लिए पैसे की ज़रूरत है। नाटक का मंचन महीने में कई बार मिलने पर भी उसके पास बाकी कुछ भी नहीं रह जाते हैं। क्योंकि सभी अभिनेताओं और अन्य सहयोगियों को बाँटने पर आनन्द का हाथ खाली हो जाती है। इसलिए उसे घर जाने की इच्छा को भी छिपाकर रहना पडा। मंच में आदर्श

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 211

पात्रों का वेश पहनकर दर्शकों को प्रभावित करनेवाला आनन्द अपनी आर्थिक मुसीबत के कारण बस में चोर के समान यात्रा करता है। "वह बीस पैसे की टिकट को मोड़ता-तोड़ता बस में बैठा रहा। केन्द्र का स्टॉप आने पर उठता-उठता वह बैठ गया। उसे आलस आ रहा था। सोचता रहा, अगर रास्ते में चेकर नहीं आया तो इन्हीं बीस पैसों में वह चालीस पैसों की दूरी घर तक, नाप सकेगा।"[1]

साहित्य और कला को व्यवसाय या धंधा माननेवालों की स्थिति इसका ठीक विपरीत है। उन लोगों को पता है साहित्य और कला को कैसे बाज़ारीकृत करना है। 'कवि मोहन' कहानी के मोहन, 'सेमिनार' कहानी के साहित्यकार आदि इसका द्रष्टव्य है। 'सेमिनार' कहानी में ममताजी ऐसे साहित्यकारों पर इशारा करती हैं कि वे साहित्य पाठकों के लिए नहीं अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए लिखते हैं। ऐसे साहित्यकारों का लक्ष्य प्रसिद्धि, सम्मान, धन, प्रशंसा आदि हैं। ऐसे साहित्यकार हर रचना को सम्मान का लक्ष्य कराकर लिखता है। ऐसे साहित्यकारों से पाठकों को और समाज को भी कोई फायदा नहीं है। 'कवि मोहन' कहानी का मोहन साहित्य को अर्थोपार्जन का आसान रास्ता मानता है। साहित्यकार होने के कारण मिलते फायदाओं पर लक्ष्य करके मोहन ने साहित्य क्षेत्र में प्रवेश किया है। मोहन के मन में हमेशा ऐसे सपने हैं कि प्रतिष्ठित और कीर्तिमान बनना, ज़ोरदार तालियाँ मिलना, पैसा कमाना, फिल्मों का क्षेत्र में प्रवेश करना। कहानी की पंक्तियाँ हैं "एक दिन वह मशहूर हो जाएगा। कवि सम्मेलनों में तालियों की गड़गड़ाहट के

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 74

बीच कविता पाठ किया करेगा। उसकी रचनाएँ रेडियो पर सुनने के लिए चौराहों पर भीड़ लग जाया करेगी। संपादक उसके सामने पानी भरेंगे। फिल्म निर्माता उसके पीछे दौडेंगे। चमकदार लड़कियों से घिरा वह और भी जानदार कविताएँ लिखा करेगा।"[1] खुद को विख्यात करने के लिए साहित्य के क्षेत्र में प्रवेश करनेवाले अधिकाँश साहित्यकारों का प्रतिनिधि है मोहन।

समझ सकता है कि हमारे देश का कोई भी क्षेत्र अर्थ के इस जादूई प्रभाव से मुक्त नहीं है। इस प्रभाव से उत्पन्न आर्थिक विपन्नता से जनता को बचाने का उत्तरदायी है सरकार। राजकिशोर जी के अनुसार "मुनाफे की इस अर्थव्यवस्था के कारण जो लोग गंभीर आर्थिक संकट के शिकार हो जाते हैं, उनकी न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करना सरकार का काम है।"[2] लेकिन सच्चाई तो यह है कि अर्थ की धुरी से राजनीति का क्षेत्र भी मुक्त नहीं है। देश की भविष्य और सुरक्षा को कायम रखने के महत्वपूर्ण घटक जैसे राजनीतिज्ञ, अधिकारी, अफ्सर, पुलीस आदि में भी अर्थ का शासन चल रहा है। ममताजी अपनी कहानियों में राजनीति से संबन्धित विभिन्न क्षेत्रों और वहाँ के हलचलों पर प्रकाश डालती है।

3.4 राजनीति

राजनीति शब्द अंग्रेज़ी के 'पोलिटिक्स' का हिंदी अनुवाद है। इसका उद्‌भव यूनानी शब्द 'पोलिस' से हुआ है और इसका अर्थ है 'नगर', 'समुदाय'।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 300
2. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - पृ. 45

राजनीति तो राष्ट्र, राज्य, प्रजातंत्र, संविधान, राजनीति दल आदि विविध घटकों से रूपायित होती है। इसका उद्देश्य है कि आत्मनिर्भर और सुसंगठित एक समाज का सृजन करना। अर्थात् सामाजिक व्यवस्था को सुसंगठित बनाने के लिए क्रियान्वित प्रक्रिया या गतिविधि है राजनीति। ईस्टन ने राजनीति को परिभाषित करते हुए लिखा है - "वे समस्त प्रकार की गतिविधियाँ राजनीति हैं, जो सामाजिक नीति के निर्माण और क्रियान्वयन से अन्तर्ग्रस्त होती हैं।"[1] इसलिए कहती है कि राजनीति राज्य शासन के नीतियों और कार्यों से संगठित और गढ़ती एक गतिविधि है। जितेन्द्र वत्स के शब्दों में "राजनीति से तात्पर्य उस शास्त्र से है जो राज्य संचालन संबन्धी नीतियों का अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह विशेषतः संविधान से संबन्ध होता है, जिसे किसी देश का संचालन कार्य उसके जीवन में व्यवहार रूप में परिणत करने का भरसक प्रयास करता है।"[2] समकालीन संदर्भ में सबसे अधिक संतुलित और उपयुक्त परिभाषा के रूप में कुछ आलोचकों ने श्यामलाल वर्मा के द्वारा प्रस्तुत इस परिभाषा को समुचित माना है, "राजनीति शक्ति और प्रभाव संबन्धी वह गत्यात्मक गतिविधि है, जिसके द्वारा व्यक्ति या व्यक्ति समूह सहयोग एवं द्वन्द्व के माध्यम से अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए राजनीतिक संरचनाओं, प्रक्रियाओं एवं क्रियाविधियों की औचित्यपूर्ण सत्ता के प्रयोग का प्रयास करते हैं।"[3] वास्तव में राजनीति एक व्यापक शब्द है। इसलिए इसका एक परिपूर्ण परिभाषा क्या है इस

1. ईस्टन - ए फ्रेम वर्क फॉर पोलिटिकल एनॉलइसिस - पृ. 134
2. जितेन्द्र वत्स - साठोत्तरी हिंदी कहानी में राजनीतिक चेतना - पृ. 17
3. श्यामलाल वर्मा - आधुनिक राजनीति के सिद्धान्त - पृ. 95

पर आलोचकों में मतभेद है। संक्षिप्त रूप में यह कहा जा सकता है कि राजनीति राज्य संचालन की नीतियों का अध्ययन है।

3.4.1 स्वतंत्रता के बाद भारत का राजनीतिक परिवेश

आज़ादी के बाद भारतीय राजनीति में बहुत सारे परिवर्तन तो आ गए हैं। भारत की अपनी सरकार का रूपायन हुआ है और नयी सरकार शासन का कार्यभार संभालने लगी। भारत की नयी सरकार और जनप्रतिनिधियों के प्रति भारतीय जनता ने पूर्ण भरोसा किया था। स्वस्थ और स्वतंत्र जीवन जीने का सपना वह देखने लगी। नयी सरकार ने भारत में लोकतांत्रिक व्यवस्था में शासन शुरू किया। लेकिन भारतीय जनता ने लोकतांत्रिक व्यवस्था पर जितना विश्वास रखा, उन सब से धीरे-धीरे वंचित होने लगी। अधिकार का सुख, धनलोलुपता, स्वार्थता आदि से राजनीतिज्ञों के बीच छल, कपट, और भ्रष्टाचार पनपने लगा। "लोकतंत्र बहुत तेज़ी से भीड़तंत्र में परिवर्तित होता जा रहा है। इस भीड़तंत्र ने एक ओर जहाँ अपराधियों व माफिया तत्वों के लिए राजनीति में द्वार खोल दिए हैं, वहीं लोकतांत्रिक आदर्शों व मूल्यों को पाखण्ड में बदलना प्रारंभ कर दिया है। इस भीड़तंत्र में कहाँ कुछ जाता है, किया कुछ जाता है और इससे भ्रष्टाचार को विशेष पोषण प्राप्त है।"[1] राजनीतिज्ञों की ऐसी लोलुपता से भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था का चेहरा एकदम बदल गया।

---

1. नरेन्द्र मोहन - आज की राजनीति और भ्रष्टाचार - पृ. 257

3.4.2 वर्तमानकालीन राजनीतिक दौर

भारतीय राजनीति में अनैतिकता, सिद्धान्तहीनता, अवसरवाद का मूर्तरूप अब विद्यमान है। राजनीति में हो या चुनाव में हो अपराधी तत्वों, हिंसा, काले धन, जातिवाद, सांप्रदायिकता का बोलबाला है। मौजूदा संदर्भ में फाँसीवाद को खतरा भी मँडराता है। साथ ही राजनेताओं और नौकरशाहों का नैतिक पतन, भ्रष्टाचार आदि ने भारत की स्थिति को और भी विडंबनापूर्ण बना दिया। भारत की आज़ादी और लोकतांत्रिक व्यवस्था पर ऐसे राजनीतिज्ञों और सरकारों दोष लगाते हैं। आज के इस माहौल के पीछे उदारीकरण और भूमण्डलीकरण के हाथ को भी छिपा नहीं सकते हैं। भारत के सारे प्रमुख राजनीतिक दल देश के धनी वर्गों और अंतराष्ट्रीय ताकतों के दबाव में है। इन्होंने उन्हें उदारीकरण और भूमण्डलीकरण का समर्थक बनाया। खुले बाज़ार की नीति को अपनाने पर देश के अन्दर नवसाम्राज्यवादी शक्तियों का प्रवेश करना शुरू हुआ। देश उनके धन का मुकाबला नहीं कर सका।

भूमण्डलीकृत शक्तियाँ राजनीति के विभिन्न पहलुओं पर हस्तक्षेप करती है। एक देश के परस्पर विरोधी दो राजनीतिक दलों को एकसाथ आर्थिक मदद कर उनकी नीतियों को वे प्रभावित करती हैं। इसी प्रकार देश में गृहयुद्ध आसानी से पैदा कराती हैं। यह देश को कमज़ोर और अंताराष्ट्रीय शक्तियों का गुलाम भी बनाता है। किशन पटनायक के मुताबिक "राज्य व्यवस्था के संबन्ध में एक सामान्य समझदारी यह है कि राज्य कितना भी गरीब क्यों न हो, राज्य के अन्दर ऐसा कोई समूह या संस्था नहीं होनी चाहिए जिसके पास राज्य के मुकाबले अधिक

हिंसक शक्ति हो या अधिक धन का एकत्रीकरण हो।"[1] लेकिन देश में घुस गये अंताराष्ट्रीय शक्तियों ने राजनीतिज्ञों को यह सिखाया है कि राजनीति एक धंधा है और धन कमाने का आसान रास्ता है। इस धंधे में फँसे राजनीतिज्ञ इससे अधिक फायदा उठाने के लिए पहले धनाढ्य लोगों से और बाद में अपराधियों से भी संबन्ध बनाते हैं। धनी व्यापारियों और अपराधियों के साथ होनेवाला यह गठजोड भारतीय राजनीति को ऐसे एक बिन्दु पर पहूँच लाया है कि राजनीति तो अपराध रोकने के बजाय अपराध की मुख्य धारा ही बनी है। ऐसी स्थिति में राजनेता जन साधारण की आर्थिक समस्याओं को नज़रअन्दाज़ करते हैं। इसलिए किशन पटनायक ने इस प्रकार लिखा है "किसी गरीब देश में अगर बेरोज़गारी और आर्थिक विषमता बढ़ती जायेगी तो राजनीति और समाज का चरित्र अप्रभावित नहीं कर सकता।"[2] जनसाधारण की आर्थिक समस्यायें, अपराधियों के साथ राजनीतिज्ञों का गठजोड आदि ने देश में भ्रष्टाचार को पनपने दिया।

3.4.3 भ्रष्टाचार

आज़ादी के बाद के भारत की सबसे बडी समस्या भ्रष्टाचार ही है। गरीबी, बेरोज़गारी, महंगाई, सांप्रदायिकता, आतंकवाद, सीमा सुरक्षा आदि के समान भ्रष्टाचार भी अधिक चर्चा का विषय है। इससे विचलित कोई भी वर्ग आज भारत में मौजूद नहीं है। राजनीतिज्ञ ही नहीं पूरे प्रशासनिक वर्ग इसमें फँस गये हैं।

1. किशन पटनायक - तीसरी दुनिया के नज़रिए से लोकतंत्र - पृ. 25
2. वही

राजकिशोर जी ने भारत के भूतपूर्व प्रधानमंत्री राजीव गाँधी द्वारा उद्धृत एक बयान को लेकर लिखा है - "राजीवगाँधी ने 1984 में सत्ता संभालने के जल्द बाद ही मुम्बई में यह बयान दिया था कि सरकार गरीबों के लिए जो एक रुपया खर्च करती है, उसमें से 15 पैसा ही उन पर पहूँच पाता है। शेष बीच के लोगों द्वारा हडप लिया जाता है। 15 पैसे और 85 पैसे का यह हिसाब राजीव गाँधी ने किसी सर्वेक्षण से नहीं निकाला था - यह उनका निजी मोटा अनुमान था। दिलचस्प यह है कि यह वाक्य आज तक भारत में भ्रष्टाचार के बारे में सबसे ज़्यादा उद्धृत किये जानेवाला बयान है।"[1] भ्रष्टाचार कई सालों से भारत का सबसे गरम मुद्दा है। इसे हाथियार बनाकर विपक्ष चुनाव जीते हैं। लेकिन किसी भी दल या सत्ता इसे मिटाने के लिए तैयार नहीं है। उनके लिए यह चुनाव जीतने का एक औजार मात्र है। भ्रष्टाचार फैलने और उसकी जडों की खोज करते समय सबसे पहला ध्यान हमारे समाज की बढती विलासिता, आडंबरप्रियता, उपभोगवादी संस्कृति और आधुनिक विलास की ओर जाता है। यह है वास्तव में भ्रष्टाचार का जनक। ऊपर से उन्मुक्त बाज़ारवाद, उदारीकरण, ग्लोबीकरण की नीतियों ने इस प्रवृत्ति को नई ऊँचाइयों पर पहूँचाया है। यह कहा नहीं जा सकता है कि उदारीकरण भ्रष्टाचार की शुरुआत करता है। लेकिन भ्रष्टाचार को नियंत्रण के बाहर कराने में उदारीकरण का भी हाथ है।

विलासिता वास्तव में अत्यधिक गैर बराबरी का नमूना है। विलासिता का मतलब यह है कि अनावश्यक सुख। यह दूसरों के सुखों को अर्थात् उनके

---

1. राजकिशोर - उदारीकरण की राजनीति - पृ. 11, 12

अधिकारों को छीनकर प्राप्त करती है। विलासिता और आडंबरप्रियता अधिक लोगों तक पहूँचाने में उपभोग संस्कृति भी मुक्य भूमिका अदा करती है। विकासशील देशों में गैर बराबरी पैदा करने का कारण ही उपभोक्तावाद है। इसलिए कहती है "अगर उपभोक्तावाद का प्रसार ही आधुनिक विकास है, तो भ्रष्टाचार आधुनिक विकास की आवश्यक बुराई है।"[1] भ्रष्टाचार सामान्य नागरिक से ईमानदार और स्वस्थ जीवन बिताने का हक छीन लेता है। बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार इस बात का गवाह है कि समाज के सचेत लोग भी इसे संचालित कराने में विफल हो रहे हैं। राजनीतिज्ञों और नौकरशाहों का गठजोड़ भ्रष्टाचार की जड़ों को और भी मज़बूत बनाता है। पूरी प्रशासनिक व्यवस्था भ्रष्टाचार की कीचड़ में डूब गयी है। जहाँ प्रशासन व्यवस्था की गलतियों, आय और खर्च तथा जीवन स्तर की गैर बराबरियाँ बढ़ती हैं वहाँ भ्रष्टाचार ज़रूर पनपता है।

3.4.4 ममता कालिया की कहानियों में राजनीति

साहित्य अपने युग और समाज का प्रतिबिंब है। इसमें राजनीति भी शामिल है। इसलिए साहित्य राजनीति से भी संपृक्त है और साहित्य क्षेत्र का एक अनिवार्य अंग भी है। अज्ञेय जी के अनुसार "साहित्य और राजनीति का असर एक-दूसरे पर होने से रोका भी नहीं जा सकता चाहे राजनीति का युग हो, चाहे साहित्य का।"[2] राजनीति समाज की रीढ़ की हड्डी है। इसलिए जब देश की

---

1. किशोर पटनायक - तीसरी दुनिया के नज़रिए से लोकतंत्र - पृ. 186
2. अज्ञेय - त्रिशंकु - पृ. 74

राजनीति लड़खड़ाती है तो उसे सुधारना वहाँ के साहित्यकारों का दायित्व है। ममता कालिया भी इससे अवगत हैं। लेकिन राजनीति पर सीधे ढ़ंग से कोई संबन्ध और लगाव उनका तो नहीं है। लेकिन साहित्यकारों का राजनीतिक गतिविधियों पर ध्यान देना स्वाभाविक है क्योंकि साहित्यकार हमेशा समाज पर और समाज से संबन्धित सारी हरकतों पर नज़र रखते हैं। यह उनका दायित्व है। आलोचक किशन पटनायक का वक्तव्य है "मेरा अपना सोचने का ढ़ंग राजनीतिक है। राजनीति में मेरी कोई उपलब्धि नहीं है। लेकिन समाज और दुनिया को समझने के लिए राजनैतिक कर्म एक बहुत बडा माध्यम प्रतीत हुआ है। राजनैतिक कर्म में ऊँचे और घटिया से घटिया स्तर का मानवीय चरित्र और कार्य कलाप दिखाई पड़ता है, जिनका अनुभव समझदारी को बढ़ाता है। विशेषकर विकासशील देशों की विद्रोहात्मक राजनीति का आकलन करने के लिए यह अनुभव और समझदारी ज़रूरी है।"[1] ममता कालिया वर्तमान राजनीतिक परिस्थितियों पर अपनी नज़र और समझदारी अपनी कहानियों के द्वारा प्रस्तुत करती है। राजनीतिज्ञों के मुखौटे की चीरफाट भी वे करती हैं। राजनीति तो प्रशासनिक व्यवस्था का एक अंग मात्र है, लेकिन राजनीति में पूरी प्रशासनिक व्यवस्था को सुधरने की ताकत भी है। इसलिए साहित्यकार राजनीति के क्षेत्र में थोडा ध्यान अधिक देते हैं। ममता कालिया अपनी कहानियों के द्वारे राजनेताओं के खोखलेपन, भ्रष्टाचार आदि को व्यक्त करते हुए राजनीति से संबन्धित अन्य प्रशासनिक क्षेत्रों की असलियत को भी व्यक्त करती हैं।

---

1. किशन पठनायक - विकल्पहीन नहीं है दुनिया - भूमिका से

ममताजी यह व्यक्त कराना चाहती है कि भारत की प्रशासनिक व्यवस्था आम जनता से कितना दूर है।

3.4.4.1 राजनीतिज्ञों का आर्थिक लालच

पहले राजनीति में आने का सिर्फ एक ही अर्थ था कि देश की सेवा करना या जन की कल्याण करना। लेकिन ज़माने के बदलने के अनुसार राजनीति का अर्थ भी बदल गया। राजनीति को आज लोग एक नौकरी के रूप में या एक धंधे के रूप में मानते हैं। देश की सेवा से अपने की सेवा के रूप में इसका अर्थ बदल गया। अपने को सुरक्षित रखना, अपने परिवार की इज्जत बढ़ाना, धनी बनाना आदि के लक्ष्य में लोग आज राजनीति में आ जाते हैं। यह बिल्कुल ठीक है कि "आज का सार्वजनिक नेता राष्ट्रसेवी के स्थान पर आत्मसेवी बनकर रह गया।"[1] ऐसे राजनेता जनता के बीच काम करना नहीं चाहते हैं, सब ऊँचे पदों में या मंत्रिमण्डलों में मौजूद होना चाहते हैं। क्योंकि उन्हें पता है जनता के बीच काम करने पर कोई फायदा या लाभ नहीं है।

कहा जाता है कि आज राजनीति पूर्ण रूप से धन का खेल है। क्योंकि अब चुनाव में जीतने के लिए जनता के वोट के साथ पैसा भी खर्च करना पडता है। इसलिए कुछ राजनेताओं को चुनाव के खर्च के लिए देश और विदेशों के धनाढ्यों के सामने सिर झुकाकर खडा होना पड़ता है। इसलिए सत्ता में आने के बाद उन्हें उन धनाढ्यों की इच्छा के अनुसार शासन और राज्य की नीतियों को बदलना

1. डॉ. महेन्द्र चतुर्वेदी - हिंदी उपन्यास : एक सर्वेक्षण - पृ. 180

पडता है। उनकी अनैतिकता, छल, बेइमानी आदि से भी सहमत होता पडता है। 'कामयाब' कहानी के हाफिज़ भाई राजनेता है लेकिन वह लखनऊ के नवाब और उसकी पत्नी के धन के बल पर विधायक बन गया। "बेगम लखनपुर ने रुपया - पैसा खर्च कर उन्हें लखनपुर से विधायक बनवा दिया।"[1] इसलिए ही हाफिज़ भाई ने परिवार और देश से ज़्यादा प्रधानता बेगम लखनपुर को दी है। हर क्षण हाफिज़ ने बेगम के आदेशों का पालन करने के लिए ताज्जुब है। "अगर बेग़म लखनपुर को रात में नींद न आती तो वे फ़ौरन हुकम करतीं, 'हाफिज़ साहब को बुलाया जाया'। नवाब लखनपुर बिस्तर पर लेटे-लेटे कान खड़े कर लेते। उन्हें नींद बहुत कम आती और जब आती तो नींद से ज़्यादा खर्राट टूटते, उनकी नींद भी खुल जाती। उन्हें घर में मेहमानों का या बाहरी आदमियों का आना पसंद नहीं था पर हाफ़िज़ भाई के आने पर वे नहीं भड़कते। हाफ़िज़ थे भी बड़े व्यवहारकुशल। सबसे पहले नवाब साहब के पास बैठकर उनकी खैरियत पूछते, फिर बड़ी मुहब्बत से कहते, नवाब साहब क्या लीजियेगा, पानडली या सिगरेट?'......... इसके बाद दीवानखाने में हाफ़िज, बेगम लखनपुर के लिए, किस्सों की पिटारी खोलकर बैठ जाते। बेगम लखनपुर हँसते-हँसते लोटपोट हो जातीं। कई बार के सुने हुए किस्से भी वे उसी शिद्दत से सुनतीं।"[2] देश या जनता की सेवा से भी अधिक ध्यान धनी लोगों के पैर दबाने के कामों में ऐसे नेता देते हैं। ऐसे अधिकारी वर्ग देश की स्थिति को और भी बरबाद कराते हैं।

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 26
2. वही - पृ. 26, 27

हाफ़िज़ भाई अपने को कामयाब समझता है। उसके अनुसार कामयाब माने धनी होना है। इसलिए वह धन प्राप्त होनेवाले रास्ते के बारे में नहीं सोचता है। किसी न किसी प्रकार धन कमाना उसका एकमात्र लक्ष्य है। मित्र राजेश हाफ़िज़ भाई से कहता है "हाफ़िज़ भाई आप पैसे को बहुत बड़ी ताकत समझते हैं और कामयाबी को दौलत।"[1] हाफ़िज़ भाई की राय है कि कामयाबी और तसल्ली के बीच कामयाबी चुनना प्राक्टिकल है। तसल्ली से पेट नहीं भरता है। इसलिए वह देश की सेवा कर तसल्ली पाने से ज़्यादा दौलत कमाकर कामयाबी बनने की कोशिश करता है। धीरे-धीरे उसके महलों की संख्या, बैंकों का बालन्स सब बढ़ते हैं। वह राजनीति से लखनऊ के विधायक ही नहीं प्रभु भी बन जाता है। 'सुलेमान' कहानी में राजनेता सुलेमान को अपने गाँववाले और मित्रों की दयनीय स्थिति देखकर सहानुभूति आती है और उनके विश्वास, प्यार और ममता के बारे में सोचकर उसका मन पिघल जाता है। फिर भी उन लोगों की सहायता के लिए सुलेमान तैयार नहीं हुआ है। क्योंकि उसे पता है कि इनको सहायता करने से कोई लाभ नहीं है। दो-तीन वायदे देने पर वोट तो मिल जाएगा। इसलिए उसने जल्दी ही जल्दी वहाँ से चला जाता है। कहानी की पंक्तियाँ हैं "कामयाबी एक कुत्ता-दौड़ है। इसमें पडा इंसान अपना चेहरा तक नहीं चुन सकता। सुलेमान का मन भारी हो आया। दोस्तों की निरीहता उसे अंदर तक हिला रही थी। उसने कहा, 'यकायक मुझे याद आया। सुबह पी.एम. का संदेश लेकर सी.एम. का एक आदमी घर आनेवाला है। मुझे जाना होगा'।"[2] इसके द्वारा ममताजी यह व्यक्त करती हैं कि धन

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 31
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 358

कमाने की भाग-दौड में भावना और मानवता का कोई स्थान नहीं है। सिर्फ लाभ और अधिकारों का हिसाब का महत्व होता है।

3.4.4.2 राजनीतिज्ञों का खोखलापन

अपने उत्तरदायित्वों को छोडकर स्वार्थ पूर्ति करने के साथ ही साथ ये राजनेता जनता के साथ खोखले आचरण भी करते हैं। झूठे वायदे देकर जनता को वे उल्लू बनाते हैं। उनके अनुसार जनता उनकी सत्ता को सुरक्षित करनेवाले सबसे छोटा कारक मात्र है। जनता का विश्वास, प्रतीक्षा सबका उपयोग करने में वे हिचकते नहीं हैं। 'सुलेमान' कहानी में जनता को झूठा वादा देकर उनके विश्वास के लाभ उठानेवाले राजनेता सुलेमान को प्रस्तुत किया गया है। चुनाव जीतने पर सुलेमान ने अपने गाँववालों की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति करने का वादा दिया है। गाँववाले आँखें मूँदकर उसके वायदों में गिर पडे। सुलेमान की झूठे वादाओं का उदाहरण ममताजी ने कहानी में इस प्रकार दिया है "मेरे दोनों हाथ दोस्तों के लिए। मुझे आप सबका ख्याल न होता तो क्या मैं इस सैयाद शहर में आया?"

'मेरा अफसर बहुत खार खाने लगा है मुझसे, बात-बात में झिड़क देता है।'

'कहो, उसका ट्रांसफर करो दें?'

'ग्रेट सुलेमान ग्रेट'

'सुलूभाई, मेरा प्रमोशन जुलाई में होना था। विभागीय परीक्षा पास कर ली।

इंटरव्यू भी सबसे बढ़िया हुआ पर पोस्टिंग आर्डर ही नहीं आ रहा है। पता चला, फाइल अभी प्रोसस में ही नहीं आयी है।'

'हूँ देखना पडेगा। किसी से टाय तो नहीं है।'

'होनी नहीं चाहिए। मैं सबसे सीनियर था।'

'तो ऐसा है, मैं तुम्हें दो प्रमोशन एक साथ दिलाने का इंतजाम करता हूँ।"[1]

इसी प्रकार सुलेमान ने जनता की अज्ञता और विश्वास का भी लाभ उठाया है। निरीह गाँववाले उसके वादाओं की पूर्ति की प्रतीक्षा कर रहे थे। छल करने के साथ राजनेता अच्छा अभिनय भी अपने लाभ के लिए प्रस्तुत करते हैं। सुलेमान ने अपने प्रिय मित्र की पत्नी बीमारग्रस्त जानकर इतना भावुकता और दुःख का अभिनय किया है कि उतना किसी अभिनेता को भी प्रस्तुत नहीं कर सकता। "सुलेमान भावुक होने लगा, 'यू मीन, मेरी वह सीता भाभी बीमार है जिनके हाथ के पराठे मैंने बीसियों बार खाये हैं। वह भाभी, जिन्हें अनगिनत बार जगाकर मैंने चाय बनवायी है। मैं कल ही डॉक्टरों की पूरी टीम लखनऊ से रवाना करता हूँ। भाभी का इलाज मैं करवाऊँगा। अब आप इस विषय में बिल्कुल न बोलिए।"[2] सुलेमान के वादाओं पर विश्वास रखकर मित्र ने महीनों तक डाक्टरों के टीम की प्रतीक्षा की। धीरे-धीरे सभी लोगों को पता चलता है कि सुलेमान उनको छल रहा है। लेकिन फिर भी लोग उन पर विश्वास करते हैं क्योंकि एक ओर जनता अपना भरोसा टूटना नहीं चाहता दूसरी ओर उनके सामने और कोई विकल्प नहीं है। इसलिए गाँववाले अपना भरोसा न टूट जाए - इस के लिए खुद ही कोई-न-कोई कारण बनवाते हैं। "किसी ने कहा सुलेमान को पंजाब का मसला सुलझाने के लिए

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 352
2. वही

भेजा गया। किसी ने कहा, वह श्रीलंका में तमिल समस्या पर विचार करने गया हुआ है।"[1] इस प्रकार इन अफवाहों पर विश्वास रखकर वे आगे जीते हैं। सुलेमान के ये गाँववाले वास्तव में पूरे भारतवासियों के प्रतीक हैं जो राजनेताओं के झूठे-झूठे वादाओं पर विश्वास रखकर उनको वोट देते हैं।

जनता को छलने के साथ ही साथ उनके अधिकारों और आरक्षण में भी कुछ राजनेता हाथ डालते हैं। आम जनता के लिए संविधान में होनेवाले आरक्षण और सुविधाओं का लाभ उठाने के लिए झूठे प्रमाण पत्र जुडाने में भी उनकी कोई बेशर्मी नहीं है। 'कामयाब' में लखनऊ के प्रभु समान जीते विधायक हाफ़िज़ भाई वे अपनी दोनों बेटियों के शैक्षिक प्रमाण पत्र में मासिक आय के रूप में सिर्फ एक हज़ार रुपये लिखा है। सबसे मज़ाक की बात यह है कि हज़ार रुपये से हाफ़िज़ कैसे अपने दो महलों और परिवारवालों का खर्च करता है और उसकी दो बेटियों के बाल सेट करने के लिए ही हाफ़िज़ उससे ज़्यादा खर्च करता है। यह सब देखकर ममताजी कहती हैं "ये और कुछ अन्य सवाल ऐसे थे जो हमेशा हवा में लटके रहते। ये पूछे नहीं जा सकते।"[2] शैक्षिक प्रमाण पत्र में लिखी मासिक आय के बारे में पता होने पर भी कॉलेज के अधिकारी और छात्र चुप हो जाते हैं। जनता के मन के संदेह और प्रश्न हवा में लटके ही रहते हैं। हाफ़िज़ भाई की दोनों बेटियाँ योग्य छात्रों के अधिकार को हडप कर बिना शुल्क के साथ पढ़ती हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 354
2. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 32

राजनेताओं के खोखले आचरणों का सबसे सशक्त नमूना है 'संस्कृति' कहानी के सुषमा अग्रवाल। सुषमा अग्रवाल मंत्री है और समाज की सारी हरकतों पर अपनी दृष्टि डालती है। हिन्दी की वरिष्ठ लेखिका अमृता प्रीतम का निधन होने पर श्रद्धाञ्जलि की कारवाईयाँ सुषमा जी खुद ही करती है। ऐसे व्यवहार सुषमा जी को तारिफों का पात्र बनाते है। लेकिन वास्तविकता इसके ठीक विपरीत है। जनता के बीच नाम कमाने से ज़्यादा और कोई लक्ष्य सुषमाजी को नहीं है। साहित्यकार अमृता प्रीतम के निधन के वक्त श्रद्धाञ्जली के लिए खरीदी गयी फूलमालाएँ फ्रिज में रखने का आदेश पी.ए. को देकर मंत्री सुषमा अग्रवाल कहती है "बात यह है भैया इतने साहित्यकार, कलाकार पकी उम्र के हैं। देख लेना कल तक कोई-न-कोई बोल जायगा। कल फिर श्रद्धाञ्चलि सभा कर लेंगे। फूल मालाएँ काम आ जायेंगी।"[1] राजनेता लोगों के सामने आँसू बहाते हैं और अंदर लोगों का ध्यान आकर्षित कराकर नाम कमाने का षड्यंत्र रचते हैं। षड्यंत्रों का खेल मात्र बन गयी है राजनीति। राजनेताओं के दिमाग में क्या है, यह समझने में देश के साधारणलोग हार रहे हैं।

राजनेताओं को पता है जनता वोट देने के लिए मज़बूर एक विभाग मात्र है। जनता पाँच साल - पाँच साल बाद एक-एक पार्टी को जिताती हैं। जनता के सामने इन दो-तीन पार्टियों में एक को चुनने से भी ज़्यादा कोई विकल्प नहीं है। जनता चाहती है कि हर बार राजनेता जनता के लिए कुछ कर जाएँगे। लेकिन

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 75

अपनी प्रतीक्षाएँ एकदम तोडी जाती है तो लोग कभी राजनेताओं को गालियाँ देते हैं, कभी अपने भाग्य पर आरोप करते हैं। इन सबको राजनेता एक मज़ाक जैसे मानते हैं। "दिन-प्रतिदिन वें महंगाई, मिलावट और मक्कारी से भिड़ते और ज़िन्दा रहने आते। कभी-कभी लोगों को गुस्सा आता। गालियाँ देने लगते, कभी सरकार को, कभी अखबार को और आखिर में अपने भाग्य को। लीडर सुनते और लाड़ से हँस देते। उन्हें पता था ऐसी गुर्र-गुर्र तो लगी ही रहती है। पाँच साल बाद एक दिन जायेंगे, सारे शिकवे शिकायत दूर कर देंगे। उनके होते देश में आज़ादी ही आज़ादी थी। बल्कि पन्द्रह अगस्त और छब्बीस जनवरी को तो आज़ादी दिखाई भी दे जाती थी। झण्डियों की शक्ल है।"[1] राजनीतिज्ञों को अच्छी तरह पता है कि इन गालियों से अतिरिक्त और कुछ नहीं संभव होगा। इसलिए वे जनता को छलते ही रहते हैं।

3.4.4.3 प्रतिष्ठा के प्रति लालच

राजनीति सत्ता का अधिकार ही नहीं प्रतिष्ठा भी देती है। राजनीति में आने पर लोगों की स्थिति एकदम बदल जाती है। उनको हर कहीं से इज्जत, सम्मान, प्रतिष्ठा मिल जाती है। यह राजनीतिज्ञों और उनसे जुडे हुए लोगों को प्रतिष्ठा के प्रति लालच पैदा करता है। यह अधिकार प्राप्त करने के लिए निचले स्तर का खेल करने के लिए भी उन लोगों को प्रेरित कराता है। राजनीति में आने पर लोगों का महत्व किस प्रकार बदल जाता है, इसका सशक्त उदाहरण है 'सुलेमान' नामक कहानी। कहानी का सुलेमान एक साधारण युवक था, दोस्तों के सामने भी उसे

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 88

उतना महत्व नहीं था। लेकिन जीवन में कामयाब बनने के लक्ष्य में वह राजनीति में आया। राजनीति में उठ - बैठने से नाम बढ़ गया। महीनों पहले सुलेमान की बातों को ध्यान न देनेवाले दोस्त अब उससे मिलने के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे "दोस्तों का तहलका मच गया। दोस्त उससे मिलने के लिए आतुर हो गये। किसी को ठीक से यह पता नहीं था कि वह क्या करने लगा है लेकिन सबको यकीन था कि वह कामयाब हो गया है। दोस्तों का ख्याल था कि वह सत्ता के गलियारों को नज़दीक से देख आया है। दोस्तों के सवालों का जवाब देने की बजाय वह उन्हें सलाह देने की स्थिति में था।"[1] राजनीतिज्ञ सुलेमान की कई बातों से दोस्तों को एतराज है। फिर भी उनका विरोध मुँह से 'जय सुलेमानजी' के नारे के रूप में बाहर आया है। सुलेमान की एक नज़र पड़ने और उसके मुँह से अपना नाम सुनने की प्रतीक्षा में दोस्तों और गाँववालों ने घण्डों तक उसके सामने समय बिताये हैं। राजनीति वास्तव में ऐसी एक जादुई दुनिया ही है जहाँ एक पता है तो वह राजनेता नहीं राजा ही बनता है।

राजनीतिज्ञ ही नहीं उनसे जुड़कर जीनेवालों की स्थिति भी इससे अलग नहीं है। ख्याति पाने के लिए और राजनीति के क्षेत्र में अपना नाम भी जोड करने के लिए राजनेताओं के हर आदेशों का पालन कर पीछे दौडनेवाले लोगों पर 'संस्कृति' नामक कहानी में ममताजी व्यंग्य भरी दृष्टि डालती है। "सुषमा अग्रवाल के हर निर्देश पर वे सरपट दौड जाते। रातों में उन्हें स्वप्न भी कुछ ऐसे ही आते।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 350

वे देखते मंत्रीजी ने उन्हें पुकारकर कहा है, 'बोस दा ज़रा हिमालय पर्वत के शिखर से मुझे भोज पत्र ला दीजिए, इस बार मैंने सोचा है विद्वानों को, भोजपत्र पर लिखकर प्रशस्ती पत्र प्रदान करूँगी'। बोस दा अपना पिट्ठू थैला लेकर चले गये हैं और महज़ चार दिन में भोजपत्रों से भरी ट्रक लेकर लौटे हैं।"[1] मंत्रीजी की सेवा करनेवालों में साहित्यकार भी शामिल हैं। ममताजी उन पर भी व्यंग्य करती है। मंत्रीजी को खुश रखने के लिए और उसके मुँह से दो-तीन प्रशंसा शब्द सुनने के लिए आतुर होकर अपनी पुस्तकों की ढ़ेर मंत्रीजी के सामने समर्पित करनेवाले साहित्यकारों की ओर इसमें इशारा करती है। ममताजी लिखती है - "ऊपर से सुषमाजी की भुवन मोहिनी मुस्कान, उनकी दबी-दबी सेक्सी आवाज़ साहित्यकार पर चार पैग का नशा चढ़ा देती। साहित्यकार ठहरे भोले-भाले जीव। उन्हें लगता साहित्य की इस पारखी के लिए वे अपनी समस्त पुस्तकें अर्पित कर दें। पुरस्कार की अगली सुबह वे अपनी पुस्तकों का बण्डल लेकर भवन के विशेष कक्ष में जाते, मंत्री से मुलाकात करने।"[2] समाज से सौ प्रतिशत ईमानदार होने के लिए उत्तरदायी साहित्यकार भी ऐसे हो तो दूसरे महत्वाकांक्षी लोगों की स्थिति कितनी दयनीय होगी।

लोगों के ऐसे व्यवहारों की निरर्थकता और भोलेपन को व्यक्त करती है 'संस्कृति' शीर्षक कहानी में। इस कहानी में ममताजी यह व्यक्त करना चाहती है कि राजनेता हम लोगों में से एक है, इससे ज़्यादा महत्व और विशेष प्रतिष्ठा देने की

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 67
2. वही - पृ. 68

ज़रूरत नहीं है। राजनीतिज्ञ पर मीडिया के अनावश्यक पूछताछ पर व्यंग्य कर ममताजी इस प्रकार लिखती है - "'पता है प्रधानमंत्री रोज़ सुबह नाश्ते में क्या खाती है?' 'प्रधानमंत्री नाश्ते में रोज़ सुबह एक मुख्यमंत्री खाती है'।"[1] राजनेता जनता का प्रतिनिधि है। वास्तव में हमें राजनीतिज्ञों के बारे में चर्चा करनी ही चाहिए कि उसने देश के लिए या जनता के लिए क्या-क्या किये हैं, आगे समाज में क्या करेंगे। इस पर देश के मीड़ियाओं और आलोचकों को ध्यान देना चाहिए। अनावश्यक इज्जत राजनेताओं को अपने मूल लक्ष्य से अलग कर देती है।

3.4.4.4 सत्ता का दुरुपयोग

भारत की सरकार जनता की, जनता के द्वारा और जनता के लिए बनाई गयी लोकतांत्रिक व्यवस्था पर आधारित है। इसलिए सरकार और जनप्रतिनिधियों की पहली चिंता देश की जनता पर और उसकी सुरक्षा पर होनी चाहिए। उसी प्रकार जनप्रतिनिधियों की सुरक्षा के लिए भी सरकार उत्तरदायी है। इसलिए उनकी सुरक्षा के लिए पुलीस, सैनिक, कमाण्डो आदि सदैव उपस्थित हैं। यह देश की सुचारू संचालन के लिए आवश्यक भी है। लेकिन कुछ राजनीतिज्ञों की गलतफहमी है कि ये पुलीस या सैनिक अपनी सेवा के लिए मात्र हैं। ऐसी स्थिति में राजनीतिज्ञों की सुरक्षा के साथ घर के कामकाज भी उन लोगों को करना पडता है। देश और जनता की सुरक्षा पर इतनी अहम भूमिका अदा करनेवाले इन लोगों को राजनीतिज्ञों के आदेशानुसार चाय या नाश्ता बनाने वाले घर के नौकर के रूप में बदलना

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 64

पडता है। 'कामयाब' कहानी में ऐसे राजनीतिज्ञों का संकेत देख सकते हैं। आतंकवाद की बढ़ती स्थिति में हर विधायक को एक-एक अंगरक्षक मिला। हाफ़िज़ भाई को भी शैडो मिला। लेकिन हाफ़िज़ भाई ने उसे एक सेवक के रूप में इस्तेमाल कर दिया। ममताजी ने कहानी में इसे इस प्रकार चित्रित किया है - "सुबह के वक्त हाफ़िज़ अपनी भारी-भरकम आवाज़ में पुकारते 'शैडो भई अन्दर जाकर देखो।चाय बन गयी हो तो हमें भी ला दो और खुद भी पी लो' सभी विधायक अपने शैडो का इस्तेमाल अर्दली की तरह करते हैं। कुछ तो शैडो से खाना भी बनवाते।"[1] राजनीतिज्ञ वास्तव में जनता का सेवक है। सेवकों को आदेश देनेवाला शासक या प्रभु नहीं है। जनता की सुरक्षा, सेवा, कल्याण के लिए प्रतिज्ञावान राजनेता जनता से ऊपर नहीं है, जनता में ही एक है। जनता को अपने सेवक समझनेवाले या अपने अधिकारों का दुरुपयोग करनेवाले ऐसे राजनीतिज्ञों पर अपना विरोध प्रकट करने हुए ममताजी अपनी कहानी में पूछती है "एम.पी. होकर क्या इन्सान, इन्सान नहीं रहता?"[2] ममताजी का यह प्रश्न वास्तव में सत्ता के दुरुपयोग करनेवाले सभी राजनेताओं के लिए एक चेतावनी है। जनता के मन में उठता प्रश्न ही है यह। उसे ममताजी अपनी कहानी के ज़रिए पूछकर अपना विरोध प्रकट करती है।

3.4.4.5 राजनीति और धर्म के साथ का गठजोड

धर्म और राजनीति दोनों मानव जीवन से जुड़ी हुई भावनाएँ हैं। एक देश से संबन्धित होने पर दूसरा आध्यात्मिकता से संबन्धित है। दोनों के बीच आपसी

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 29
2. वही - पृ. 35

संबन्ध होने की आवश्यकता ही नहीं है। "धर्म की भावना उदात्त होती है, राष्ट्र की भावना भी उदात्त होती है। किसी भी समूह की भावनाएँ दो प्रकार की होती हैं। समूह के कल्याण के लिए जो भावना होती है वह अच्छी भावना है। लेकिन अपने समूह को अधिक शक्तिशाली बनाने के लिए दूसरे समूहों के प्रति उभरती घृणा और द्वेष की भावना ध्वंसकारी और मानवविरोधी होती है। दोनों के मिलने-जुलने पर या एक के लाभ के लिए दूसरे का इस्तेमाल करने पर वह हमेशा मानव विरोधी भावना बन जाती है।"[1] जब सरकार या राजनेता असमर्थ होने पर वे अपनी कमज़ोरी को छिपाने के लिए धर्म का इस्तेमाल करते हैं। वे धार्मिक दंगे कराकर सत्ता हासिल करने का षड्यंत्र रचते हैं। यह देश में अराजकता पैदा करता है। क्योंकि धर्म और राजनीति का गठबन्धन तरह-तरह की सामाजिक हिसा के पनपने देता है। सत्ता को सुरक्षित रखने के लिए राजनेता अपराधी लोगों की मदद हासिल करते हैं। उनका एकमात्र लक्ष्य है किसी-न-किसी प्रकार सत्ता में ज़ारी रखना। क्योंकि आर्थिक अनिश्चितता या बेकारी से मुक्तित पाने के लिए अधिकाँश युवा लोग राजनीति में आते हैं। 'सुलेमान' कहानी का केन्द्रीय पात्र सुलेमान इसका उदाहरण है। सुलेमान ने अपनी अस्थायी नौकरी की परेशानियों से मुक्त होने के लिए राजनीति में प्रवेश किया और छह महीने के अंदर उन्होंने राजनीति के क्षेत्र में पर्याप्त नाम भी कमाया। इसी प्रकार नाम कमाने के बाद या सत्ता का मादक सुख समझने के बाद उसे छोडने के लिए वे तैयार नहीं होते हैं। किसी न किसी प्रकार सत्ता में हाथ रखने की इच्छा सत्ता का दुरुपयोग करने की प्रेरणा देती है।

---

1. किशन पटनायक - भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि - पृ. 105

राजनीतिज्ञों का सबसे बडा औजार है धर्म। धर्म पर जनता के अटूट विश्वास और भरोसे पर चोट लगाकर वे लाभ उठाते है। 'उपलब्धि' कहानी में ममताजी यह व्यक्त करती है कि जनता धर्म के प्रति कितना संवेदनशील है। यह आसानी से सांप्रदायिक दंगे को पैदा कराती है। मुहर्रम में मातम को देखकर घर के बारजे पर कुछ बच्चे खडे थे। इनमें एक के हाथ से गिलास फिसलकर पानी मातम पर पडा। मातम करनेवालों में कुछ लोग सोचते हैं कि घर तो हिंदु का है इसलिए उन्होंने जानबूझकर पानी गिराया। "ग्लास छूटकर बारजे पर गिरा और काफी पानी नीचे जुलूस पर जा गिरा। जुलूस में खलबली मच गयी। 'पानी कहाँ से आया?' 'कौन नापाक-पानी फेंक रहा है?' 'कौन काफ़िर मूत रहा है?' वगैरह चिल्लाती उत्तेजित भीड़ ऊपर नीचे गुनहगार की तलाश में सक्रिय हो गयी। आग की तरह उत्तेजना जुलूस के दोनों छोरों तक फैल गई।"[1] उन लोगों ने उस घरवालों को बुरी तरह मारा और जल्दी ही वह गाँव धर्म के नाम पर विभाजित हो गया। पुलीसवाले काफी कोशिश करने के बाद भी दंगे को संभाल नहीं कर सके। इसलिए लोग जाने बचाने के लिए उस गाँव छोडकर भाग गये। ध्यान देने की बात यह है कि इतना होकर भी कोई भी राजनेता उसी रात जनता को शांत कराने के लिए वहाँ मौजूद नहीं हुआ। हम जानते हैं कि चुनाव राजनीतिक सत्ता हासिल करने का सबसे सभ्य तरीका है। लेकिन राजनीतिज्ञ सत्ता के हासिल करने के लिए चुनाव के पहले ही कई षड्यंत्र रचते हैं। इनमें सबसे खतरनाक है सांप्रदायिकता। इतिहास को परखने पर हमारे देश में हुए कई दंगों के पहले दिनों में राजनेताओं की चुप्पी देख सकते

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 181

हैं। यह दंगे के बाद आते चुनाव के परिणाम को एकदम उल्टा करता है। कहा जाता है कि भारत के इतिहास में ऐसे कई षड्यंत्र हुए हैं। उपनिवेशिक शक्तियों ने हिंदू और मुसलमान के नामपर भारतीय जनता को विभाजित कर स्वतंत्रता संग्राम और देश की एकता पर जिस तरह बाधाएँ डालीं, उसी का ही अनुसरण आज के राजनेता करते हैं। नवऔपनिवेशिक शक्तियाँ सांप्रदायिकता और आतंकवाद को पनपने में आर्थिक मदद भी देती हैं। धर्म के नाम पर उगनेवाले कई आतंकवादी दलों के पीछे इनके हाथ भी है। अपने या अपने दल के स्वार्थ के लिए सांप्रदायिकता और आतंकवाद को फैलाने की मौन अनुमति देनेवाले राजनीतिज्ञ वास्तव में इन नवऔपनिवेशिक शक्तियों का खिलौने हैं। 'उपलब्धि' नामक कहानी में ममताजी ने दंगे को हल करने का प्रयास न करते राजनीतिज्ञों की चुप्पी और निष्क्रियता की ओर इशारा किया है। यहाँ के राजनीतिज्ञों, सत्ताधिकारियों और धार्मिक नेताओं ने धर्म को ऐसी एक स्थिति में पहूँचाया है कि एक धर्म के लोग दूसरे धर्मावलंबी को डरते या डराते हैं। इसका संकेत 'कामयाब' कहानी में देख सकते हैं। इसमें उन्होंने एक हिंदू परिवार को प्रस्तुत किया है। जिस गाँव में यह हिंदू परिवार रहता है वहाँ मुसलमान लोगों की संख्या अधिक है। हिंदू परिवार का मानसिक डर ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती है - "अल्पसंख्यकों से भी भरी इस बस्ती में हमारा ज़्यादा ज़ोर इस बात पर था कि हम सबको बता दें कि हम छाप तिलकवाले हिंदू नहीं है और हमारा सबसे पसन्दीदा शायर गालिब है तो सबसे अज़ीज गायक मुहम्मद रफ़ी और तलत महमूद हैं। दिलीप और मीना कुमारी हमारे दिलों पर राज करते हैं और

इन दिनों हम कुरान पाक का हिंदी तर्जुमा पढ़ रहे हैं।"[1] जनता के मन में धर्म के नाम भय पैदा कराकर विभिन्न धर्मावलंबियों के बीच दूरी पैदा कर लाभ उठानेवालों में सिर्फ राजनीतिज्ञों ही नहीं धार्मिक नेता भी पीछे नहीं है।

3.4.4.6 राजनीति और शैक्षिक क्षेत्र

शिक्षा के क्षेत्र में राजनीति की अहम भूमिका होती है। क्योंकि देश और राष्ट्र के प्रति प्रतिबद्धतापूर्ण नागरिक का रूपायन के लिए छात्रों को राजनीति और देश के कार्यक्रमों पर अवगत होना चाहिए। इसी उद्देश्य से कॉलेज और विश्वविद्यालयों में चुनाव चलता रहता है और राजनीतिक पार्टियों के आधार पर चुनाव चलाकर राजनीतिक क्षेत्र की और युवा पीढ़ी को आकर्षित कराया जाता है। लेकिन व्यावहारिक तौर पर इस आशय का परिणाम उल्टा हो जाता है। इससे राजनीतिज्ञों को कॉलेज के चुनाव में हस्तक्षेप करने का अवसर मिलता है। छात्रों की भलाई को लक्ष्य करके जिन यूनियनों का रूपायन हुआ, वे सब छात्रों के लिए नहीं, राजनेताओं की इच्छा के अनुसार काम करनेवाले संगठन बन जाते हैं। आगे वे राजनेताओं के बल पर पूरे शैक्षिक कार्यक्रमों को बरबाद करते हैं। 'इक्कीसवीं सदी' कहानी में ममताजी यूनियन और कुलपति के बीच के संघर्ष में अपना भविष्य नष्ट होनेवाले साधारण छात्रों के जीवन को प्रस्तुत करती हैं। "चुनाव के तत्काल बाद यूनियनों के पदाधिकारियों ने प्रस्ताव रखा कि मौजूदा कुलपति बिलकुल निकम्मा है। जब तक कुलपति नहीं बदला जायेगा, परीक्षाएँ नहीं होने दी जायेंगी। बाकायदा आन्दोलन

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 27

छिड़ गया, कुलपति का घेराव हुआ, उसके दफ्तर में ताला ठोका या, यूनिवर्सिटी प्रांगण में उसका पुतला जलाया गया और उसे हटाने के लिए क्रमिक अनशन चला। ....स्थगन, निरस्तीकरण और पुनर्परीक्षा के कुचक्र में फँसे पुनीत को एक नहीं, ढाई साल एम.कॉम फाइनल पास करने में लग गये।"[1]

कभी-कभी राजनीति पर लगाव होनेवाले अध्यापक भी छात्रों का इस्तेमाल करते हैं। अपने आशयों की सफलता के लिए छात्रों को प्रभावित कर आंदोलन की ओर आकर्षित कराते हैं। फलतः छात्रों का भविष्य बरबाद हो जाता है। दीपक की ओर आकर्षित प्राणियों के समान राजनैतिक षड्यंत्रों में पडकर छात्रों का भविष्य और कभी जान भी नष्ट हो जाती है। 'नायक' कहानी के डॉ. मोहन दीक्षित विश्वविद्यालय का अध्यापक है, साथ ही साथ राजनीतिक क्षेत्र में जानेमाने व्यक्तित्व भी हैं। लेकिन मोहन दीक्षित ने अपने सिद्धान्तों के प्रचार और राजनीतिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए छात्रों का इस्तेमाल किया है। छात्रों के दिमाग में क्रांति की चिंगारियाँ देकर उन्होंने छात्रों को हड़ताल और घेराब के लिए प्रेरित कर दिया। मोहन ने राजनीति में कई पदों को हासिल किया लेकिन उनकी वाणी में फँसकर क्रांति उठानेवाले छात्र अपनी पढ़ाई पूरा नहीं कर सके। छात्रों को कॉलेज से और कुछ छात्रों को घर से भी बाहर निकल दिया गया। घटनाओं की असलियत समझनेवाले विश्वविद्यालय के अन्य अध्यापकों ने छात्रों को अवगत कराने की कोशिश तो की। कहानी की पंक्तियाँ हैं "मैं सब जानता हूँ। तब उसके सिद्धान्त कहाँ

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 47

चले जाते हैं जब वह टुच्चे लोगों की लुच्ची बातें भी इसलिए पचा जाता है क्योंकि वे प्रभावशाली लोग हैं। अपने सिद्धान्त को सड़क पर खड़ा छोड़ वह शाम को विदेशी दूतावासों में चला जाता है, एक पेग की खातिर................ वे उसके साथ समझौता करते हैं। यानी एक चौखटा जो उन्हें सूट करता है उसे मंजूर करते हैं, जो उन्हें सूट नहीं करता, उसे तोडने के लिए छात्रों को आगे कर देते हैं।"[1] लेकिन छात्र सत्य को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। छात्र उसके विचारों पर इतने गुलाम बन गये हैं कि मोहन दीक्षित के लिए खुद मर जाने के लिए भी छात्र तैयार हो गये हैं।

3.4.5 भ्रष्टाचार सरकारी कार्यालयों में

राजनीति के साथ सरकारी कर्मचारी, पुलीस, न्यायव्यवस्था आदि को जोडने पर ही प्रशासनिक व्यवस्था पूर्ण हो जाती है। जनता के सुविधापूर्ण जीवन को लक्ष्य करके इन सबका रूपायन हुआ है। लेकिन अर्थ प्रधान सामाजिक व्यवस्था के चंगुल में वे पूर्ण रूप से फंस गये हैं। आम जनता को आश्रय केन्द्र बननेवाले इन संस्थाओं में भ्रष्टाचार इतना पनपा है कि जनता उनसे कोसों दूर रहना खुद ही चाहती है। सरकारी कार्यालयों, पुलीस और न्याय व्यवस्था को डरने का माहौल पैदा हो गया है। क्योंकि कर्मचारियों को जनहित से कोई सरोकार नहीं, सिर्फ अपने और अपने परिवार की सेवा उनका लक्ष्य है। आम जनता के सेवक जिन्हें सरकार ने नियुक्त किया है, वे अपनी नौकरी को जनता को शोषण का एक

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 89

माध्यम मानते हैं। रिश्वतखोरी, विलासिता, उदासीनता जैसी बातों से वे जनता के जीवन को और भी दुविधापूर्ण बनाते हैं। सरकारी कर्मचारी सिर्फ वेतन को लक्ष्य करके काम करते हैं। उन्हें जनता की चिंता नहीं है, अपनी नौकरी पर ईमानदारी भी। उनकी बेइमानी उनको मशीन जैसे बनाती है। सुबह दफ्तर में आते हैं, किसी न किसी कुछ काम करते हैं, वापस जाते हैं। सरकारी कर्मचारियों में व्याप्त संवेदनहीनता पर इशारा करते हुए ममताजी कहती हैं, "निश्चिय ही इन सब बाबुओं के अलग-अलग घर थे और अलग-अलग अपने-अपने परिवार, फिर भी कई बातें उनमें समान थीं, जैसे सबके चेहरे लगभग एक से थे, उन पर भावों के उतार-चढ़ाव को पकड़ पाना जैसे नामुमकिन था।"[1]

आम आदमी के लिए सरकार शब्द आस्था और सुरक्षा का प्रतीक होना चाहिए। लेकिन कुछ सरकारी कर्मचारी सरकारी संस्थाओं को भयावह रूप में परिवर्तित करते हैं। 'दल्ली' नामक कहानी में भारत पर्यटन के लिए आये दो वृद्ध दम्पतियों के जीवन में घटित अनुभवों को चित्रित किया गया है। अनुराग और समिधा ने अपने जीवन के उत्तरदायित्वों को खत्म कर बाकी जीवन में पूरा भारत देखने की तैश में पर्यटन शुरू किया। उनका प्लान था कि यात्री भवन में एक दिन ठहर कर यात्रा ज़ारी करना। लेकिन दिल्ली रेलवे स्टेशन पहूँचते ही प्राइवट होटलों के एजंडों ने उन्हें परेशान करना शुरू किया। इन सबसे बचकर यात्री भवन में पहूँचने पर वहाँ कमरा देने के लिए कर्मचारी तैयार नहीं था। 'रूम खाली नहीं है'

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 45

कहकर सामने होनेवाले प्राइवट होटल में रूम लेने के लिए उन दोनों को यात्री भवन के कर्मचारियों ने मज़बूत किया। "यात्री-भवन मे पसरा सन्नाटा यकीन नहीं हो रहा था कि इसके सौकड़ों कक्ष इस समय भरे होंगे। न कोई आता दिख रहा था, न जाता।

'क्या एक भी कमरा नहीं होगा।'

'बताया न आपको।'

....

दूसरे कर्मचारी ने कहा, 'आप परेशान न हो सर। बगल में लालमहल होटल है। यहाँ से बड़े और शानदार कमरे है वहाँ। किराया भी वाजिब है। मैं रिक्शेवाले को समझा देता हूँ, वहाँ चले जाइए'।"[1] सबसे अजीब बात यह है कि सरकारी कर्मचारी ही यात्री-भवन में आये लोगों को ब्रेइन-वाश करके गाड़ी का इंतज़ाम कराकर प्राइवट होटलों में पहूँचाते हैं। इसके पीछे एक ऐसा षड्यंत्र है कि किसी न किसी प्रकार यात्री-भवन को खाली रखकर सरकार के द्वारा उसे नुकसान की संस्था समझाकर बंद कराना या किसी प्राइवट कम्पनी को बेच कराना। देश की सारे के सारे सार्वजनिक क्षेत्रों की स्थिति इससे अलग नहीं है चाहे वह यातायात हो, या संचार माध्यम। भारत के सभी सार्वजनिक क्षेत्रों पर बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की आँख है। इन आँखों से सुरक्षित रखने के लिए उत्तरदायी सरकारी कर्मचारी ही इन कम्पनियों के गुप्त एजेंड बनेंगे तो देश का सार्वजनिक क्षेत्र कैसे सुरक्षित रखा जा

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 372

सकता है? 'दल्ली' कहानी में वृद्ध दम्पतियों ने जिद्द किया तो यात्री-भवन में कमरा मिला। लेकिन वहाँ के कर्मचारियों ने उन्हें इतनी तकलीफ दी है कि वे खुद ही प्राइवट होटल जाने के लिए आमादा हो गये। पानी, चाय, नाश्ता, साबुन, अच्छा कमरा, चाभी न देकर उन बुजुर्ग दम्पतियों को वे परेशान करते हैं। कर्मचारियों के बुरी व्यवहारों से आहत होकर वे पर्यटन छोडकर वापस जाने के लिए भी सोचते हैं।

सरकारी कर्मचारियों की निष्क्रियता पर 'काके दी हट्टी' नामक कहानी में ममताजी प्रकाश डालती हैं। होली के एक हफ्ते बाद भी नगरपालिका के कर्मचारी छुट्टी में है। यह देखकर ममताजी कहती हैं, "नगरपालिका के सफाईकर्मी अभी काम पर नहीं आये थे। उनके लिए होली अभी खत्म नहीं हुई थी।"[1] छुट्टी लेने को अपना दायित्व समझनेवाले सरकारी कर्मचारियों पर इस प्रकार खुले व्यंग्य करने में ममताजी हिचकती नहीं है। सरकारी विभागों की अकर्मण्यता का एक और उदाहरण है 'खिड़की' नामक कहानी। रेल विभाग की शिथिलता की ओर ममताजी इस कहानी में इशारा करती हैं। बेटी के साथ रेल यात्रा करने पर होनेवाली मुसीबतों की ओर संकेत कर शिवराम बाबू बताता है "किराये बढ़ाते जा रहे हैं, सुविधाएँ घटाते जा रहे हैं, जनता को आप उल्लू समझते हैं।"[2] सरकारी संस्थाओं में होनेवाली सुविधाओं को भी घटाकर सरकारी कर्मचारी ही सरकारी संस्थाओं को आम जनता को अलग कराते हैं और उन क्षेत्रों का पतन कराते हैं। यह नवऔपनिवेशिक

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 7
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 165

शक्तियों की जड़ें को मज़बूत बनाने के षड्यंत्र का एक पहलू है। सरकारी कर्मचारियों की ऐसी हरकतों देश को छल करने के समान ही है।

आम जनता सार्वजनिक क्षेत्रों भ्रष्टाचार से मुक्त पाना चाहती है। आम जनता के मन के क्षोभ, संघर्ष और प्रतिक्रिया का नमूना है 'लड़के' नामक कहानी। इसमें सरकारी विभाग के अधिकारी घर की ज़रूरतों के लिए सरकार की गाडियाँ इस्तेमाल करते हैं। अधिकारियों के घरवालों को गंगा स्नान, सब्जियाँ खरीदने, बच्चों को स्कूल ले जाने जैसी सारी की सारी आवश्यकताओं के लिए सरकारी गाडियों का इस्तेमाल करते हैं। ममताजी सरकारी अफ्सरों के ऐसे कुकर्मों पर तीखा व्यंग्य करती है। "वही एक तरफ खड़ी थी कई जीपें। लड़कों ने गिना। सात पर भारत सरकार की तख्ती लगी थी। तीन पर प्रादेशिक सरकार की। ज़ाहिर है भारत सरकार नहाने आयी थी। लड़कों ने देखा भारत सरकार मूली खरीद रही थी, भारत सरकार जिलेबी खा रही थी। भारत सरकार पुण्य कमा रही थी। एक जीप मत्स्य विभाग की थी। एक स्वास्थ्य विभाग की।" इसी प्रकार व्यंग्य करती हुई ममताजी पाठकों को याद दिलाती है कि करदाता के खून पसीने के पैसे से चलती इन गाडियों को अफसरों की पारिवारिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस्तेमाल किया जाता है। इस पर हमें प्रतिक्रिया करनी ही चाहिए। 'लड़के' कहानी में कुछ युवक यह सब देखकर गंगा नदी के किनारे पर बैठे थे। वे अन्याय को बर्दाशत नहीं कर सकते। उन्होंने इन जीपों में से एक को धकेल कर गंगा में डुबाया। वे सोचते हैं कि गंगा में स्नान करने पर इन सरकारी विभागों से लगे मैल को साफ कर सकते हैं। उस दिन युवक खुशी के साथ घर वापस गये क्योंकि उन लड़कों को

लगा कि उनके जीवन एक दिन सार्थक हो गया है। कम से कम वे अपने देश के लिए इतना ही कर सके हैं।

3.4.6 पुलीसवालों की अमानवीयता

सामान्य जीवन बिताने के लिए भारत के हर नागरिक को अधिकार होता है। यह व्यक्ति के जीवन, स्वतंत्रता, समानता एवं प्रतिष्ठा से जुडा हुआ है। संविधान का भाग तीन मानव के इस मूलभूत अधिकारों से संबन्धित है। भारतीय संविधान हर नागरिक को अपने अधिकारों का गारण्टी देता है। इसका पालन के लिए पुलीस और अदालत विद्यमान है। पुलीस वास्तव में जनता का संरक्षक है, जनता की जान और माल की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। भारतीय पुलीस विभाग का आदर्श वाक्य ही है 'जनता की रक्षा के लिए और जनता की सेवा करने के लिए'। लेकिन व्यावहारिक तौर में आने पर यह सब एकदम कुचल गया है। क्योंकि संविधान द्वारा निर्धारित कानूनों का पालक अपने कर्तव्यों की पूर्ति के बजाय स्वार्थों के पीछे भागने पर रक्षक ही भक्षक बनने की स्थिति मौजूद होती है। ऐसे स्थितियाँ आम जनता और पुलीस के बीच की दूरी को बढ़ाती हैं। जनता को डराने वाले एक दल के रूप में पुलीस सेना का बदल जाना अच्छा नहीं है। पुलीसवालों के अमानवीय व्यवहारों के कई नमूने हमारे समाज में ही मौजूद हैं।

'इक्कीसवीं सदी' नामक कहानी में पुलीस विभाग की आनाकानी से जीवन नष्ट होनेवाली एक युवति का चित्र ममताजी प्रस्तुत करती है। रेखा पति के साथ एक रेस्टारेंट में गयी और वहाँ से वह लापता हो गयी। पति विनोद सहायता

माँगकर थाने में गया। लेकिन पुलीसवाले रिपोर्ट दर्ज करने के लिए भी तैयार नहीं थे। उनकी दृष्टि में विनोद और उसके घरवालों पर आरोप लगाने पर काम आसान हो जाता है। "उसके माता-पिता घबराये हुए वहाँ पहूँचे। उन्हें देखते ही दारोगा फिर भड़क गया, 'तो यह दहेज का मामला है। दहेज के राक्षस झूठी रपट लिखाने के लिए ऐसी ही भाग दौड़ किया करते हैं। चल जाइए यहाँ से। पुलीस आपके घर पहूँचकर तहकीकात करेगी'।"[1] पुलीसवाले अपने काम को आसान करने के लिए या अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए गुनाहों की रक्षा करते हैं और निरीह लोगों को केस में फँसाते हैं। कहानी में रेखा का अपहरण नगर के प्रसिद्ध होटल से हुआ है। उस होटल पर आरोप लगाना होटल की प्रतिष्ठा के लिए हानिकारक है। यह जाननेवाला दारोगा और होटल के मैनेजर एकसाथ मिल गये। "होटल के मैनेजर ने सारी बात इसी तरह सुनी जैसे उसे इस वाकये का पहली बार पता लग रहा हो। फिर उसने त्योरी डालकर कहा, 'इस वक्त कमरों की तलाशी कैसे ली जा सकती है? सभी ग्राहक आराम कर रहे हैं।' मैनेजर दारोगा को अपने आफिस में ले गया। थोड़ी देर में दारोगा ने बाहर आकर कहा, 'तहकीकात चल रही है। आप लोग जाए। यहाँ बैठने से कोई फायदा नहीं। नकल सुबह थाने से मिल जाएगी'।"[2] मैनेजर और पुलीस के बीच के गठजोड से विनोद और उसके परिवार के सामने न्याय का द्वार बंद हो गया। अगले दिन रेखा का शरीर रेल की पटरियों में मिल गया। तब तक पुलीसवाले आराम में थे। अगर पुलीसवाले सक्षम होकर तलाश

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 52
2. वही - पृ. 52

करते तो रेखा की मौत न हो जाती लेकिन रिश्वतखोरी की आट में विनोद को न्याय और रेखा को अपना जान भी नष्ट हो गयी है।

पुलीस की निष्क्रियता का एक और उदाहरण है 'पर्याय नहीं' नामक कहानी। इसमें हड़ताल के बीच कुछ छात्रों ने अस्पताल का आक्रमण किया। डॉक्टर पुलीस को सूचना देकर भी पुलीसवाले सभी आक्रमणकारियों को वहाँ से निकल जाने का समय देने के बाद आये। क्योंकि पुलीसवाले छात्रों से और उनसे संबन्धित राजनीतिज्ञों से भिड़ना नहीं चाहते हैं। "किसी फिल्मी दृश्य की तरह पुलीस सूचना मिलने पर भी, दो घंटे बाद घटनास्थल पर पहूँची। तब तक डॉ. सुनील अपनी पत्नी की मरहम पट्टी कर चुका था। डॉ. नीना ने पुलीस इंस्पेक्टर को काफी लताड़ा 'अब आप क्या करने आए हैं। देख रहे हैं गुंड़े क्या हाल कर गये हैं हमारा घर और नर्सिंग होम का। तमाशा देखने आए हैं अब।' इंस्पेक्टर का चेहरा खिंच गया। उसने तभी तय कर लिया कि वह यह केस दर्ज करने के साथ ही क्लोस कर देगा। विद्यार्थियों से वह उलझना नहीं चाहता था।"[1] अस्पताल के मरीजों, डॉक्टरों, नर्सों के बारे में सोचने, और उनकी सुरक्षा करने की बजाय किसी न किसी प्रकार मुजरिम को बचाने में त्रस्त थे पुलीसवाले। डॉ. नीना पुलीसवालों की ऐसी निष्क्रियता पर प्रचंड ढ़ंग से ही उबल पडी। फिर भी कोई फायदा नहीं हुआ। इस कहानी के द्वारा ममताजी यह प्रश्न उठाती है कि समाज के जाने माने डाक्टरों के साथ भी ऐसा व्यवहार होने पर साधारण लोगों की स्थिति कितनी दयनीय होगी?

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 199

रिश्वतखोरी और आनाकानी के साथ पुलीसवाले कभी-कभी लूट मार भी करते हैं। इसलिए लोग शिकायत करने को भी डरते हैं। अपनी जेब भरने के लिए निरीह को अपराधी बनाना और अपराधी को बिना किसी मुसीबत से केस से छुडाने के लिए उन्हें देरी नहीं है। 'चोट्टिन' नामक कहानी में सुखिया जो ग्यारह साल की गरीब लड़की है। उसके पास सिर्फ एक फटा-पुराना जाँघिया ही है। उसके बदले नया खरीदने का पैसा उसकी माँ के पास नहीं है। छोटा-से जाँघिया में वह अपने की असुरक्षित महसूस करने लगी। इसलिए एक दिन सुखिया ने दूकान से एक जाँघिया की चोरी की और दूकानदार उसे पकड भी लिया। शोर सुनकर एक पुलीसवाला आया। तब से रंग एकदम बदल गया। पुलीसवाला घटना की असलियत जानने के पहले ही यह जाँच करना शुरू किया कि किसको मुजरिम बनने पर अपने को ज़्यादा फायदा है। "सिपाही ने लड़की को ऊपर से नीचे तक देखा। सुखिया का दुखिया चेहरा, मैले हाथ-पाव, उलझे बाल, नन्हीं उम्र और सूखी चमड़ी देख उसे लगा, लड़की बेकार है, अभी तो बलात्कार के लायक भी नहीं है। सिपाही की दिलचस्पी अब दूकानदार में जगी। 'का हो जो एक दुकड़हे जाँघिए के लिए बाज़ार सिर पर उठाए हो सिपाही ने एक धौल दूकानदार पर धर दिया।"[1] सिपाही मुजरिम की तरह दूकानदार को थाने की ओर घसीट किया और उसे डराना शुरू किया। दूकानदार की जेब में उसी दिन की कमाई थी चौंतीस रुपये और पचास पैसे। पुलीसवालों ने उसकी कमाई का लूट करके उसे थाने से निकाल कर दिया "दूकानदार ने बहुतेरे हाथ पैर जोडे पर सिपाही नरम नहीं पड़ा। उसने उसे बाहर

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 102

धकेल दिया, 'भाग जा सीधे से, नहीं तो दफा पच्चीस लगाकर अभी अन्दर कर दूँगा, समझे'।"[1] अपराधियों या चोरों से भी ज़्यादा पुलीसवालों को डरने की स्थिति आजकल पैदा हुई है। चोर को अपनी गरीब स्थिति के कारण चोरी करना पडता है लेकिन पुलीसवाले उन चोर पर डकैती कर जीते हैं। 'चोर' नामक कहानी के द्वारा ममताजी इस तथ्य को और भी स्पष्ट करती है। शहर के सक्सेना के घर में चोरी हुई। पचास हज़ार के माल की चोरी हुई। लेकिन पुलीसवाले ने सक्सेना से कहकर रपट में पचास हज़ार के स्थान पर चार लाख लिखवाये। उनका वादा था कि चार लाख एक बडी संख्या है। ऐसे लिखने पर केस वज़नदार बन जाएगा। लेकिन असलियत कुछ और है। पुलीस ने चोर को दो दिन के अंदर ही पकडा और गिरफ्तार का रपट न कर उसकी मार-पीट शुरू की। पुलीसवाले ने चोर के परिवारवालों से दो लाख रुपये माँगे, नहीं है तो उसे जेल में ही मार डालने की धमक्की भी दी। पुलीसवालों से डरकर परिवारवालों ने सक्सेना से माँफी माँगा और पचास रुपये भी वापस दे दिये। उनका अनुरोध सिर्फ यह है कि केस वापस कराकर उसकी जान बचाना। पुलीसवालों की ऐसी प्रवृत्तियों पर इशारा कर ममताजी ने लिखा है "पुलीस की दिलचस्पी चोर को पकडने से ज़्यादा हिस्सा वसूलने में होती है। आधी से ज़्यादा चोरियों में पुलीस की मिलीभगत होती है।"[2] आज लोगों की स्थिति चोर के हाथों में डालने से भी ज़्यादा पुलीसवालों के डरने की स्थिति में है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 102
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 44

आम जनता पुलीस से कितना डरती है, इसका उदाहरण 'वर्दी' कहानी में भी देखा जा सकता है। दरोगा रमाशंकर परिवार सहित फोटो खींचने के लिए आया। लेकिन फोटो खींचते वक्त फोटोग्राफर की उँगलियाँ काँपती हैं। क्योंकि फोटोग्राफर को पता है यदि फोटो अच्छा नहीं है तो उसका रुपया ही नहीं जान भी नष्ट हो जाएगी। "रमाशंकर ने फोटोग्राफर से कहा, 'मास्टर बहुत बढ़िया फोटो आना चाहिए नहीं तो ठीक न होगा, समझे'? बूढ़े फोटोग्राफर ने काँपती उँगलियों से खटका दबाया।"[1] उस वृद्ध फोटोग्राफर के मन में सिर्फ एक ही प्रार्थना थी कि जल्दी-ही-जल्दी रमाशंकर वहाँ से जाए।

भारतीय संविधान में स्त्री की सुरक्षा और समान अधिकार के लिए कई महत्वपूर्ण प्रावधान पारित हुए है। इस दृष्टि से अनुच्छेद 14, अनुच्छेद 15 (1), अनुच्छेद 15(3), अनुच्छेद 16, अनुच्छेद 42, अनुच्छेद 43, अनुच्छेद 44, अनुच्छेद 325, अनुच्छेद 326 आदि बहुत उल्लेखनीय है। साथ ही साथ यह विविध अधिनियमों का भी रूपायन कर सभी प्रकार के शोषणों से स्त्री की सुरक्षा का वादा देता है। लेकिन इसका कार्यान्वय सिर्फ कागज़ों में सीमित हो जाता है। 'इक्कीसवीं सदी' नामक कहानी में ममताजी ने इस पर संकेत तो किया है। विनोद अपनी पत्नी पर हुए अत्याचार के बारे में शिकायत देने के लिए पुलीस थाने में आया। लेकिन एक स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों के बारे में सुनकर भी दारोगा तलाश करने के लिए तैयार नहीं हुआ। ममताजी ने पुलीसवालों की इस अमानवीयता,

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 93

निष्क्रियता, और कानूनी सुरक्षा न मिलने की स्थिति पर व्यंग्य करते हुए कहानी में ऐसा एक दृश्य जोडा है कि थाने में पुलीसवालों की आँखों के सामने ही स्त्री की कानूनी सुरक्षा संबन्धी पोस्टर रखती है। "सामने की दीवार पर बडे-बडे अक्षरों में प्रधानमंत्री का नया बीस सुत्रीय कार्यक्रम लिखा हुआ था जिसमें अनेक वायदों के साथ-साथ महिलाओं को सुरक्षा व समान अधिकार का आश्वासन भी था।"[1] कहानी में उस पोस्टर के सामने बैठकर ही पुलीसवाले स्त्री पर होनेवाले अन्यायों की ओर आँख मूँदने का चित्रण करती है। कानूनी सुरक्षा कागज़ों में सिमट होने की स्थिति पर घोर व्यंग्य कर ममताजी अपना विरोध जाहिर करती है। कानूनों से स्त्री को सुरक्षा नहीं मिलेगी, उनके कार्यान्वय से ही फायदा होगा। 'चोट्टिन' नामक कहानी में चोरी पर पकडी गयी बच्ची सुखिया को पुलीसवाले ने इसलिए छोड दिया है कि उससे कोई मुनाफा नहीं है। इसके कारण के रूप में लेखिका बताती है कि सुखिया इतनी छोटी और पतली थी, जो बलात्कार का लायक भी नहीं है। "सिपाही ने लड़की को ऊपर से नीचे तक देखा। सुखिया का दुखिया चेहरा, मेले हाथ-पाव, उलझे बाल, नन्हीं उम्र और सूखीं चमड़ी देख उसे लगा, लड़की बेकार है, अभी तो बलात्कार का लायक भी नहीं है।"[2] लड़की या स्त्री के प्रति पुलीसवालों की दृष्टि यहाँ व्यक्त की गयी है।

स्त्री सुरक्षा को ध्यान में रखकर सरकार ने स्त्री को पति या ससुरालवालों के उत्पीडनों से मुक्ति पाने के लिए 2005 में घरेलू हिंसा अधिनियम पारित किया

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 52
2. वही - पृ. 62

है। लेकिन इसका प्रयोजन औरतों को मिलता है या नहीं, यह सोचने की बात है। इसे कार्यान्वित करनेवाले अफ्सरों की बेइमानी के कारण कई लोग अपने अधिकारों और नीतियों से वंचित हो जाते हैं। 'श्यामा' कहानी की श्यामा अपनी पति के दुर्व्यवहारों से त्रस्त थी। पति से सुरक्षा पाने के लिए श्यामा ने अपनी सहेली को थाने में भिजवाया। लेकिन श्यामा के पति विजलेंस इंस्पेक्टर के साथ केस फाइल करने के लिए पुलीसवाले तैयार नहीं थे। पुलीसवाले ने सहेली को घबराकर वहाँ से भगाया। "वहाँ से भारी मन जाते हुए मैंने सोचा आज सीधी थाने जाकर रिपोर्ट लिखाऊँगी। महिलाओं के लिए इतने सुरक्षा कानून बने हैं, क्या कोई कानून श्यामा को बचा नहीं पायेगा। पर थाने में रिपोर्ट लिखनेवाला कोई ज़िम्मेदार कर्मचारी नहीं था। अगली सुबह थाने जाने पर प्रभारी अधिकारी ने कहा - 'जिसके साथ ज़्यादती हो रही है वह खुद आये, आप कौन होती है? मियाँ बीबी का झगडा है, आप इसमें क्यों पड रही है?' मेरे अन्दर औंधी खोपड़ी पुलीस के साथ और मगजपच्ची करने का धैर्य नहीं था।"[1] आगे पुलीसवालों से ही इसकी जानकारी मिलने पर पति ने श्यामा को मार डाला और उन पुलीसवालों की ही सहायता से ही इसे एक स्वाभाविक मृत्यु के रूप में बदल दिया। स्त्री को हर तरह की कानूनी सुरक्षा का वादा देने पर भी स्त्री पर होनेवाले अत्याचारों में किसी भी प्रकार की कमी तो नहीं आयी। इसके लिए इन नियमों की कारवाई करनेवालों की सहयोगिता भी अवश्य है।

पुलीसवाले को लोग रक्षक के रूप में देखना चाहते हैं क्योंकि जनता सोचती है कि पुलीस सरकार का आदमी है, जनता की सहायता करेगी और सच

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 258

ही बोलेगी। लेकिन पुलीसवालों के साथ का मिलन उनके इन विचारों को एकदम तोड देता है। 'दल्ली' कहानी में बुजुर्ग दम्पति ने यात्री भवन की ओर का रास्ता जानने के लिए एक सिपाही से सहायता ली। लेकिन उसने झूठ बोलकर दम्पतियों को एक प्राइवट होटल में रूम किराए पर लेने के लिए प्रेरित किया। "सिपाही ने डंडा फटकार कर सबको भगाया। फिर बोला, 'आप वहाँ जाना चाहते हैं। तो कोई बात नहीं। पर मैं वहीं से आ रहा हूँ। वहाँ सारे कमरे बुक्ड हैं, जगह नहीं है।"[1] सरकारी कर्मचारी ही सरकार की सुविधाएँ जनता तक पहूँचाने में बाधा डालते हैं। बड़े-बड़े मालिकों से पैसा मिलने पर यात्रियों को उनके होटलों में पहूँचाकर वे कम्मीशन लेते हैं। सरकारी कर्मचारी के पद में बैठकर एक होटल एजेंड का काम भी वह करता है। सरकारी कर्मचारियों के ऐसे व्यवहारों के कारण ही सरकारी संस्थाओं से जनता दूरी रखती है। सार्वजनिक क्षेत्रों की गिरावट का प्रमुख कारणों में एक यही है।

'वर्दी' कहानी दरअसल वर्दी की ताकत का दस्तावेज़ है। रमाशंकर पुलीस है और उसने अपनी वर्दी के बल पर दूसरों को तंग किया है। घर की कोई भी वस्तु उसने पैसा देकर खरीद नहीं ली। दूकानदारों को धमक्कियों देकर घबराकर उसने सामग्रियाँ ली हैं। वर्दी की ताकतों को ममताजी इन वाक्यों में व्यक्त करती है "कभी भी रमाशंकर को पैसे देने की ज़रूरत नहीं पडी थी। आशा ने जब सहमते हुए धीरे से कहा, 'पैसे तो दे दीजिए उसके'। रमाशंकर ने चिढ़कर उसकी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 372

तरफ देखा, 'तुम क्या सोचती हो, यह वर्दी पहन कर क्यों आया हूँ। बिना बात टाँग न अडाया करो बीच में'। आशा पर वर्दी का रौब गालिब हो गया। वर्दी की ताकत जानने के बाद तो उसे लगने लगा कि रमाशंकर आटा भी पिसवाने जाए तो वर्दी पहनकर जाए।"[1]... ममताजी रमाशंकर की पत्नी के विचारों के द्वारा पुलीसवालों के ऐसे व्यवहारों पर व्यंग्य करते हुए लिखती है "वर्दी के बूते पर उसके पति को हर चीज़ मुफ्त हासिल हो जाती। .....उसने तो यही सोचा कि शायद सरकार ने यह वर्दी रमाशंकर को इसलिए दी है कि वह अपनी पत्नी को और घर को खुशहाल रखें।"[2] अनपढ़, सीधा-साधा पत्नी आशा सोचती है कि घर की अवश्यक सामग्रियाँ भी वेतन के समान सरकार से मिलती हैं। आशा पति की डकैती को समझने के लिए उतना समर्थ नहीं है।

'वर्दी' कहानी के राजू के द्वारा ममताजी पुलीसवालों की अमानवीयता पर आम जनता की मानसिकता और मन में दबा रखे विरोध की भावना को प्रकट करती है। राजू दरोगा रमाशंकर का बेटा है। आठ आयूवाले यह बच्चे पिता को डरता है। उसे लगता है कि वर्दी में पापा, पापा नहीं, राक्षस है। इसलिए राजू पापा की वर्दी को जलाकर उसे मनुष्य बनाना चाहता है। "उसे अपनी हिंदी पुस्तक का एक पाठ याद आया जिसमें लिखा था, 'होली की आग में समस्त बुराइयाँ भी नष्ट हो जाती हैं, ऐसा लोग मानते हैं।' राजू उठा। धीरे से उसने कमरे की चिटखनी खोली। फिर वह वापस कमरे में आया। दरवाज़े पर लटकी पिता की वर्दी उतारी

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 93
2. वही

और कमरे से बाहर हो गया। बाहर होलिका दहन की गरम आँच की नरम तपन थी, उमंग थी और उत्साह। राजू ने लपक कर वर्दी लपटों में डाल दी। और बिना किसी से बोले वापस घर में घुस गया। कुछ ही देर में उसे गहरी नींद आ गयी।"[1] होली की आग में जिस प्रकार सारी बुराइयाँ खतम हो जाती हैं उसी प्रकार पिता के मन और शरीर में सारी बुराइयाँ पैदा करनेवाली वर्दी को जलाकर उसे एक मनुष्य बनाने की कोशिश राजू करता है। राजू और रमाशंकर दोनों यथाक्रम पूरे भारत की आम जनता और भ्रष्ट पुलीस व्यवस्था का प्रतीक है। पुलीस व्यवस्था या प्रशासन व्यवस्था में व्याप्त सभी कलंकों से, भ्रष्टाचारों से और अमानवीयता से उसे मुक्त कराना चाहिए। सभी बुराइयों को आग में जलाकर एक नवीन व्यवस्था का सृजन करना चाहिए।

3.4.7 समाचार पत्रों की मूल्यहीनता

हम जानते हैं कि मीडिया लोकतंत्र के चौथा स्तंभ है। मीडिया में समाचार पत्र, रेडियो, टेलिविशन, कम्प्यूटर, फेसबुक, ट्विटर जैसे अनेक पहलू हैं। लेकिन प्रशासन से जुडे नीतियों और निर्णयों की सूचना आम जनता को समय-समय मिलने में समाचार पत्र अहम भूमिका निभाती है। इसलिए कहते हैं कि समाचार पत्र जनसेवा का एक सशक्त माध्यम है। दुनिया में घटित किसी भी घटना को भी आम जनता तक पहूँचाने और जनता को अवगत कराना इसका लक्ष्य है। संचार माध्यमों और सूचना प्रौद्योगिकी के क्षेत्रों में विकास कितना भी तेज़ी होने पर भी समाचार

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 97

पत्रों का महत्व घटता नहीं है। लेकिन आज के ज़माने में, समाचार पत्रों की ईमानदारी पर शंका करना पडती है। वे सस्ते चैनलों से सहमत होकर सच्चाई को उल्टा-पल्टा करके जनता के सामने लाते हैं। एक ही विषय को प्रत्येक अखबार में प्रत्येक तरीके से, प्रत्येक दृष्टि से प्रस्तुत कर जनता के मन में शंका पैदा कराया जाता है। समाचार पत्रों में संपादक उसके मालिकों के सिद्धान्तों के अनुसार समाचार प्रस्तुत करते हैं। किस विषय के बारे में जनता अधिक सचेत कराना है या किस विषय को नगण्य कराना है इसका निर्णय संपादक के स्वार्थ-लाभ के अनुसार बदलता रहता है। प्रशासन के अन्य क्षेत्रों में आयी गलतियाँ देश और जनता के विकास और प्रगति में कितना अवरोध पैदा करती हैं, उससे दुगुना अवरोध समाचार पत्रों की गलती से पैदा होती है। आज समाचार पत्रों में आयी खबरों में कितना सच है, कितना झूठ है, यह समझना मुश्किल की बात है। 'यह ज़रूरी नहीं' नामक कहानी में ममताजी समाचार पत्रों के दफ्तर में काम करनेवाले लोगों की मानसिकता पर इशारा करती है। ममताजी उनके बारे में कहती है "लोग झूठ नहीं बोलते थे। सच भी नहीं।"[1] क्योंकि अखबार के लिए समाचार उल्टा करते-करते सच बोलने की ताकत उनसे नष्ट हो गया है। उस दफ्तर में काम करनेवाला हरि की आदतों को व्यक्त कर ममताजी इस बात को स्पष्ट करती है। "घर पर हरि झूठ बोलता था................ झूठ वह पड़ोसियों से भी बोलता और धोबी से भी। वैसे उसे चकमा देना - झूठ बोलने से ज़्यादा पसंद था, क्योंकि चकमा चुप रहकर भी दिया जा सकता था। तीसरे दर्जे के पास से वह कई बार लोकल ट्रेन में फर्स्ट

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 40

क्लास में यात्रा कर चुका था और कभी-कभी जब रात को उसकी पत्नी उसे सहलाने लगती, तब वह आँख बन्द कर सोने का अभिनय कर लेता। फिर भी चकमे वह कम दे पाता था, क्योंकि चकमे मौके से संबद्ध थे।'[1] हरि का एकमात्र लक्ष्य है मुख्य संपादक और चपरासी को खुश रखना। मुख्य संपादक की इच्छाओं और सिद्धान्तों को वह अच्छी तरह जानता है। इसके अनुसार खबरों को प्रस्तुत कर वह तारिफ पा लेता है। वह चपरासी को इसलिए पसंद करता है कि हर कहीं से समाचार माने अफ्सरों से संबन्धित छोटी-छोटी खबरों मिलने के लिए चपरासी की ज़रूरत है, "चपरासी से वे हमेशा अच्छे संबन्ध रखते क्यों चपरासी सूचनाओं का विश्वस्त लिफाफा था।"[1] समाचार का उल्टा करके-करके वह दफ्तर के लोगों के संबन्धी छोटी जानकारियों से झूठी कहानियाँ बनना और उन कहानियाँ दफ्तर में फैलाना शुरू करता है। नौकरी के क्षेत्र में बेइमानी करते-करते उसका स्वभाव और आदत ऐसे ही बन गया।

सर्कुलेशन बढ़ाने के लिए झूठी समाचारों बनाकर छपनेवाले सबसे निचले स्तर की पत्रधर्मिता का चित्रण 'बाल-बाल बचनेवाले' कहानी में देख सकता है। कहानी की सुचेता अविवाहित युवति है और एक कॉलेज का लेक्चर भी है। एक दिन रेलगाडी से उतरते वक्त पाँव फिसल कर फ्लेटकॉम के नीचे रेल पटरी और दीवार के बीच के जगह में गिर गयी। सौभाग्यवश वह बच गयी। लेकिन बाल-बाल बचे गये सुचेता को छोडने के लिए वहाँ के संवाददाताएँ तैयार नहीं थे। अगले

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 41
2. वही

सुबह का समाचार था "प्रेम में निराश युवति ने चलती गाडी से छलांग लगा कर जान देने की कोशिश कीं - बताया जाता है कि देर शाम प्रयाग स्टेशन से लखनऊ जानेवाली एक्सप्रेस गाड़ी से एक नवयुवति ने आत्महत्या का प्रयास किया लेकिन वह बच गयी। युवति का नाम का खुलासा नहीं हो सका। उसने पीली रेश्मी साड़ी और काला शॉल पहना हुआ था। प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार वह अच्छे घर की पढ़ी-लिखी महिला मालूम देती थी।"[1] समाचार आने की कुछ दिनों के अन्दर ही सुचेता के बारे में कॉलेज और गाँव में तरह-तरह अफवाहें फैलने लगा। किसी के अनुसार वह बेवफाई की मार खाई युवती थी तो और किसी के अनुसार अविवाहित होकर गर्भवती बननेवाली स्त्री थी। समाचार से संबन्धित उगनेवाले चर्चाएँ सुचेता की जीवन को एकदम बरबाद किया।

अधिकार, धन, राजनीति आदि के सामने आज पत्रधर्मिता चुप्पी हो जाती है। किसके पास अधिकार या सत्ता है उनके इच्छा के अनुसार समाचार पत्रों खबरें छपते हैं। 'श्यामा' कहानी में रमेशचन्द्र श्रीवास्तव विजिलेंस इंस्पेक्टर है। उसने अपनी बीवी को सीढ़ियों से गिराकर मार डाला। घरवाले, पडोसियों, पुलीसवाले सबको असली घटना के बारे में पता है। लेकिन सच्चाई को बताने के लिए किसी को भी धैर्य नहीं है। सत्य को उसी प्रकार सामने प्रस्तुत करने की वादा करनेवाले समाचार पत्र भी उस घटना को एक दुर्घटनावश मौत के समान प्रस्तुत कर दिया। "तभी एक दिन अखबार के स्थानीय पृष्ठ पर एक कॉलम में सबसे नीचे छोटी सी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 252

खबर दिखाई दी, रमेशचन्द्र श्रीवास्तव की पत्नी श्यामा श्रीवास्तव सीढ़ी से गिर कर बेहोश हो गयी। उपचार के लिए उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहाँ आज सबेरे उनका दम टूट गया।"[1] अधिकारियों और सत्ताधारियों से बिगाडकर अपने संस्था को किसी भी प्रकार का नुकसान पहूँचाने के लिए अखबार के मालिक भी तैयार नहीं हैं। जिसके पास सत्ता या अधिकार है, उनके आदेशों के अनुसार समाचार छपनेवाली एक संस्था के रूप में अखबार का स्तर गिर गया है।

देश को सही रास्ता दिखाने के लिए और देश को सुरक्षित रखने के लिए उत्तरदायी ऐसे क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार और अमानवीयता सिर्फ उस क्षेत्र का ही नहीं, पूरे देश को और देश के भविष्य को बरबाद करते हैं। ममताजी अपनी कहानियों के द्वारा जनता को इसकी ओर सजग बनाने की कोशिश करती है।

3.5 निष्कर्ष

नवऔपनिवेसिक स्थितियाँ जनता के मन में यह विश्वास पैदा करती है कि आज सिर्फ धन ही महत्वपूर्ण है। मनुष्य का मूल्य अर्थ के आधार आँका जाता है। ऐसी स्थिति में आम जनता के जीवन के संघर्षों को ममताजी ने अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। अर्थ को इस प्रकार महत्व देने पर जनता के मन में विशेषकर डॉक्टरों, राजनेताओं अधिकारियों के मन में अर्थ के प्रति उत्पन्न लालच पर ममताजी ने प्रकाश डाला है। आर्थिक लालच से देश में भ्रष्टाचार का बोलबाला हो गया है। देश का कोई भी क्षेत्र भ्रष्टाचार से मुक्त नहीं है। भ्रष्टाचार को रोकने के

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 258

लिए ज़िम्मेदार व्यक्ति ही इसमें शामिल हो गये हैं। देश की ऐसी स्थितियों के लिए देश के राजनेता और नौकरशाह समान रूप से उत्तरदायी हैं। आम जनता की जीवन परिस्थितियों को सुधारने के लिए सबसे पहले समानता, भाईचारा से संपन्न विलासिता विहीन एक प्रशासनिक व्यवस्था होनी चाहिए। विलासिता से मुक्त होने पर उपभोगवादी संस्कृति से भी एक हद तक देश को हम मुक्त कर सकेंगे। अनुशासन और सदाचार के ज़रिए नई प्रशासनिक व्यवस्था को रूपायित करना आज बहुत आवश्यक है।

❖❖❖

चौथा अध्याय

ममता कालिया की कहानियों में स्त्री

चौथा अध्याय
ममता कालिया की कहानियों में स्त्री

4.0 प्रस्तावना

स्त्री और पुरुष समाज के दो अंग हैं। दोनों के सामंजस्य से परिवार एवं समाज परिचालित होता है। एक का महत्व दूसरे से कम नहीं है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि हमारी सामाजिक व्यवस्था धर्म, नैतिकता, सुरक्षा, शुचिता, सद्नाम आदि मान्यताओं के ज़रिए स्त्री को अपने अधीन रखने की कोशिश करती रहती है। आज की नारी इन धारणाओं और मान्यताओं को नगण्य मानकर पुरुष के साथ खडे होने का प्रयास कर रही है। क्योंकि स्त्री अपनी अस्मिता को पहचानती है। इस अस्मिता ने उसे सिखाया है कि पुरुष के हाथों की कठपुथलियाँ न बनकर अपनी स्वतंत्रता के लिए लडना चाहिए। स्त्री की इस महत्वपूर्ण लड़ाई में समकालीन साहित्यकार विशेष योगदान दे रहे हैं। पुरुष की छाया से हटकर अपने अधिकारों की माँग करनेवाली स्त्री को समकालीन साहित्य में हम देख सकते हैं। ममता कालिया की कहानियों में अपनी मर्यादा और अस्मिता को कायम रखने के लिए विद्रोह करनेवाली स्त्री का स्वर गूँज उठता है।

4.1 भारतीय समाज में स्त्री

इतिहास पर विचार करने पर हमें पता चलता है कि प्राचीन काल से लेकर अब तक स्त्री की स्थिति में काफी परिवर्तन आ गया है। पहले हमारा समाज मातृसत्तात्मक व्यवस्था पर आधारित था। मातृसत्तात्मक व्यवस्था में स्त्रियाँ पूर्ण रूप से स्वतंत्र थीं और अधिकार भी स्त्री के हाथों में था। लेकिन धीरे-धीरे मातृसत्तात्मक व्यवस्था पितृसत्तात्मक व्यवस्था में परिवर्तित होने लगी तब से लेकर स्त्री की स्थिति में बदलाव का सिलसिला शुरू हुआ। पितृसत्ता का विवेचन करते हुए प्रभा खेतान ने इस प्रकार लिखा है "पितृसत्ता एक सामाजिक घटना है, हज़ारों सालों से चली आ रही ऐसी व्यवस्था है, जिसमें स्त्री की अधीनस्थता सर्वविदित है। पितृसत्ता ने स्त्री को अपने ज्ञान की वस्तु बनाया। उसे साधन के रूप में प्रयोग किया - उसके नाम, रूप, जाति, गोत्र सब अपने संदर्भ में परिभाषित किए।"[1] क्योंकि पितृसत्तात्मक व्यवस्था में समाज और परिवार का मुखिया पुरुष है। इस व्यवस्था ने स्त्री पर पाबन्दियाँ रखकर स्त्री से उसकी सारे अधिकारों को छीन लिया है और बचपन से ही लड़की को स्त्रीत्व के गुणों को सिखाकर आदर्श नारी के रूप में उसे ढालने का प्रयास किया है। यहाँ सीमोन द बोउवर का यह कथन उद्धृत करना उचित होगा - "औरत जन्म से ही औरत नहीं होती बल्कि बढ़कर औरत बनती है। कोई भी जैविक, मनोवैज्ञानिक या आर्थिक नियति आधुनिक स्त्री के भाग्य की अकेली नियन्ता नहीं होती। पूरी सभ्यता ही इस अजीबो - गरीब जीव का

---

1. प्रभा खेतान - उपनिवेश में स्त्री - पृ. 39

निर्माण करती है।"[1] अर्थात् समाज उसे दोयम दर्जे का बने रहने के लिए वातावरण तैयार करता है। उसका मानना है कि स्त्री की दुनिया गुलामी की जंजीरों में जकड़ी हुई है, जिसमें अमीर, गरीब, हर जाति और देश की स्त्रियाँ सम्मिलित हैं। इसलिए कोई भी स्त्री इससे मुक्त नहीं है। लेकिन समाज सुधारकों, साहित्यकारों, विभिन्न आन्दोलनों और शिक्षा के ज़रिए स्त्री में इस आदर्श नारी के ढ़ाँचे से मुक्ति पाने की चाहत और ताकत उत्पन्न हुई है। वे अपने अस्तित्व और अस्मिता के प्रति जागृत होकर घर की दहलीज के बाहर कदम रखने लगी हैं।

4.2 स्त्री अस्मिता

'अस्मि' का अर्थ है 'मैं हूँ'। 'अस्मि' की भाववाचक संज्ञा है अस्मिता। इसका अर्थ है स्वत्व का बोध। अर्थात् अपने होने की पहचान। अस्मिता बोध किसी को व्यक्ति बनाता है। स्त्री अस्मिता का अर्थ है एक व्यक्ति के रूप में स्त्री की पहचान अर्थात् स्त्री स्वयं को स्वतंत्र, निर्णय-सक्षम, संतुलित समझना।

आज की स्त्री तमाम बन्धनों से निकलकर स्वतंत्र व्यक्तित्व के रूप में अपनी पहचान कायम रखना चाहती है। इस चाहत से स्त्री की अस्मिता की तलाश शुरू होती है। रमणिका गुप्ता स्त्री अस्मिता के पक्ष पर विचार करती हुई कहती है "आखिर स्त्री अस्मिता है क्या? दरअसल यह पुरुष के समान स्त्री का समान अधिकार, स्त्री के प्रति विवेकमूलक दृष्टिकोण तथा स्त्री द्वारा पुरुष के वर्चस्व का प्रतिरोध है। औरत का केवल स्वतंत्र होकर निर्णय ले सकना या आर्थिक रूप से

---

1. सीमोन द बोउवार (अनु. प्रभा खेतान) - स्त्री उपेक्षिता - पृ. 121

स्वतंत्र हो जाना उसकी अस्मिता नहीं है। सही मायने में स्त्री अस्मिता का अर्थ होगा स्त्री के प्रति समाज के दृष्टिकोण और मानसिकता में बदलाव, जिसमें स्त्री का खुद का दृष्टिकोण भी शामिल हो।"[1] लेकिन हमारा पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था स्त्री की इस विकासशील मानसिकता को नकारात्मक दृष्टि से देखती है।

स्त्री को अपने भागीदार के रूप में देखने के लिए पुरुष की मानसिकता अब भी तैयार नहीं है। इस संदर्भ में स्त्री की समानता पर आशारानी ब्योरे का वक्तव्य उल्लेखनीय है "नारीत्व जिसका पृथक अस्तित्व हो। अपना एक अहम् हो, गौरव हो। अपना स्वाभिमान, अपनी उपयोगिता, अपनी सार्थकता हो। जो न पुरुष से हीन माना जाय, न पुरुष की बराबरी में अपनी क्षमताओं का अपव्यय करें। जो पुरुष का पूरक हो, उसकी प्रेरणा हो, उसका मार्गनिर्देशन करनेवाला हो। उसकी सहयोगी हो घर, बाहर, सभी जगह, सभी क्षेत्र में। संसार और समाज के निर्माण में दोनों की समान भागीदारी हो। भागीदारी के लिए कार्यों का स्पष्ट विभाजन और परस्पर सहयोग की स्थिति स्पष्ट हो। नारी-पुरुष के संबन्धों का आधार मानवीय प्रेम, सम्मान और सहकार हो। यह आदान-प्रदान सहज, स्वस्थ और कुंठा रहित हो। लिंग जनित पहचान के अलावा भी स्त्री-पुरुष में सहज मेति संबन्ध विकसित किया जा सके तो संसार को अनेक विकृतियों से बचाया जा सकता है।"[2] स्त्री और पुरुष के बीच इस मेति संबन्ध विकसित न होने के कारण समाज, परिवार, नौकरी आदि कई क्षेत्रों में अपने अस्तित्व के लिए स्त्री को संघर्ष करना पडता है। स्त्री का

1. रमणिका गुप्ता - स्त्री विमर्श : कलम और कुदाल के बहाने - पृ. 55
2. आशारानी ब्योरे - भारतीय नारी : दशा और दिशा - पृ. 172

यह संघर्ष पुरुष की सहयोगिता के बिना सफल नहीं हो जाता है। इसलिए निर्मला जैन ने इस प्रकार कहा है "बिना पुरुष के सहयोग से स्त्री की पहचान नहीं बदल सकती। स्त्री को मुकम्मल होने के लिए पुरुष की मदद लेनी ही पड़ेगी। सच्चे अर्थों में नारी अस्मिता तभी आकार लेगी जब पुरुष स्त्री के पक्ष में खड़ा होने की बात करें....... जब तक नारी में अपने फैसले करने का हक लेने का विचार नहीं आएगा तब तक वह अपने को स्वतंत्र मानने की अधिकारिणी कहाँ है।"[1] स्त्री और पुरुष में सहभागिता स्थापित करने के लिए सबसे पहले पुरुष की मानसिकता को बदलना चाहिए। इससे हम हमारी सामाजिक व्यवस्था में भी बदलाव ला सकते हैं। इस प्रकार स्त्री और पुरुष को बराबरी स्थान होनेवाली एक नई व्यवस्था की स्थापना हम कर सकते हैं। समकालीन साहित्यकार इस ज्वलंत विषय पर जागृत हैं। इसलिए वे अपनी रचनाओं के द्वारा स्त्री और पुरुष को समान स्थान होनेवाली एक नयी व्यवस्था की स्थापना करने की कोशिश करते हैं।

4.3 साहित्य में स्त्री अस्मिता की अभिव्यक्ति

स्त्री विमर्श साहित्य का मुख्य विषय है। आदर्श स्त्री की छवि के बने-बनाये चौखटों से बाहर निकालने की छटपटाहट स्त्री के अंदर युगों से चली आ रही थी। साहित्यकार स्त्री की इस छटपटाहट को वाणी देने का प्रयास कर रहा है। वास्तव में साहित्य के माध्यम से नारी के स्वत्व को पहचानने का प्रयास है स्त्री विमर्श। समकालीन साहित्य स्त्री के स्वत्व को सुरक्षित रखने के लिए प्रतिरोध

---

1. हंस, जनवरी 2002 - पृ. 84

करने की आवश्यकता पर ज़ोर देता है। सदियों से पितृसत्तात्मक व्यवस्था और परंपरागत मनोवृत्तियों में फँसकर सिमट गयी स्त्री को आगे जाने की प्रेरणा और चाहत समकालीन साहित्य ने दिया है। तसलीमा नसरीन का यह वक्तव्य इस अवसर पर समीचीन होगा - "प्राचीन धारणाओं को चाहकर ही तोड़ा जा सकता है। चाहने से ही समाज में तरह-तरह के कुसंस्कार, पाखण्ड और अकल्याणकारी चीज़ों के विरुद्ध खड़ा हुआ जा सकता है।"[1] स्वामी विवेकानंद ने एक अवसर पर कहा है कि जब तक महिलाएं स्वयं अपने विकास के लिए आगे नहीं आएँगी तब तक उनका विकास असंभव है। समाज और व्यवस्था में प्रचलित धारणाओं और रूढ़ियों से टकराकर आगे आने का साहस उत्पन्न करने में समकालीन साहित्यकार विशेष योगदान दे रहे हैं। रांगेय राघव, चित्रा मुद्गल, कमल कुमार, क्षमा शर्मा, प्रभा खेतान, उदय प्रकाश, ममता कालिया आदि का नाम इस संदर्भ में चर्चित है। ममता कालिया अपनी रचनाओं के द्वारा स्त्री को अपने हाशिएकृत संसार को पहचान कर और उसे तोडकर पुरुष के बराबर अधिकारों के लिए जागरूक करने का कार्य करती है। स्त्री अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाने की ज़रूरत पर संकेत करते हुए ममताजी ने इस प्रकार कहा कि "जब स्त्री को लगा कि उसका अस्तित्व, स्थान, अधिकार और आज़ादी संकट में है, उसे अपने विचारों को अभिव्यक्ति देनी पडी।"[2] इसलिए ममता कालिया ने अपनी कहानियों में स्त्री जीवन के हर क्षेत्र की अभिव्यक्ति कर स्त्री मन में जलते अंगारों का चित्रण किया है।

---

1. तसलीमा नसरीन - चारकन्या - पृ. 39
2. ममता कालिया - भविष्य का स्त्री विमर्श - पृ. 14

4.4 ममता कालिया की कहानियों में अभिव्यक्त नारी अस्मिता

ममता कालिया समकालीन हिंदी साहित्य की सशक्त, सजग और संवेदनशील रचनाकार हैं। उन्होंने समसामयिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक परिस्थितियों को अपनी रचनाओं में उभारने का प्रयास किया है। इसके साथ ही साथ हमारे समाज में स्त्री की स्थिति क्या है, इस पर उन्होंने विशेष ध्यान दिया है। ममताजी यह व्यक्त करना चाहती है कि आज स्त्री की प्रगति एक कदम आगे और दो कदम पीछे हो रही है। क्योंकि हमारी व्यवस्था स्त्री को हमेशा एक टाइमटेबिल में बंधित रखना चाहती है। ममताजी ने अपनी पुस्तक में इस प्रकार लिखा है - "सोमवार से रविवार तक के लिए लड़की के हाथ में एक टाइमटेबिल पकड़ा दिया जाता है 'यह है तुम्हारी दिनचर्या और यह है तुम्हारी चौखटा। इसमें चैन से चलो, फिरो पर इसे लांघो मत।"[1] धर्म, नैतिकता, सुरक्षा, शुचिता आदि औजारों के ज़रिए स्त्री और उसके संसार को इस टाइमटेबिल के भीतर रखने की कोशिश करते हैं। हमारी व्यवस्था स्त्री और पुरुष को अलग-अलग टाइमटेबिल और कानून रखती है। ममताजी स्त्री और पुरुष को एक सिक्के के दो पहलू मानती हैं। इसलिए वे मानती है कि पुरुष को जितना अधिकार और स्वतंत्रता हो उतना ही स्त्रियों को भी होना चाहिए। उन्होंने अपने साहित्य के द्वारा स्त्री को पुरुष के बराबर दिखाने की कोशिश किया है। उनके साहित्य सृजन को उद्देश्य भी यह है। अपनी अस्मिता, अधिकार, स्वतंत्रता को कायम रखने के लिए खुलकर प्रतिरोध करने की आवश्यकता पर

---

1. ममता कालिया - भविष्य का स्त्री विमर्श - पृ. 8

ममताजी अपनी कहानियों में विचार करती हैं। समाज, परिवार, नौकरी, धर्म आदि सभी क्षेत्रों में स्त्री को दोयम दर्जे के मानकर उसे शोषण की वस्तु बनाते हैं। लेकिन इन विपरीत परिस्थितियों में मुरझाने के बजाय अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए प्रतिरोध जाहिर करते हैं उनके नारी-पात्र। स्त्री की स्वतंत्रता के बारे में ममताजी ने इस प्रकार लिखा है - "स्वतंत्रता की सीमा-रेखा का नाम है सुबुद्धि। यही सीमा किसी और तय किया तो स्वाधीनता की अवधारणा नष्ट हो जायेगी। स्त्री अपने मन से जिये, सोचे, लिखे, बोले। परिवेश के प्राणी उसे सेंसर की निगाहों से न देखें और उस पर संदेह कर उसका उच्चारण कुंठित न करें, यही स्त्री की स्वाधीनता है।"[1] हर जगह में स्त्री को अपनी स्वतंत्रता को खुद ही निर्णय करना चाहिए। तब स्त्री अपनी अस्मिता को सुरक्षित रखकर जी सकती है। ऐसे होने पर घर में हो या कहीं भी हो स्त्री अपना टाइमटेबिल अपनी मर्जी के अनुसार बना सकती है। ममता कालिया की कहानियाँ सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक और नौकरी के क्षेत्रों में स्त्री की स्वतंत्रता और अस्मिता पर प्रश्न चिह्न लगानेवाले पहलुओं और उन पर स्त्री की प्रतिक्रिया एवं प्रतिरोध को व्यक्त करती हैं।

4.4.1 परिवार में स्त्री

परिवार समाज की लघु, परंतु महत्वपूर्ण संस्था है। परिवार में स्त्री और पुरुष का समान स्थान होना चाहिए। लेकिन हमारी पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था स्त्री को दोयम दर्जे के मानकर उसको शोषित करती है। पुरुष स्त्री को अपनी संपत्ति

---

1. ममता कालिया - भविष्य का स्त्री विमर्श - पृ. 10

समझकर उसकी देह और मन पर अबाध अधिकार स्थापित करता है। हमारी व्यवस्था और समाज स्त्री के सामने आदर्श नारियों का चरित्र रखकर उसे पुरुष की इच्छानुसार जीने के लिए विवश कराती है। परिवार में स्त्री चाहे वह पत्नी, बहन, बेटी या माँ हो, उसे पुरुष अपने अधिकार में दबाकर रखना चाहता है। लेकिन आज नारी सुशिक्षित है और अपने अधिकारों के प्रति जागृत भी है। आदर्श नारी की ढ़ाँचे में सिमटने के लिए वह अपने अस्तित्व पर समझौता नहीं करती है। इस संदर्भ में डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की निम्नलिखित पंक्तियाँ सार्थक लगती हैं - "सामयिक नारी अनेक वर्जनाओं से मुक्त अपने ढ़ंग से अपना जीवन जीने पर बल दे रही है। वह अपना अस्तित्व स्वाधीन रखना चाहती है.......... पुरुष का नारी संबन्धी दृष्टिकोण अब भी बहुत कुछ वैसा ही हैं, जैसे पहले था। किंतु नारी के उभरते हुए नए व्यक्तित्व के साथ उसे अपने को एड़जस्ट करने की आवश्यकता का अनुभव हो रहा है।"[1] लेकिन कभी-कभी पुरुष एडजस्ट करने के लिए तैयार नहीं होने पर स्त्री को घोर संघर्ष करना पडता है। पति से, ससुरालवालों से, भाई से, पिता से सभी से संघर्ष की स्थिति पैदा होती है।

4.4.1.1 पति-पत्नी संबन्ध में स्त्री

परिवार की आधारशिला है दाम्पत्य। दाम्पत्य या विवाह स्त्री और पुरुष एक दूसरे की सहायता करते हुए जीवन भर साथ चलने की प्रक्रिया है। सीमोन द बोउवार के अनुसार "विवाह में दो पूर्ण व्यक्तियों का संयोग होना चाहिए, उनका

---

1. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय - स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य का इतिहास - पृ. 35

स्वतंत्र अस्तित्व होना चाहिए। विवाह आश्रय का रूप नहीं होना चाहिए और न भोगने या जबरदस्ती निर्वाह का।"[1] विवाह स्त्री और पुरुष को समान सुख देनेवाला, समान अधिकार देनेवाला, दोनों के व्यक्तित्व का विकास करनेवाला संबन्ध होना चाहिए। लेकिन भारतीय संदर्भ में पुरुष दाम्पत्य में हमेशा अपना अधिकार कायम रख रहा है। तब दाम्पत्य में समानता का भाव नष्ट हो जाता है। लेकिन आज स्त्री पुरुष के इस स्वामित्व और अधिकार की भावना को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है। वह समानता और अस्तित्व की सुरक्षा के लिए लड़ती है। ममता कालिया की कहानियों में परिवार में स्त्री की स्थिति और पति-पत्नी के बीच के तनाव का सही चित्रण मिलता है। शंभू गुप्त ने लिखा है - "दाम्पत्य ममता कालिया की सर्वप्रधान कथावस्तु है। दाम्पत्य का इतना व्यापक और दृष्टि संपन्न कथानक उनके यहाँ मिलता है कि उसके आधार पर पूरा एक समाजशास्त्रीय अध्ययन किया जा सकता है।"[2]

4.4.1.1.1 अस्तित्व का संघर्ष

विवाह में स्त्री-पुरुष के बीच समानता, प्रेम और सहयोग का संबन्ध होना चाहिए। लेकिन एक औसत पति अपनी पत्नी को अपने बराबर देखना नहीं चाहता। अगर वह एक सीढ़ी ऊपर लगती है तो उसे किसी न किसी प्रकार काट-छीलकर अपने से नीचे लाने की कोशिश में पति सतत जुटा है। इसके बारे में ममता

---

1. सीमोन द बोउवार - स्त्री उपेक्षिता - पृ. 230
2. सं. अरुण प्रकाश - समकालीन भारतीय साहित्य - मार्च-अप्रैल - पृ. 193

कालिया एक साक्षात्कार में कहती है - "औरत की जान का सारा बखेड़ा पुरुष से ही शुरू होता है। पुरुष का विरोध करना उसकी अनिवार्यता है। औसत पति कभी नहीं चाहता कि उसकी पत्नी उसे आगे निकल जाए। स्त्री को सबसे पहले परिवार की बंदिशों तथा अपेक्षाओं से मुक्त होना है।"[1] ममता कालिया की अनेक कहानियों में पुरुष की इस अहंभरी मानसिकता का पर्दाफाश देख सकते हैं।

'मनोविज्ञान' नामक कहानी में पत्नी को दूसरों के सामने नीचे या बुरा दिखाने की पति की कोशिश को ममताजी व्यक्त करती है। नवीन अपनी पत्नी कविता के चेहरे पर उभरी पीडा देखने में खुश है। एक दिन नवीन को मिलने के लिए घर में उनके कुछ मित्र पहूँच गये। नवीन के आदेश पाकर कविता को उन लोगों से झूठ बोलना पडता है कि नवीन घर में नहीं, लखनऊ में है। लेकिन वे वापस चले जाने पर नवीन कविता से कहता है कि वह उन मित्रों को मिलने के लिए अभी जाएगा। "नहीं..... कविता के मुँह से अबूझ चीख निकली। वह उठकर बोल गयी, 'अभी कुछ देर पहले तो तुमने मुझसे कक्कड़ को कहलावाया था कि तुम लखनऊ गए हुए हो। वह मुझे कितनी झूठ समझ रहा होगा।' कविता ने रुआंसी आवाज़ में कहा।"[2] तब नवीन जवाब देता है कि "तुम्हें इतनी चिंता क्यों है कि वह तुम्हें क्या समझेगा। क्या वह तुम्हारे लिए इतना महत्वपूर्ण है...... यह सब तुम्हारी वजह से घर आते हैं।"[3] यह सुनकर कविता घबरा गयी। उसे लगा कि

---

1. सं. डॉ. मुक्ता - हरिगंधा - जून 2010 - पृ. 15
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 370
3. वही

वह एक मनोरोगी के साथ जी रही है। कविता के मन की पीड़ा देखकर नवीन को बेहद तसल्ली महसूस हुई। एक बार कविता ने गुस्से में नवीन के माँ के बारे में बुरी बातें कहीं। नवीन ये सब रिकार्ड करके कविता को ब्लॉकमेल करना शुरू किया। कविता शोध छात्रा है और उसकी पढ़ाई में बाधा डालने के लिए उसने इसका इस्तेमाल किया। "ठीक है कविताजी, आप जाइए, कविता सुनिए, अम्मा को मैं ले आऊँगा, खाना भी खिला दूँगा और सिर भी दबा दूँगा उनका। अगर वह पूछेंगी बहू कहाँ है तो यह टेप सुना दूँगा। जो कुछ तुमने उनके बारे में कहा है, मैंने सब टेप कर लिया है ...... टेप मेरी अलमारी में बन्द है।"[1] उसकी धारणा यह है कि खुद की और माँ की सेवा के लिए पत्नी का घर में होना चाहिए। इसके लिए नवीन ने यह घटिया चाल बिछाया ताकि कविता की पढ़ाई भी रुक जाए और न वह किसी के संपर्क में भी न आए। पत्नी अपने से भी आगे जाना उसे पसंद नहीं है।

'पीली लड़की' नामक कहानी की सोना पढ़ी-लिखी है, लेकिन पति की उपेक्षा एवं नफ़रत उसे अन्तर्मुखी बनाती है। ऊब और अकेलापन से बेहद त्रस्त होकर सोना पति से अनुरोध करती है कि जल्दी कॉलेज से वापस आना। लेकिन पति की राय में अपनी प्रतिभाशाली उम्र, संपर्क बढ़ाने, फायदा उठाने और तीर बैठाने की है। पत्नी के साथ समय बिताना उसकी राय में समय बरबाद करने के समान है। पति के ऐसी व्यवहारों से सोना का आत्मबल नष्ट हो जाता है। धीरे-धीरे चुप और सिर झुककर बैठना उसकी आदत बन गयी। 'एक जीनियस की प्रेमकथा'

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 365

नामक कहानी में संदीप अपने आपको दूसरों से श्रेष्ठ मानता है। पत्नी कविता पर हमेशा उपेक्षा की दृष्टि रखता है। उसका एकमात्र लक्ष्य है दूसरों के सामने विशेषकर स्त्रियों के सामने अपना नाम ऊँचा करना और कविता को नीचा दिखाना। एक दिन समाचार पत्र की एक खबर देखकर संदीप ने इस प्रकार कहा कि "परीक्षण से इस बात की भी पुष्टि की गयी कि असुंदर स्त्रियों के पति ज़्यादा कार्यकुशल, उन्मुख, कुण्ठाहीन और तनाव रहित होते हैं। असुंदर स्त्रियों के पतियों में हृदय संबन्धी रोगों की संभावना शून्य प्रतिशत पायी गयी। ....इसका मतलब यह हुआ कि मैं और जैसे मरूँ, कम से कम हृदय रोग से कभी नहीं मरूँगा। मैं बहुत भाग्यशाली हूँ कि तुम मेरी पत्नी हो और मैं तुम्हारा पति।"[1] संदीप के समान 'मुहब्बत में खिलाइए' नामक कहानी के पति भी पत्नी को दूसरों के सामने अपमानित करने में आनन्द का अनुभव लेता है। पति पत्नी पर ऊब होकर दूसरों के सामने इस प्रकार कहा है "मौसम आयेंगे, मौसम जायेंगे, सब्जियाँ आयेंगी, सब्जियाँ जायेंगी और हमारे घर सिर्फ कद्दू करेला छोड जायेंगी...... संसार की समस्त सब्जियों का आखिरी मुकाम कद्दू है। हमारा प्यार, हमारा जीवन, भविष्य सब का सब कद्दू।"[2] पति दूसरों के सामने जब इस प्रकार की निंदा करता है तब पत्नी मन ही मन टूट जाती है। अपमानित करके-करके पत्नी को अपने से नीचा स्थापित करने में वह विजयी बन जाता है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 272
2. वही - पृ. 351

लेकिन कभी-कभी स्त्री पुरुष की इस विकृत मानसिकता पर अपना प्रतिरोध जाहिर करती है। 'तस्की को हम न रोंये' कहानी की आशा इसका उदाहरण है। पति विजेन्द्र आशा को दिन में नफ़रत की दृष्टि से देखता है, लेकिन रात में प्यार के साथ आता है। पति की निंदा भरी दृष्टि से आहत होकर आशा अपना सख्त विरोध प्रकट करती है "दो बार रसोई में उठ बैठ की तो ब्लाउज़ कुछ ऊपर खिसक गया। विजेन्द्र की नज़र उस पर पड़ी और बोला 'वह देखो मांस लटक रहा है'। उसने तुरन्त जवाब दिया 'पता है रात में इसी को तुम वक्ष कहते हैं।"[1] उसी प्रकार एक दिन दूसरों के सामने आशा के शरीर को बर्फ की पहाड़ से समानता कहकर विजेन्द्र ने अपमानित किया है। उसी रात आशा पति के आने पर सो जाने का अभिनय करती है। एक रात उसकी इच्छाओं का इनकार करती हुई वह पति की निंदा और उपेक्षा पर विरोध प्रकट करती है। ममताजी आशा के प्रतिरोध को इस प्रकार चित्रित करती है - "जितेन्द्र एक बार फिर 'माय हार्ट इज़ बीटिंग'..... में मशगूल हो गया था। आशा रात भर विरोध में सो नहीं पायी थी। हिचहिचाती रही थी 'एज़ इफ माय हार्ट इज़ नॉट बीटिंग।"[2] आशा जानती थी कि अगली सुबह उसे चाय की ट्रे हाथों में लेकर 'आपकी सेवा में उपस्थित होने' के भाव में एक विनम्र नाटक का अभिनय करना पडेगा। फिर भी वह अब मन ही मन खुश है।

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 116
2. वही - पृ. 118

भारतीय पारिवारिक व्यवस्था स्त्री को पुरुष के नीचे जीने के लिए मज़बूर बनाती है। इसलिए स्त्री को सबकुछ सहकर जीने की आदेश दिया जाता है। स्त्री को अपने अस्तित्व के बारे में सोचने की ताकत भी बचपन से ही उससे छीन ली जाती है। 'तस्की को हम न रोये' में इका उदाहरण देखा जा सकता है। इसमें आशा के विवाह के समय में माँ इस प्रकार उपदेश देती है - "अब से जिन्दगी में केवल दो चीज़ों पर भरोसा करना, एक प्रार्थना, दूसरी सहनशक्ति।"[1] आज भी हमारी व्यवस्था स्त्री को प्रार्थना और सहनशक्ति पर आश्रय लेकर जीवन चलाने की प्रेरणा देती है। यह स्त्री के आत्मबल छूट जाने का कारण बन जाता है। ऐसी बातें उसे गीदड की तरह पुरुष के पीछे-पीछे चलने में सार्थकता का बोध दिलाती है। 'एक अदद औरत' कहानी की नायिका के द्वारा लेखिका यह पूछना चाहती है कि "कई बार सोचती हूँ मैं कितनी बेवकूफ वजहों से सुखी-दुःखी होती रहती हूँ। मेरा अपना कोई करार, कोई वजूद, कोई इकाई नहीं। कहाँ कहाँ चली जाती हैं मेरी रक्कर लेने की अकड़। मूर्खों की तरह मैं उनके पीछे-पीछे चलने में सार्थकता क्यों अनुभव करती है, आगे-आगे चलने में क्यों नहीं।"[2] इस कहानी में नायक मानस जापानी नृत्य की टिकट लेकर आया है। पत्नी साथ जाना मन से नहीं चाहती है फिर भी बिना एतराज के साथ पति के साथ चली है। क्योंकि आदर्श नारी के ढ़ांचे में जीने के लिए वह मज़बूर बन गयी है। "नहीं, मुझे अपनी नाराज़ी नहीं दिखानी है, एक आदर्श पत्नी की तरह ऊब को भी पतिव्रत का हिस्सा मानकर झेलना है,

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 116
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 228

मुझे मुस्कुराना है, मुझे खुश होना है, मुझे सहमति में सिर हिलाते चलता है।"[1] ममताजी प्रस्तुत कहानी के ज़रिए पाठकों के समक्ष यह प्रश्नचिह्न छोड दिया है कि क्या असल में स्त्री स्वतंत्र हो पायी है या नहीं? क्योंकि वर्तमान समय में भी स्त्री पुरुष निर्मित सामाजिक व्यवस्था के बंदिश में जकडी हुई है। इस व्यवस्था से मुक्ति पाना प्रत्येक स्त्री के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है। 'आज़ादी' नामक कहानी की दादी का कथन है "हमें नाय मिलो गाँधी बाबा, नहीं वासो कहती एक ठो फितूरी दिलाय दे, आज़ादी का कहा करौ, ओढ़बे की चीज़ ने विछायने की।"[2] इसमें दादी की समझ नहीं आया कि उसे किस प्रकार की आज़ादी मिली है। अपनी बातों को घर में बताने का साहस और अधिकार उसे अब भी नहीं है। इसलिए कॉलेज में पढ़ती अपनी पोती से दादी इस प्रकार कहती है "री मुन्नी, थोडी आज़ादी मेरे लिए भी ले आना, पुड़िया में बाँध कै।"[3] दादी के द्वारा स्त्री मन की मुक्ति की चाह इस कहानी में ममताजी दर्शाती है। कॉलेज में पढ़ती पोती के द्वारा यह वह संकेत करना चाहती है कि शिक्षा के द्वारा ही आज़ादी मिलेगी और आवाज़ उठाने की ताकत मिलेगी।

'दूसरी आज़ादी' नामक कहानी में शिक्षा और नौकरी के द्वारा स्त्री किस प्रकार अपनी अस्मिता कायम रखती है इसको दर्शाया गया है। पति वसिम पैसा कमाने के लिए विदेश चला गया और उनकी धारणा है कि स्त्री को पढ़ने और बाहर जाने की ज़रूरत नहीं है। उनकी राय में पत्नी को सिर्फ पैसे की ज़रूरत है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 225
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 192
3. वही - पृ. 194

लेकिन पत्नी तमन्ना पति की इन धारणाओं का पालन करके अपने जीवन को अंधकार में धकेलने के लिए तैयार नहीं है। पति की हुकुम को पार कर पढ़ाई पूरी की, ड्राइविंग सीख ली और बुरका पहनने से इनकार किया। वह नौकरी कर अपनी पैरों में खडे होती है। एक बार पति घर से निकालने की धमकी देता है तो तमन्ना खुलकर कहती है "घर उसी का होता है जी, जो उसमें रहता है। न रहो तो घर में चीटें तो क्या दीमक भी लग जाती है। मैंने और बच्चे ने बसा रखा है यह घर। फिर तो हमारा हुआ न।"[1] ममताजी की स्त्री को 'आज़ादी' नामक कहानी की दादी से 'दूसरी आज़ादी' की तमन्ना की ओर बढ़ाने की प्रेरणा देती है। वे आदर्श नारी और घर की इज्ज़त जैसी धारणाओं को तोडने का आह्वान देती हैं।

स्त्री को घर में पुरुष का समान अधिकार है, स्थान है, और अस्तित्व है। उसे दोयम दर्जे का मानकर घर के कोने में डालने की वस्तु नहीं है। स्त्री पुरुष के कंधे से कंधा मिलाकर आगे जाना चाहिए। लेकिन पुरुष की मानसिकता अब भी पूर्ण रूप से नहीं बदला है। पत्नी की बात आने पर वह धीरे-धीरे परंपरागत धारणाओं की ओर चलती है। आज की पुरुष की मानसिकता ममताजी 'थोडा सा प्रगतिशील' नामक कहानी में स्पष्ट रूप से दर्शाती है। इस कहानी के विनीत शिक्षित है, उच्च नौकरी करनेवाला है। बाहर से वह आधुनिक, प्रगतिशील दिखता है लेकिन भीतर ही भीतर वह पारंपरिक और पतनशील। वह अपनी पत्नी चेतना को घर की चार दीवारों में कैद रखना चाहता है। पत्नी का मार्केट जाना, दूसरों से बातें करना, फॉन और फेसबुक का उपयोग करना ये सब विनीत की दृष्टि में गलत

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 54

हैं। ममता जी आज के पुरुष की मानसिकता इन वाक्यों में व्यक्त करना चाहती हैं - "दरअसल विनीत आज़ाद भारत के असंख्य शिक्षित नवयुवकों जैसा ही था, थोड़ा-थोड़ा, सब-कुछ थोडा सा आधुनिक, थोडा सा पारंपरिक, थोडा सा प्रतिभावान, थोडा सा कुन्द, थोडा सा चैतन्य, थोडा जड़, थोडा सा प्रगतिशील, थोडा सा पतनशील। सभी की तरह उसके सपनों की स्त्री वही हो सकती थी जो शिक्षित हो, पर दबकर रहे, आधुनिक हो लेकिन आज्ञाकारी, समझदार हो लेकिन सोच विचारवाली न हो।"[1] पुरुष कितना आधुनिक विचारवाला हो फिर भी भीतर ही भीतर वह परंपरागत विचारों का अधीन है। पुरुष की इस मानसिकता के बदलने पर स्त्री अपने अस्तित्व का संघर्ष समाप्त कर सकती है। स्त्री को भी अपना जैसा व्यक्ति मानने की मानसिकता पुरुष में होनी चाहिए।

4.4.1.1.2 मानसिक अलगाव

पत्नी को दोयम दर्जे का मानने की स्थिति पति और पत्नी में अलगाव की स्थिति उत्पन्न करती है। दाम्पत्य में ऊबकर वे मन ही मन उदासीन बन जाते हैं। 'रोग' नामक कहानी इसका उदाहरण है। मानसिक अलगाव किस प्रकार दाम्पत्य में दरार लाता है। इसको ममताजी इस कहानी में दर्शाती हैं। प्रबोध सरकारी दफ्तर में काम करता है। नौकरी और कमाई के बिना उसके मन में कुछ भी नहीं है। प्रबोध की मानसिकता निम्न लिखित पंक्तियों में व्यक्त है - "तरक्की के बिना तबादला ऐसा ही था जैसे दहेज के बिना विवाह।"[2] प्रबोध नौकरी के नाम पर,

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 107
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 290

व्यस्तता या भीड़ के नाम पर रोज़ देर होकर घर पहूँचता है। पत्नी बेला को यह समझ में नहीं आया कि दफ्तर से घर पहूँचने के लिए पाँच घंटे कैसे लग जाते हैं। बेला पति के स्नेह और उपस्थिति चाहती है लेकिन पति की तीखें जवाब उसके मन को और भी दुःखी बनाते हैं - "तुम तो घंटों का हिसाब ऐसे पूछ रही हो जैसे पैसों का। कहो तो कल से टैक्सी लेकर आया जाया करूँ और बाल बच्चों के सामने तुम्हारी कमर में हाथ डालकर बैठा रहूँ।"[1] प्रबोध की उपेक्षा, असुरक्षा की भावना आदि से उत्पन्न मानसिक तनाव बेला में सिर दर्द, पीठ दर्द जैसी बीमारियों के रूप में आया है। पति उसके शारीरिक रोग का इलाज करने के लिए तैयार है लेकिन यह समझने के लिए तैयार नहीं है कि उसकी व्यथा शरीर में नहीं, मन में है। पत्नी हमेशा यह चाहती है कि पति उसका ख्याल रखें, उसकी भावनाओं को समझा करें। लेकिन छोटी-छोटी बातें कहकर पति पत्नी से अलग रहने पर दोनों के बीच मानसिक रूप में दूरी बढ़ती हो जाती है।

'मनहूसाबी' नामक कहानी में पति हमेशा पत्नी को विरक्ति और वितृष्णा से देखता है। घर और स्कूल के कामों से थकी पत्नी, पति की नज़र में घर में पडे मैले कपड़ों का अम्बार या जूठे बर्तनों का ढेर जैसी है। पति की घृणा देखकर मनहूसाबी का मन जल उठता है। "मनहूसाबी को लगा जैसे किसी ने उसे मिर्चों का इन्जेक्शन लगा दिया, मिर्च कॉम्प्लेक्स। उसे दिन भर की अपनी मारामारी याद आयी। इसी इन्सान के परिवार के लिए वह सारा दिन बाजार में धक्के खाती है;

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - पृ. 291

कभी राशन की दूकान पर, कभी सब्जी की दूकान पर। अपनी शक्ति और सहनशक्ति की आखिरी बूँद तक वह दाँव पर लगा डालती है।"[1] एक कॉक्रोच को देखकर मनहूसाबी को लगा कि वह एक कॉक्रोच के समान है। क्योंकि कॉक्रोच ऐसा है कि दबाने, डराने और भगाने पर भी उसकी जिजीविषा में कोई कमी नहीं है। बल्कि वह और प्रखर हो जाता है। मनहूसाबी विपरीत परिस्थितियों में मुरझाने के बजाय आगे जाने की कोशिश करती है।

विवाह के बाद का आपसी ऊब को चित्रित करनेवाली कहानी है 'बीतते हुए'। विवाह के एक साल होने पर पति और पत्नी को ऐसा लगा कि दोनों के बीच बहुत दूरी आयी है। पति दफ्तर से आने के बाद किताबों में खुशी ढूँढता है और पत्नी रसोईघर में दम घोटती है। यह स्थिति दोनों को आपस में ऊब उपन्न कराती है। "अचानक उसने पाया कि उनकी शादी को एक साल हो गया है। उसने यह बात अपने पति से, उसके दफ्तर से लौटने पर, चाय पीते वक्त कही। पति ने कोई आश्चर्य नहीं दिखाया। उसने कहा, 'मुझे तो लगता है, पाँच-छह साल हो चुके हैं।"[2] आपस में न समझाने और वार्तालाप की कमी आदि के कारण पति और पत्नी में ऊब की स्थिति पैदा होती है। घर में ज़्यादा समय बिताने के कारण स्त्री को अब अधिक भुँगतनी पडती है। 'बातचित बेकार है' शीर्षक कहानी में भी पत्नी की ऐसी स्थिति को चित्रित करती है। विनीता विवाह के पहले दिनों में पति को मन में देवता के रूप में प्रतिष्ठित किया था। लेकिन धीरे-धीरे दोनों में बातचित भी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 291
2. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 76

नामुकिन बन गया। पति सिर्फ अपने ज़िन्दगी में जीवन बिताता है। पत्नी को अपनी ज़िन्दगी में स्थान देने के लिए वह तैयार नहीं है। "दिन का शायद ऐसा कोई भी हिस्सा नहीं था, जब वे संवाद की स्थिति में पाए जाएँ। कभी-कभी पैसा और लूथरा साहब को लेकर उनकी आवाज़ भुन-भुन करती निकलती है, अन्यथा उनका संबन्ध तेज़ी से अवाक् होता जा रहा है। पिछले दिनों के बारे में सोचने की बेवकूफी विनीता न भी करे, तो भी उसे लगता यह कैसा रिश्ता है, जहाँ संवाद खत्म है, सहवास जारी है।"[1] विनीता को लगा कि विवाह के बाद वह अकेली ही नहीं, असहाय भी है। विवाह के बाद उसका कार्यक्षेत्र रसोई और प्रसूति-घर में सीमित हो गयी है।

'रजत जयंती' नामक कहानी में पति और पत्नी के बीच का मानसिक अलगाव को चित्रित किया गया है। वरद और पत्नी अपना विवाह की रजत जयंती मनाते हैं। तब आसपास के लोग यह जानना चाहते हैं कि उनके लंबे विवाह जीवन का रहस्य क्या है। लेकिन वे लोग उस दम्पति के साथ कुछ समय बिताने पर समझ गये कि उन दोनों के बीच उतना प्यार नहीं है जितना अन्य लोगों ने सोचा है। अपने दाम्पत्य जीवन के बारे में उसने इस प्रकार कहा - "दरअसल इसका कोई फार्मुला नहीं है, इसी तरह लड़ते - झगड़ते पच्चीस साल बीत गये हैं।"[2] इसलिए ही विदा लेते समय किसी ने भी 'हैप्पी एनिवर्सरी' नहीं दोहराया। 'दाम्पत्य' नामक कहानी में भी आलोक और सुनीता के माध्यम से ममताजी इसी विषय पर प्रकाश डालती

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 159
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 44

हैं। पत्नी के व्यवहार से सामंजस्य न होने के कारण इक्कावन साल की उम्र में घर छोडकर चले गये पति की कहानी है 'गुस्सा'। पत्नी का गुस्सा उन दोनों के जीवन को बरबाद करता है। पारिवारिक जीवन में एक दूसरे को आपस में समझने की और स्थान देने की ज़रूरत पर यह कहानी प्रकाश डालती है।

पति और पत्नी में मानसिक अलगाव पैदा होने का कारण मुख्य रूप से पति या पत्नी का उपेक्षा या नफरत है। कभी-कभी इसके अलावा अन्य कारण भी आ जाते हैं। 'लैला-मजनूँ' नामक कहानी में ममताजी इन अन्य कारणों पर प्रकाश डालती हैं। पंकज और शोभा एक दूसरे को बहुत प्यार करते है और वे अपने को लैला औऱ मजनूँ मानते हैं। लेकिन रिश्तेदार हमेशा उनके पास आते हैं और दिनों तक वहाँ ठहरते हैं। इसलिए उन्हें लगा कि उनकी स्वच्छन्दता नष्ट हो जाती है। "अथितियों से घबराकर उन्होंने मकान बदला था। लेकिन अथितियों ने पीछा नहीं छोडा। ....समस्त विरोध और निषेध के बावजूद..... एक दो, तीन। उनके आते ही सारा वातावरण बदल गया। घर, घर न रहा, अजायघर बन गया। ..... शोभा को बच्चों को होमवर्क कराना है, खाना बनाना है, कपड़े इस्त्री करने हैं, चौका समेटना है। उसकी ओर देख शोभा व्यस्त भाव से कह देती, 'क्या करने, बातचीत का वक्त ही नहीं है अब'। पंकज को लगता है वह एक ऐसा कैदी ही, जिससे मिल्लत का वक्त पूरा हो गया और किसी भी सूरत में अब ज़्यादा बातचीत नहीं हो सकती।"[1] ऐसी हालत में दोनों अपने-अपने सूनेपन के सायबान में सीमित रहते हैं। उनको लगा कि अब न उसका मजनूँ रहता, न वह उसकी लैला। उसी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 283, 284

प्रकार आर्थिक तनाव भी पति और पत्नी को मानसिक रूप से दूरी बढ़ाने का कारण बन जाता है। 'प्यार के बाद' कहानी में ममताजी इस तथ्य को व्यक्त करती हैं। गाँव के दो प्रेमियों को गाँववाले कबूतर कहकर पुकारते हैं। उन दोनों के साइकिल में सवारी करने का दृश्य देखने के लिए लोग सड़क में उपस्थित हो जाते हैं। लेकिन शादी के बाद उन प्रेमियों में कई परिवर्तन आ गये। आर्थिक तंगी के कारण वे साइकिल बेचते है और दोनों अब आपस में बातचीत भी नहीं करते हैं। ये सब देखकर गाँववाले भी हताश हो जाते हैं। गाँववालों के विचारों को लेखिका कहानी के अंत में इन शब्दों में व्यक्त करती है - "प्रेम में पडा आदमी कैसे इतना कारोबारी हो सकता था। शायद वे तब तक प्रेम में से निकल आये थे।"[1] आर्थिक विसंगतियाँ उनके मन से प्रेम का भाव को भी छीन लेती हैं।

'फिर भी प्यार' नामक कहानी में वह्निशिखा और पति आकाश आपस में प्यार करते हैं। लेकिन विवाह के बाद वह्निशिखा को घर में ही रहना पडा। तब उसे आकाश के प्रति मन ही मन नफरत लगती है। इसलिए वह आकाश को छोड़कर चली जाती है। वह्निशिखा अपनी मनपसंद नौकरी कर अकेला रहती है। वह आकाश को प्यार करती है लेकिन वापस जाना नहीं चाहती है। इसका कारण वह्निशिखा इस प्रकार व्यक्त करते हैं - "उसने क्यों नहीं किया परिवर्तन जो मुझे अच्छा लगता? क्यों वह घर के खूँटे में बँधा रहा। क्यों उस छोटे शहर में मग्न रहा? वह कहानी लिखने का दम भरता है, क्या उसे नहीं पता लड़की सुरक्षा के

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 165

साथ थोड़ा जोखिम भी चाहती है, घर के साथ थोडा बाहर भी।"[1] विवाह के बाद अपनी स्वतंत्रता और इच्छाओं को समझौता कर मन में नफ़रत के साथ जीने के लिए वह तैयार नहीं है। वह मन ही मन खुश होना चाहती है। इसलिए पति से बेहद प्यार करने पर भी वह अकेली रहती है।

4.4.1.1.3 पत्नी शरीर मात्र नहीं है

पुरुष कभी-कभी पत्नी को शारीरिक सुख प्रदान करने की वस्तु मात्र मानता है। पत्नी की मानसिकता को मानने के लिए वह तैयार नहीं है। इसलिए कहा जाता है कि कभी-कभी पति पत्नी पर भी बलात्कार करता है। ममता कालिया की कहानियों में इसके अनेक उदाहरण देख सकते हैं। 'जितना तुम्हारा हूँ' नामक कहानी में रघु पत्नी श्वेता को केवल शरीर मानता है। शिकागो से वापस आया रघु पत्नी के साथ एक होटल में एक दिन बिताकर वापस जाना चाहता है। एक साल के बाद आने पर भी वह पत्नी से सेक्स के अलावा और कुछ भी कहना नहीं चाहता। रघु कहता है कि वह शिकागो में रहते वक्त बर्फ बरसाने पर, अकेले होने पर, या बीमार पडने पर पत्नी की याद आती है। रघु की राय में पत्नी माने शरीर की आवश्यकता की पूर्ति का साधन मात्र है। रघु की मानसिकता से त्रस्त होकर श्वेता पूछती है - "मैं तुम्हें हमेशा किसी-न-किसी चीज़ के साथ याद आती थी।"[2] एक साल अकेला रहने से भी मानसिक व्यथा उसे एक दिन पति के साथ रहने पर भुगना पडती है।

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 135
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 151

'एक जीनियस की प्रेमकथा' में संदीप कविता की शरीर पर अधिक ध्यान देता है। वह कविता की मुहब्बत को प्यार का घरेलू संस्कार मानता है। पत्नी कविता के मोटापे के बारे में बिना किसी भावुकता के साथ संदीप कहता है "तुम मेरे जीवन के सबसे सुखद प्रसंग की सबसे दुःखद परिणति हो।"[1] 'निवेदन' नामक कहानी में भी मोटी होने के कारण मिनी को पति मानसिक रूप से तंग करता है। पति उसे मिनी कहने के बजाय 'मैक्सी' या 'मिनी बॉल' कहकर छेड़-छाड़ करता है - "एक बार उसने अखिल से अपना नाम बदलाने के लिए कहा था तो अखिल ने कहा, 'क्या पुकारा करूँ तुम्हें, मिनी बॉल?"[2] पुरुषों की ऐसी मानसिकता के कारण स्त्री मन ही मन टूट जाती है। 'बडे दिन की पूर्व सॉझ' नामक कहानी में पत्नी, पति के ऐसे व्यवहारों से आहत होकर प्रतिशोध करना चाहती है। क्योंकि पत्नी तो रूप की नज़र में भोगने सुविधापूर्ण रास्ता मात्र है। ममताजी पत्नी की स्थिति को कहानी में इस प्रकार चित्रित करती हैं - "हमारी शादी के सिर्फ पाँच दिन गुज़रे थे। साढ़े चार दिन हम एक ही कमरे में कैद रहे थे और उठने के नाम पर बाथरूम तक जाते थे।"[3] रूप के इस व्यवहार से त्रस्त पत्नी रोने के बजाय क्लब जाकर परिचित एक युवक के साथ नाचती है क्योंकि वह पति के बारे में भूलना चाहती है। "मुझे हँसी आने लगी। मैं रूप को ढूँढने नहीं जा रही थी। दरअसल मैं उस ऊलजलूल कवायद से तंग आ गई थी।"[4] पत्नी अपने जीवन में मिली अच्छे क्षणों से आनन्द का अनुभव करना चाहती है। वह नये-नये मित्रों से मिलना चाहती है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 268
2. वही - पृ. 142
3. वही - पृ. 29
4. वही - पृ. 35

प्रेम और सेक्स के बारे में स्त्री और पुरुष की दृष्टि में काफी अंतर है। पुरुष का प्रेम केवल शरीर से है लेकिन स्त्री का प्रेम केवल शरीर से नहीं, मन से ही संबन्धित है। ममताजी 'प्रेम' नामक कहानी में विवेक और वितस्ता नामक दम्पतियों के द्वारा प्रेम और सेक्स के प्रति स्त्री और पुरुष की मानसिकता को व्यक्त करने का प्रयास करती हैं। कृष्ण की माँ देवकी की त्रासदी पर वितस्ता क्षुब्ध हो जाती है। वितस्ता की राय में वसुदेव ने जेल की कोठरी में दाम्पत्य धर्म के नाम पर अन्याय किया है। जेल की यातना के साथ देवकी को शारीरिक संबन्ध, प्रसूति की विषमताएँ भी भोगनी पडी। लेकिन विवेक की समझ में यह नहीं आया। विवेक की राय में देवकी की स्थिति उसका सौभाग्य है क्योंकि जेल की कोठरी में होने पर भी दोनों को शारीरिक संबन्ध कर सकते हैं। विवेक की राय में प्रेम के लिए शरीर की ज़रूरत है और देह के बिना प्यार की गहराई गायब हो जाता है। पति की मानसिकता में त्रस्त होकर वितस्ता इस प्रकार कहती है "प्रेम के लिए खुली हवा, उन्मुक्त साँस, निर्बाध गति और हल्का मन भी होना ज़रूरी है। ....तुम प्रेम को सिर्फ शरीर मानते हो। मैं प्रेम की भावना की बात कह रही है........... तुम भी तो पुरुष हो न। तुम पुरुष हम स्त्रियों का मन कभी नहीं समझ सकते।"[1] इस कहानी के द्वारा ममताजी यह दिखाना चाहती हैं कि पुरुष की दृष्टि में प्यार माने शरीर है, लेकिन स्त्री को प्यार मन से भी जुड़ी हुई बात है।

1. ममता कालिया - थोड़ा सा प्रगतिशील - पृ. 81

4.4.1.1.4 पति के शंकालू दृष्टि

पत्नी को कभी-कभी पति के शंकालू स्वभाव की शिकार होना पड़ता है। यह पत्नी के मानसिक तनाव बढ़ने का कारण बन जाती है। 'पीठ' नामक कहानी के पति हर्ष चित्रकार है। एक दिन पति ने अपनी पत्नी इंदुजा की नग्न पीठ का चित्र खींचा और उस चित्र को पर्याप्त ख्याति भी मिली। लेकिन यह चित्र देखकर पति के दोस्त ने कहा - "हम भी समझते हैं दोस्त, यह इंदुजा की पीठ है शत-प्रतिशत"[1] यह सुनकर पति के मन में संशय जाग उठता है और इसको लेकर पति-पत्नी के बीच दिन-प्रतिदिन मन मुडाव होता है। 'थिएटर रोड के कौवे' नामक कहानी का पति भी इस रुग्ण मानसिकता का शिकार है। इसमें पति कुछ दिन पत्नी से अलग रहने पर रात के दो बजे, चार बजे पर फॉन करता है। पति सिर्फ इतना जानना चाहता है कि पत्नी फ्लाट में अकेली है या नहीं। पति के शंकालू स्वभाव से आहत होकर पत्नी बेला इस प्रकार कहती है - "तुम तो अभी मेरी ज़िन्दगी में आए हो। सत्ताईस साल मैंने अपनी रक्षा खुद की है, समझो।"[2] पति का ऐसा दृष्टिकोण पति-पत्नी संबन्धों में तनाव की स्थिति उत्पन्न करता है। आज स्त्री को ऐसे व्यवहारों पर आहत होकर रोने के बजाय बेला के समान घोर प्रतिरोध करती है। अपने अस्तित्व को नष्ट करने के लिए वे तैयार नहीं है। 'इरादा' नामक कहानी की शांति पति के शंकालू स्वभाव के कारण घर छोडकर चली जाती है। "शांति निर्वाक, निस्पंद पति को देखती रह गयी। ऐसी रोगी के साथ सारा जीवन कैसे बिताएगी? शांति ने कहा,

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 169
2. वही - पृ. 17

'रात मैं ने सोचा था, मैं नहीं जाऊँगी, पर अब मेरा इरादा बदल गया है। मैं अगली गाडी से जा रही हूँ। जब तुम्हारा दिमाग एकदम ठीक हो जाएगा, तभी वापस आऊँगी।"[1] इस प्रकार साहस के साथ स्वतंत्र निर्णय लेने का आह्वान ममताजी अपनी कहानियों के द्वारा देती हैं।

4.4.1.2 ससुराल में अस्तित्व का संघर्ष

ससुराल में स्त्री अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए संघर्ष करती रहती है। ससुरालवाले बहु को हमेशा अपने पैरों के नीचे दबाकर रखने की कोशिश करते हैं। बहु से सारे के सारे अधिकारों को छीनकर उसे कठपुतली जैसा बनाने के लिए वे जागृत हैं। ममता कालिया अपनी कहानियों के द्वारा ससुरालवालों की इस मानसिकता और उसके विरुद्ध स्त्री की लड़ाई आदि को चित्रित करती हैं। 'बोलनेवाली औरत' नामक कहानी में पत्नी दीपशिखा को पति और ससुरालवालों ने चुप रखने की कोशिश की है। पति की धारणा है कि अच्छी पत्नी को हमेशा चुप रहना चाहिए। वास्तविकता यह है कि पढ़ाई के समय में कपिल ने दीपशिखा की आत्मनिर्भरता, खूबसूरती और स्वतंत्र सोच से प्रभावित होकर प्रेम विवाह किया है। लेकिन विवाह के बाद दीपशिखा ने समझा कि प्रेम और विवाह दोनों अलग-अलग संसार हैं। कपिल ने शिखा को घर की कारा में कैद रखा। दीपशिखा घर की ऊब और एक ही दिनचर्या से घबरा जाती है। ससुराल में दीपशिखा का जीवन ममताजी ने इस प्रकार चित्रित किया है "स्कूल से आकर बच्चे दिन भर वीडियो देखते, गाना सुनते, आपस में मारपीट करते और जैसे-तैसे अपना होमवर्क पार लगाकर सो

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 122

जाते। कपिल अपने व्यवसाय से बचा हुआ समय अखबारों, पत्रिकाओं और दोस्तों के बीच में बिताता। अकेली शिखा घर की कारा में कैद घटनाहीन दिन बिताती रहती। वह जीवन के पिछले दस सालों और अगले बीस सालों पर नज़र डाली और घबरा गयी।"[1] लेकिन शिखा अपना जीवन इस जडता में नष्ट करने के लिए तैयार नहीं है। वह अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से लडकर अपना अस्तित्व स्थापित करने की कोशिश करती है। घर के लोग उसकी आवाज़ को बंद करने का प्रयास करने पर शिखा ज्वालामुखी की तरह फूट जाती है और कहती है "तुम मेरी आवाज़ बंद करना चाहते हो।"[2] शिखा अपने अस्तित्व की सुरक्षा के लिए आवाज उठाने में हिचकती नहीं है।

'उमस' कहानी की रानी की स्थिति भी इसके समान है। रानी को साहित्यिक विषय में दिलचस्पी है। लेकिन ससुरालवालों ने रानी को घर के काम करने का साधन मात्र माना है। एक बार आहत होकर रानी ने कहा है - "मुझे अफसोस है कि मैंने बि.ए पास किया है, इसकी भी ज़रूरत नहीं है।"[3] रानी अपने बेटे को बहुत प्यार करती है और आशा करती है कि बेटा उसे समझ सकें। लेकिन बेटा भी माँ को घर का काम करनेवाली एक नौकरानी सी मानता है। "माँ एक प्याला चाय बना दो। पवन ने कहा। रानी ने उनींदी आँखों से अपने बेटे की तरफ देखा.... 'चाय तो मुझे भी पीनी है पर बनाएगा कौन? रानी ने कहा। 'और कौन बनाएगा, जल्दी करो, मुझे प्रेक्टिस जाना है।' पवन ने कहा और अपने कमरे की ओर चला गया।"[4] इस

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 129
2. वही - पृ. 127
3. वही - पृ. 21
4. वही

प्रकार 'उमस' नामक कहानी के द्वारा पति, बच्चे, और ससुरालवालों के सामने अपना अस्तित्व सिमटी स्त्री को ममताजी ने चित्रित किया है। रानी बातें करने लगती है तो ससुरालवालों ने आरोप लगाया कि घर का माहौल खराब हो जाएगा। रानी यह जानना चाहती है कि सच बोलने पर घर का माहौल कैसे खराब हो जाता है।

'सीमा' नामक कहानी के द्वारा ममताजी अच्छी औरत की व्याख्या पर प्रश्न चिह्न लगाती हैं। कहानी की नायिका सीमा ससुराल की घुटनभरी ज़िन्दगी से बाहर निकलना चाहती है। लेकिन सीमा का पति और ससुरालवाले उसे आदर्श पत्नी के रूप में बदलना चाहते हैं। पति की राय में हर वक्त घर में बंद रहनेवाली, रसोई को अपनी दुनिया समझनेवाली और पति को ईश्वर माननेवाली औरतें आदर्श औरतें हैं। लेकिन सीमा इन अच्छी औरतों जैसे जीना नहीं चाहती है। सीमा ने ऐसी धारणाओं का घोर विरोध करते हुए कहा - "क्या होता है अच्छा घर? एक घटनाविहीन दुर्घटना स्थल, जहाँ पत्नी की शक्ल में पुतली बनायी जाती है। हर गतिविधि की डोर पति के हाथ, पत्नी को सिर्फ आभास देता है कि वह हिल-डुल और बोल सकती है।"[1] स्त्री के गुणों पर हमेशा आदेश देनेवाले पति और ससुरालवालों से विद्रोह कर सीमा कहती है - "पुरुषों के गुणों पर मैं अभी विचार कर रही हूँ।"[2] सीमा के द्वारा ममताजी यह व्यक्त करना चाहती हैं कि स्त्री और पुरष को परिवार में अलग-अलग नियम रखने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि दोनों को समान अधिकार होते हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 300
2. वही - पृ. 294

'इरादा' नामक कहानी के द्वारा ममताजी ने संकेत किया है कि स्त्री को ससुराल में हमेशा अपने अधिकारों के प्रति जागृत होना चाहिए, नहीं तो वहाँ स्त्री कर्तव्य निभाने का एक साधन मात्र बन जाएगी। 'इरादा' की शांति ससुराल के कामों में फँस गयी है और उसे मायके जाने का अधिकार भी नहीं है। "स्कूल में शांति ने पढ़ा था कि हर कर्तव्य के साथ-साथ हमें एक अधिकार भी मिलता है, लेकिन शादी के बाद इन तीन सालों में उसने पाया कि परिवार के काम कुछ इस प्रकृति के हैं, कि उसमें कर्तव्य में से और कर्तव्य जन्म लेते हैं, अधिकार नहीं।"[1] 'राएवाली' नामक कहानी की कालिंदी की हालत इससे भी दयनीय है। ससुराल के कामों में फँसी कालिन्दी को माँ की मृत्यु की स्थिति में भी मायके जाने की अनुमति नहीं मिली। अपने अधिकारों के प्रति जागृत न होने पर क्या हो जाता है इसको ममताजी इन कहानियों में व्यक्त करती है।

आज की नारी अपने अधिकारों के प्रति एक हद जागृत है। पति के सामने हो या ससुराल वालों के सामने हो, वह अपने अधिकारों के लिए आवाज़ उठाती है। ममताजी की 'बाथरूम' नामक कहानी में नववधू कांता ससुराल में बाथरूम बनाने के लिए लडती है। लज्जा की ओट में छुपाने के बदले ससुरालवालों के सामने अपने अधिकारों और आवश्यकताओं को खुलकर बताने के लिए वह तैयार है - "मैं खुले में बैठकर नहीं नहाऊँगी। आपकी इज्जत भी अजीब है जो गलत बातों को मानने से बनती है और न मानने से बिगडती है। बाथरूम न होगा तो मैं

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 117

अभी वापस चली आऊँगी और कभी नहीं आऊँगी।"[1] कांता के दृढ़ निश्चय के कारण वहाँ बाथरूम बनाया गया। घर की अन्य स्त्रियों को भी इसका फायदा और सुरक्षा मिला है जिन्होंने पहले कांता का विरोध किया था। बाथरूम को ममताजी ने प्रतीकात्मक ढ़ंग से प्रस्तुत किया है। बाथरूम वास्तव में स्त्री स्वतंत्रता का प्रतीक है। अपनी स्वतंत्रता और अस्तित्व सुरक्षित रखने के लिए लड़ाई करने की आवश्यकता पर ममताजी इन कहानियों के माध्यम से व्यक्त करती हैं।

4.4.1.3 स्त्री का द्वन्द्व : पति और भाई के बीच

भाई और बहन के बीच का रिश्ता दुनिया की सबसे सुन्दर रिश्ता है। लेकिन इनमें किसी एक के विवाह होने पर दोनों के बीच अलगाव आ जाता है। बहन या भाई के जीवन में एक अन्य व्यक्ति के आने पर भी मन ही मन इनका रिश्ता अटूट रहता है। 'एक अकेला दुःख' नामक कहानी इसका दृष्टव्य है। इसमें नीता अपने भाई विचार को बहुत मानती थी लेकिन भाई की मृत्यु के बाद भाभी और बच्चे को नीता और विचार की स्मृतियाँ, दोनों भी एक बोझ बन गये। भाभी और बच्चों ने विचार को जल्दी ही भूलकर जीना शुरू किया। त्रस्त होकर नीता कहती है "सिर्फ उनतीस दिनों में जीवन के इक्कीस साल नकारने का हक आपको किसने किया है भाभी? भैया ने आपको बहुत प्यार दिया है, उन्हें स्मृति का सम्मान तो दीजिए।"[2] लेकिन धीरे-धीरे नीता समझ गयी कि अकेली बहन का दुःख भी अकेला है।

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 113
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 208

कभी-कभी स्त्री तो भाई और पति के बीच के प्यार में फँस जाती है। 'दो ज़रूरी चेहरे' नामक कहानी में ममताजी इसका चित्रण करती हैं। इसमें नायिका को पति और भाई दोनों से बेहद प्यार करती है। दोनों अपने प्यार में प्रतियोगिता का भाव रखने पर नायिका मन ही मन संघर्ष में पड़ती है। उसकी मानसिक व्यथा उसे बीमार बनाती है। "एक बॉह पर वही बोझ था, दूसरी पर एक और बोझ आया, पहली से हल्का पर बोझ, फिर पकड़, फिर कोई नाम। नाम डूबते दिमाग में गिरा; देर बाद निकला वापस, और आँखों ने तब देखो तो बहुत ज़रूरी चेहरे।"[1] ममताजी की यह कहानी आत्मकथांश से भरी हुई है। रवीन्द्र कालिया ने लिखा है - "पिता और पति के द्वन्द्व को लेकर उन दिनों उसने एक कहानी भी लिखी थी - 'दो ज़रूरी चेहरे'। जो शिकायत पहले मुझे रहती थी, वह ममता के पापा को रहने लगी।"[2]

स्त्री परिवार की सबसे प्रमुख सदस्या है लेकिन उसे परिवार से ही कई प्रकार के शोषणों और विसंगतियों की शिकार होनी पडती है। उसे अपने अधिकारों को माँगकर, विद्रोह कर हासिल करना पडता है। स्त्री को स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में मानने के लिए आज भी हमारी व्यवस्था तैयार नहीं है। ममता कालिया की कहानियाँ स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति जागृत कराती है और परिवार में अपना एक स्पेस मिलने के लिए आवाज़ उठाने की प्रेरणा देती है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 107
2. वही

4.4.1.4 विवाह प्रथा का निषेद

आज की नारी अपने अस्तित्व और स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना चाहती है। विवाहित होकर पुरुषों के पैरों के नीचे दबाकर जीने के लिए वह तैयार नहीं है। 'एक अकेली तस्वीर' की नायिका तनिया स्त्री की इस बदलती मानसिकता का सशक्त उदाहरण है। तनिया अपनी स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने के लिए अविवाहित रहना चाहती है। घरवाले और बन्धुजन उस पर कई आरोप लगाती है। फिर भी वह अपने निर्णय से हटाना नहीं चाहती। तनिया पूछती है - "विवाह करने पर क्या मिलती है कमीज़ के काज़, मोजों का मरम्मत, झाडू बुहारी, जूतों की पॉलिश? इन सब के लिए विवाह करने की ज़रूरत क्या है?"[1] तनिया अपने आप में खुश है, यह खुशी वह किसी के लिए तोडना नहीं चाहती है।

'फर्क नहीं' शीर्षक कहानी की नायिका उन्नीस साल की छात्रा है। वह दूसरों के समान दर्शन प्रधान जीवन जीना नहीं चाहती है, वह घटना प्रधान जीवन जीना चाहती है। अधिकांश लड़कियाँ शादी तक घर की ऊब मिटाने के लिए कॉलेज में जाती हैं। नायिका इसकी असहमियत करती है। वह खुलकर बताना चाहती है कि मैं इसलिए पढ़ रही हूँ क्योंकि मेरी दिमाग कहती है, और किसी की प्रेरणा से नहीं। लड़की के प्रति घरवालों और समाज का दृष्टिकोण देखकर नायिका मन ही मन जल उठा - "मेरी चेतना में आजकल एक भीषण तड़भड़ मची हुई है। बार-बार असहमत आवाज़ उठी। मुझे इन लाखों-करोड़ों लड़कियों जैसा नहीं

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 17

बनता है। मैं इनसे अलग हूँ।"[1] 'नई दुनिया' की नायिका पूर्वा को घरवाले एक औसत औरत के समान शादी कराना चाहते हैं। लेकिन पूर्वा सर्जक के पद ग्रहण करने का इरादा रखती है। घरवालों का विरोध करके वह कहती है "मैं नहीं जाना चाहती पेंन्टिंग, कुकरी क्लासों में। मैं ऊब सलाई लेकर खड़ी-खड़ी यह बकवास नहीं करना चाहती जो तुम लोग कर रहे हो, मैं किसी साहब की मेमसाहब नहीं बनना चाहती, तुम लोग मुझे पूर्वा क्यों नहीं रहने देते, बस निखालिस पूर्वा।"[2] 'चिरकुमारी' की नायिका दिशा अपने व्यक्तित्व को अपने अनुसार दिशा देने पर उतारू है। वह माता-पिता के वैवाहिक जीवन की तटस्थता से त्रस्त होकर विवाह के प्रति विरक्त हो जाती है। उसने अपनी शिक्षा और प्रखर चेतना से कई तरह के आरोपों का सामना किया है। "दिशा सोचती कितनी मुश्किल से उसने यहाँ तक सफर तय किया है। कई किस्म की ज़्यादत्तियों और कमियों का मुकाबला उसने अपनी शिक्षा और प्रखर चेतना से किया था। शादी के नाम पर वह अपनी आज़ादी और आत्मनिर्भरता दाँव पर नहीं लगाना चाहती थी।"[3] दूसरी औरतों की ज़िन्दगी से दिशा पाती है कि पच्चीस-तीस साल के विवाहित जीवन के बाद भी पत्नियों में असुरक्षा की भावना है। ममताजी दिशा के द्वारा यह पूछना चाहती है कि यदि असुरक्षित लगती है तो विवाहित होने की ज़रूरत क्या है? ममता कालिया अपनी रचनाओं में अस्मिता के प्रति जागृत चेतना संपन्न लडकियों को प्रस्तुत करती हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 125
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 317
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 224

आज की लडकियाँ निजी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए खुला प्रतिरोध करती हैं। वे समाज द्वारा बनाई गयी विवाह रूपी शिकंजे को तोडने का अथक परिश्रम भी करती हैं।

4.4.2 समाज में स्त्री

ममता कालिया स्त्री की सामाजिक स्वतंत्रता पर विशेष बल देती है। उसे अपने जीवन में स्त्री की पराधीन ज़िन्दगी को करीब से देखने का अवसर मिला है। देखने का ही, कभी-कभी उसे समाज की व्यावहारिक गतिविधियों का अनुभव ही करना पडा। इसलिए ममताजी ने इस प्रकार लिखा है - "जितना यह सच है उतना ही यह भी कि केवल भाव-बोध के सहारे नहीं टिक रहती कहानी, जब तक उसमें बृहत्तर समय समाज का सरोकार और दृष्टि बोध न हो। ......इन कहानियों के पीछे वे समस्त विसंगतियाँ हैं जिनकी मूक दर्शक बनकर बैठना मुझे गवारा न हुआ।"[1] ममता कालिया की कहानियों में अपनी पहचान और सामाजिक मान्यता पाने की स्त्री के संघर्ष को चित्रित हुई है।

4.4.2.1 स्वतंत्रता की चाह

हमारा समाज समय के साथ-साथ बदलता रहता है। लेकिन स्त्री को स्वतंत्रता देने में हमारा समाज कट्टर विरोध करता है। आज की स्त्री स्वतंत्रता की कल्पना करती है और समाज में अपना स्थान पाना और सुरक्षित रखना अपना

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - भूमिका से

अधिकार भी समझती है। इसलिए ममता कालिया अपनी रचनाओं में प्रथा के विपरीत स्वतंत्रता की लालसा स्त्री के मन में भरती है। 'बडे दिन के पूर्व सांझ' की नायिका पार्टी में पति रूप को भूलकर दूसरे पुरुष के साथ नाचती है। इसमें नायिका को शर्म नहीं लगती बल्कि स्वतंत्रता का अनुभव होता है। "बडे दिन की पूर्व सांझ को नृत्य जाने बिना नाचने में अजीब न मानती ....वह लड़का खुश था। उसने मोमबत्ती जला ली थी और ढूँढ-ढूँढकर दोस्तों की ओर देख रहा था। जिस समय किसी दोस्त से उसकी आँख मिल जाती, वह मुझे अधिक कसकर पकड़ लेता जैसे बच्चा एक और बच्चे को देखकर अपना खिलौना पकड़ता है। .....प्रथा के विपरीत मैंने बात शुरू की।"[1] आज की स्त्री प्रथा के अधीन में रहना नहीं चाहती है। वह रिवाज़ों को छोड़कर स्वतंत्रता का उन्मुक्त सास लेती है।

'वसंत-सिर्फ एक तारीख' कहानी की नायिका चंदा पारिवारिक बन्धनों से निकलकर स्वच्छन्द और स्वतंत्र जीवन बिताना चाहती है। इसलिए उसे नौकरी मिलने की एक संभावना पाने पर उसका मन खिल उठती है। वह घर की सीमाओं को तोडकर अपना अस्तित्व कायम रखने की कोशिश करती है। अपने जीवन में आयी हुई नयी चेतना की झलक वह प्रकृति में भी देखती है। "ये वसंत के दिन थे, ऋतुरात का महीना। जगह-जगह गुलाबी, पीले, नीले फूल सिर उठाकर खिलखिला रहे थे। सड़क के किनारे की पटरियों की दरारों तक घास फूट आयी है।"[2] सड़क

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 29, 30
2. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 93

के किनारे की पटरियों में जिस प्रकार घास फूट आयी है उसी प्रकार घर से स्वतंत्रता मिलने पर चंदा के मन में स्वच्छन्दता की अनुभूति भी फूट जाती है।

ममताजी स्त्री और पुरुष को समान अधिकार का समर्थन करती हैं। पुरुष के समान समाज से संबन्ध स्थापित रखने की लालसा स्त्री के मन में भी है। 'फर्क नही' कहानी की नायिका समाज से संबन्ध स्थापित रखना और समाज की हलचलों की पूरी जानकारी प्राप्त करना चाहती है। इसके लिए वह सबसे पहले अखबार की सहायता लेती है। "शहर की हलचल का पता मुझे अखबार से ही लगता था। उसी के खबर लगती कि सभी जगह हिंदी दिवस धूमधाम से मनाया गया या सब्जी मण्डी में एक औरत के गले से चेन छिनी। बड़ी-बड़ी खबरों में दिलचस्पी लेने की मैं कोशिश करती, लेकिन पाती वे किन्हीं बदलावों की भूमिका होतीं। उन्हें समझने के लिए उससे पहले के समाचार पढ़ना ज़रूरी होता।"[1] उसे पता कि समाज की वास्तविक झाँकी मिलने का आसान तरीका अखबार से मित्रता स्थापित करना है। 'बातचीत बेकार है' की विनीता भी रसोई और प्रसूतिगृह से सीमित न होकर समाज से संबन्ध स्थापित करना अपना अधिकार समझती है। समाज के बारे में जानने की इच्छा ममताजी इन पंक्तियों में व्यक्त करती हैं "सुबह का अखबार दरवाज़े के नीचे से झाँक रहा था। दो उँगलियों से विनीता ने उसे अन्दर सरका लिया। पहले पन्ने पर, फूल मालाएँ पहने प्रधानमंत्री की तस्वीर देखते वक्त विनीता को लगा कि वह एक सामान्य औरत है।"[2] तब उसे लगती है कि सामान्य औरत

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्पर छह - पृ. 122
2. वही - पृ. 159

होने पर भी वह कुछ भी माँग कर सकती है, कुछ भी पा सकती है। इसलिए वह एक सामान्य औरत के ढ़ाँचे से मुक्ति पाना चाहती है। ममताजी अपनी कहानियों में यह दिखाती है कि बदलते परिवेश में स्त्री भी बदल गयी है। नयी चेतना अपनाकर समाज में अपना अस्तित्व स्थापित करने में स्त्री आज सक्षम हो रही है।

4.4.2.2 स्त्री पर अत्याचार

ममता कालिया की कहानियों में यह बताया है कि नारी को अपनी पहचान और अस्मिता के प्रति सदैव जागरूक रहना चाहिए। इसलिए उनकी कहानियों की स्त्रियाँ विरोधी परिस्थितियों में मुरझाने के बजाय अपना प्रतिरोध जाहिर करती हैं। अपनी इज्जत को सुरक्षित रखने के लिए वे दूसरों पर हाथ उठाने के लिए भी हिचकती नहीं है। ममता कालिया की 'तोहमत' नामक कहानी की आशा और सुधा नामक सहेलियाँ पथ-भ्रष्ट होकर जंगल में पहूँच गयी, डर से वापस भागते वक्त काँटों में गिरकर उनके कपडे जगह-जगह फट गये। इन्हें देखकर सभी ने सोचा कि इन लड़कियों का किसी ने शीलहरण किया। आशा और सुधा की बातों को उन लोगों ने नामंजूर किया साथ ही साथ कॉलेज में जाना भी बंद करवा दिया। लेकिन दोनों ने घरवालों और गाँववालों का सशक्त विरोध कर कॉलेज में जाना शुरू किया। लेकिन कॉलेज में लड़कों ने उन पर गंदी दृष्टि से देखना और भद्दे इशारा करना शुरू किया। कुछ अध्यापक भी इसमें शामिल हुए तो सुधा सह नहीं सकी। तैश में आकर सुधा ने उन लड़कों में एक का प्रहार किया। "जैसे आँधी में किवाड़ भडभडाते हैं, कुछ ऐसे सुधा का मन भड़भड़ाया, वह लपककर उठी और पास बैठे

एक सक्रिय लड़के को उसने तड़ातड़ तमाचे जमा दिये।"[1] ममताजी इस कहानी के द्वारा लड़कियों को लज्जा की ओट में रहकर भविष्य नष्ट न करने के बजाय खुलकर प्रतिरोध करने की प्रेरणा देती है। आज लड़कियों को उत्तेजना, आक्रात्मकता की भी ज़रूरत है।

'थिएटर रोड के कौवे' नामक कहानी में फ्लॉट में अकेले रहनेवाली बेला पर कुछ कौवों द्वारा आक्रमण होने का चित्रण ममताजी ने किया है। कौवे को मिमताजी ने पुरुष समाज के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया। लेकिन इस आक्रमण पर बेला न हिचकती है, बल्कि वह चोट को डेटोल से साफ करके अपनी ओर घूरकर देखनेवाले कौवों को भगाती है। पुरुष समाज अकेले रहनेवाली लड़कियों को पीछे हमेशा नज़र रखता है, यह उसकी सुरक्षा के लिए नहीं बल्कि एक अवसर की प्रतीक्षा में है। अपने पर होनेवाले अत्याचारों को डर से छिपाने के बजाय स्त्री बेला के समान उन शोषणकारियों पर विरोध करना चाहिए। 'निवेदन' नामक कहानी भी पुरुष की इस मानसिकता का पर्दाफाश करती है। विवाहित मिनी के साथ समय बिताने के लिए वर्माजी मिनी के बच्चे को आइसक्रीम खिलाती है और गाडी में 'लिफ्ट' का भी प्रस्ताव देता है। मिनी वर्माजी को उपेक्षा करना चाहती है लेकिन किसी-न-किसी विषय बनाकर वह मिनी के पास आती है। मिनी जानती है कि वर्माजी ने अपनी सभी बातचीत में एक और अर्थ छुपाकर रखा है। "मिनी खीझ गई। निवेदन का यह स्वरूप उसे अच्छा बही लगा। उसे कुछ उलझन से कहा 'मैं तो अभी कुछ सामान खरीदती हुई जाऊँगी।' वर्माजी बोले, 'कोई जल्दी नहीं है,

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 29

चलिए साथ चलते हैं, जहाँ कहेंगी, गाड़ी रोक लेंगे।"[1] मिनी एक ही समय समाज की नज़र और वर्माजी की चाल से बचाने की कोशिश करती है। क्योंकि वर्माजी के साथ चलते हुए देखकर समाज उस पर क्या दृष्टि रेखेगा, यह सोचकर मिनी विवश हो जाती है।

'बीमारी' नामक कहानी की नायिका घर में नौकर रखना चाहती है लेकिन वह समाज की शक्की नज़र से डरती है। क्योंकि वह सोचती है कि एक स्त्री अकेले रहने पर समाज शंका की दृष्टि से उसे देखता है और वहाँ एक नौकर भी हो तो दूसरे क्या कहेंगे? नायिका कहती है - "उन्हें बताना मुश्किल था कि अकेली लड़की के घर नौकर के साथ क्या-क्या अफवाहें जुड़ जाती हैं। नौकरानियों से मेरी बहुत जल्द लड़ाई हो जाया करती थी। वे चोर होती थी और झूठी।"[2] बीमार ग्रस्त नायिका को देखने के लिए आए हुए पुरुष सहकर्मी उससे दूर बैठते हैं। उसके पास पलंग पर बैठने के लिए वे तैयार नहीं है। क्योंकि वे सोचते हैं, वे विवाहित हैं तब अकेली रहती अविवाहित युवती के पलंग पर बैठना अनैतिक है। आज भी हमारे समाज के शिक्षित लोग पुराने नैतिक विचारों में बंधे रहते हैं। नैतिकता के दोहरे मापदण्डों को अस्वीकार कर उन पर चुनौती देने का साहस उसमें नहीं है।

छोटी लड़कियों पर भी पुरुष शिकारी की दृष्टि से देखते हैं। 'आपकी छोटी लड़की' नायक कहानी की टुनिया छोटी सी आयु में ही अनैतिक प्रवृत्तियों की शिकार हो गयी है। अपने पिता से भी आयुवाला व्यक्ति टुनिया की ओर अश्लील

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 142
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 44

इशारा करता है और अश्लील बातें भी करता है। टुनिया नल से बाल्टी में पानी भरने के लिए डॉक्टर साहब के घर में गयी। तब वहाँ उस पर क्या हुआ है, इसका चित्रण ममताजी ने इस प्रकार किया है "उस दिन टुनिया पीतल की छोटी बाल्टी लेकर पहूँची तो डॉक्टर साहब का पिछला दरवाज़ा खुला था। टुनिया सीधे अन्दर पहूँच गयी। नल खोलकर देखा, पानी नहीं था........ टुनिया एक बार और नल खोलने के लिए हाथ बढ़ाया ही था कि रामजी ने अपने पजामे की ओर इशारा किया और अश्लील ढ़ंग से मुस्कुरा कर कहा, 'लो इससे भर लो'। टुनिया कुछ समझ नहीं पायी पर, जो कुछ उसने देखा उससे घबरा कर वह दहशत से चीखती भाग खड़ी हुई। बाल्टी वापस उठाने का किसे होश था।"[1] बेतहाशा भागकर घर में पहूँची टुनिया पर किसी ने भी ध्यान नहीं दिया है। दादी, माँ और दीदी घर में होने पर भी टुनिया के बारे में सोचने के लिए या ध्यान देने के लिए कोई तैयार नहीं है। बल्कि बाल्टी वापस न लाने के कारण वे टुनिया को डाँटते हैं। "और बाल्टी कहाँ फेंक आयी, बोल तो सही मुँह से? हद हो गयी ढीठपने की। खाली बाल्टी उठाकर लाने में इसकी कलाई मुड़ती है।"[2] ये सब देखकर टुनिया को लगती है कि बेटी के मन और चेहरे के डर क्यों माँ ने नहीं समझा है।

पुरुष ने स्त्री देह को हमेशा उपभोग की वस्तु समझा है। शारीरिक रूप से अवसर न मिलता तो वह मन ही मन स्त्री का संभोग करता है। पुरुष अपनी कल्पनाओं के बिस्तर पर चाहे बस में हो, ऑफीस में हो, या रेस्टोरेंट में हो कहीं

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 243
2. वही - पृ. 244

से देखी गयी स्त्री से भोग करता है। पुरुष की इस विकृत मानसिकता का पर्दाफाश करने की कोशिश है 'आहर' नामक कहानी। इसमें दफ्तर के कुछ पुरुष अफसर रेस्टोरेंट में चले गये। वहाँ दिखी एक लड़की पर वे सब आँखों से रेप करते हैं। वहाँ पहूँचने तक उन पुरुषों में कई विषयों पर भेदभाव थे। लेकिन लड़की को देखकर उन सबकी मानसिकता एक ही हो जाती है। "नीरज सक्सेना दोस्तों का नेतृत्व करना भूलकर लड़की को देख रहा था। उसे लगा यह लड़की नहीं, खिड़की है, इस खिड़की से देखा दृश्य बेहद मनोरम है। उसकी अविवाहित आँखों ने कई सपने देख डाले। ....हेमेन्द्र की पत्नी आजकल मैके गई हुई थी। उसने लड़की की ओर बडी भूखी नज़रों से देखा, हालांकि यह भरपेट खाना खा चुका था। उसे लगा यह गेलॉर्ड नहीं, उसका घर है। लड़की कुर्सी पर नहीं, उसके बिस्तर पर बैठी है। उसकी आँखों में एक अदद बेडरूम तैरने लगा....।"[1] स्त्री के लेकर पुरुष समाज के उपभोग की मानसिकता में कोई परिवर्तन आज भी नहीं आया है। पुरुष स्त्री पर हमेशा अपने इच्छानुसार व्यवहार करना चाहता है। इसलिए स्त्री पर अपना अधिकार कायम रखने की कोशिश करता है।

4.4.2.3 यौन संबन्धों में स्वतंत्रता

समाज, धर्म और संस्कृति स्त्री और पुरुष के संबन्ध को कई नियम देकर उसे नैतिकता के ढाँचे में बाँधकर रखा है। नैतिकता के इस ढाँचे स्त्री के मन में पुरुष से आज्ञाकारिता या अनुपालन की मानसिकता उत्पन्न किया है। लेकिन हम

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 328

जानते हैं नैतिकता की मापदण्ड बदलती रहती है। इसलिए आज की स्त्री के मस्तिष्क से नैतिकता संबन्धी धारणाएँ धीरे-धीरे बदलना और यौन संबन्धों पर स्वच्छन्द दृष्टि भी रखना शुरू किया। इस परिवर्तित मानसिकता के प्रति साहित्यकारों की नज़रिया अंबिका सिंह वर्मा की वक्तव्य से स्पष्ट है - "सेक्स और कामना को स्त्री-पुरुषों के स्तर पर सहज, स्वाभाविक रूप में देखने और स्त्री के जीवन को वर्जनाओं व रूढ़ियों से मुक्त रखकर उसे अधिक खुले और ठोस रूप में एक निर्णायक और अनिवार्य तत्व के रूप में स्वीकार करने की निर्भीकता और साहस समकालीन कथाकारों की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होता है। उनकी कहानियों में स्त्री-पुरुष संबन्धों को पारंपरिक दृष्टिकोण, आदर्श और रूमानियत से अलग हटकर उन पर पड़नेवाले दबावों और तनावों को बिना किसी हिचक के मुक्त रूप को पहचानने की कोशिश की गयी है।"[1] ममता कालिया की कहानियों में यौन-संबन्धों के प्रति स्त्री की स्वच्छन्द और खुली दृष्टि प्रस्तुत हुई है।

'अपत्नी' कहानी की लीला प्रबोध के साथ विवाह किये बिना रहती है। प्रबोध लीला से विवाह करने के लिए तैयार नहीं है। यह जानते हुए भी लीला प्रबोध के साथ दैहिक संबन्ध रखती है। लीला अपने शरीर और दूसरों की दृष्टि के बारे में जागरूक नहीं है। सहनायिका और उसका पति हरि उसके घर में आने पर भी अपने कपडे के बारे में लीला ज़्यादा ध्यान नही देती है। "लीला उठ चुकी थी और ब्लाउज़ के बटन लगा रही थी। जल्दी-जल्दी में हुक अंदर नहीं जा रहे थे। मैंने

1. जगदीश चतुर्वेदी, सुधा सिंह (संपादक) - स्त्री अस्मिता : साहित्य और विचारधारा - पृ. 222

अपने पीछे आते हरि और प्रबोध को रोक दिया। बटन लगाकर लीला ने कहा, 'आने दो, साड़ी तो मैं इन लोगों के सामने भी पहन सकती हूँ।"[1] 'पिछले दिनों का अंधेरा' नामक कहानी के कपूर और रुचि एक ही दफ्तर में काम करते हैं। एक रात दोनों को एक ही कमरे में रहना पडते है और दोनों के बीच का शारीरिक संबन्ध हुआ है लेकिन दोनों ने इसे अपनी मर्जी का विषय मात्र माना है। "आज उन्होंने अंधेरे होने पर पाया, वे साथ-साथ अंधेरे की प्रतीक्षा कर रहे थे। ....अंधेरे को चीरता हुआ एक भर्राया स्वर धीमे, फिर लगातार ऊँचे, नीचे शुरू हुआ...... उसके शुरू होने के अचानकपन ने कपूर को धकेल-सा दिया, उसे पता ही नहीं चला की उस चेतना में रुचि के ओंठ उसके दांतों में भिंच गए थे।"[2] इस प्रकार स्त्री आज अपनी इच्छा के अनुसार दैहिक संबन्ध रखती है। वह पुरानी मान्यताओं को तोडना चाहती है।

आज की स्त्री पुराने ज़माने की तरह पति को ईश्वर के समान मानकर जीने के लिए तैयार नहीं है। पति के होते हुए भी स्त्री आज कभी नौकरी की ऊब मिटाने के लिए, कभी घर और पति से बचाने के लिए अन्य किसी पुरुष से संबन्ध बनाती है। 'लगभग प्रेमिका' की सुजाता नौकरी की ऊब मिटाने के लिए पति के मित्र कृष्ण से प्रेम करती है और घूमती रहती है। पति की चिट्ठी आने पर सुजाता प्रेम खतम करके वापस जाने के लिए तैयार हो जाती है। सुजाता के मन में इसके प्रति कोई गलती या दुःख का भाव नहीं है। "मैंने खिड़की से देखा, कृष्ण खड़ा देर

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 43
2. वही - पृ. 66

तक हाथ हिलाता रहा, प्रत्युत्तर में मैं हाथ न हिला पाई, सिर्फ मुस्करा दी। ....मेरे लिए बेहतर यही था कि मैं अगामी जीवन पर चिंतन करती हुई लॉण्डी से अपनी साड़ियाँ ले आऊँ।"[1] 'बडे दिन की पूर्व सांझ' की पत्नी पति रूप के व्यवहार से ऊबकर पार्टि में परिचित नवयुवक भार्गव से मित्रता स्थापित करती है। वह जानबूझकर भार्गव से रिश्ता बनाने की कोशिश करती है। "मैं सोच रही थी वह मुझसे बोलेगा। उसे शायद नृत्य की तहजीब का पता न था। वह मुझसे बिल्कुल बात नहीं कर रहा था, बस नर्वसनेस में बार-बार मुस्करा रहा था। ...... प्रथा के विपरीत मैंने बात शुरू की।"[2] इस प्रकार नैतिकता संबन्धी धारणाओं और प्रथाओं के विरुद्ध चलनेवाली स्त्रियों को ममताजी ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है। 'मंदिरा' नामक कहानी में हर समय पूजापाठ में समय बिताते पति पर पत्नी मंदिरा को घृणा लगती है। इसके साथ पुत्र शिविर से उसके अलगाव ने मंदिरा के मन को और भी झकझोर किया। इन सब ऊबों से मुक्ति पाने के लिए वह दफ्तर के नवयुवक के साथ प्रेम करने के लिए तैयार हुई। "रात के सन्नाटे में उसने अपने साथ एक लंबी बातचीत की और अपना मन तैयार कर लिया। वह अपने विभाग में सुविमल बनर्जी से प्रेम कर सकती है। सुविमल विवाहित है पर सुखी नहीं है। वह अक्सर अपनी पत्नी की आलोचना किया करता है। ....इस इरादे से मंदिरा ने एक शाम सुविमल को चाय पर बुलाया।"[3] इस प्रकार यौन और

---

1. ममता कालिया - प्रतिदिन - पृ. 111
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 29, 30
3. वही - पृ. 291

प्रेम संबन्धों में स्त्री की दृष्टि में आये बदलाव को ममताजी ने अपनी कहानियों में चित्रित किया है।

4.4.2.4 शिक्षा की शक्ति

आज की नारी आत्मनिर्भर है। आत्मनिर्भर, बराबर का हक और सम्मान प्राप्त करने के लिए शिक्षा ने ही उसे सक्षम बनाया। इसलिए जब वह सवाल करती है ससुराल में अपनी बेकद्री और अपमान के खिलाफ बोलती है तो सुनने को मिलता है कि लड़की को इतना मत पढ़ाओ। इससे हम समझ सकते हैं कि सिर्फ शिक्षा के सहारे स्त्री को प्रतिरोध करने की ताकत मिलेगी। ममता कालिया की 'बाथरूम' नामक कहानी इसका सशक्त उदाहरण है। इसमें नववधू कांता उच्च शिक्षित है, इसलिए उसे ससुराल में अपनी आवश्यकताओं को खुलकर बताने की ताकत होती है। अपनी आवश्यकताओं के लिए आवाज उठाने पर कांता को भी यह शिकायत सुनने पडी है कि "अब पढ़ी-लिखी बहुओं के पैर पड़े है राम रच्छा करें।"[1] लेकिन कांता हारने के लिए तैयार नहीं है। शिक्षा ने उसे अपने अधिकारों के प्रति उसे जागरूक बनाया है।

'खिड़की' नामक कहानी में शिक्षा की ज़रूरत को व्यक्त किया गया है। इस कहानी की नायिका कंचन ने घर के उत्तरदायित्व और खर्च के कारण पढ़ाई को छोड़ दिया। एक दिन रेलगाडी में परिचित युवक से कंचन उच्च शिक्षा पाने के अवसरों के बारे में सुना और उसने कंचन की सहायता का वादा भी किया। तब

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 186

से कंचन को आस्था मिली और वह आत्मविश्वास से भर गयी। "उसे अपने भविष्य की खिड़की खुलती नज़र आ रही थी। उसने तय किया वह घर जाकर सबसे पहले अपनी किताबों पर पड़ी धूल साफ करेगी।"[1] खिड़की वास्तव में प्रतीक है। खिड़की खोलने पर कंचन को बाहरी दुनिया का पता मिला है और बोगी के दमघुड अर्थात जीवन की समस्याओं से मुक्ति पाने की राहत भी मिली है। ममताजी इसके द्वारा यह दिखाना चाहती है कि शिक्षा तो भविष्य का द्वार है। इसके द्वारा स्वस्थ और सुरक्षित भविष्य ज़रूर प्राप्त किया जा सकता है।

4.4.2.5 दहेज प्रथा

विवाह में लड़की को दहेज देने की प्रथा प्राचीन काल से चल रही है। आज भी इसमें कोई परिवर्तन नहीं आया है। कुछ लोग इस प्रथा को आडंबर दिखाने के मार्ग मानते हैं, और कुछ इस प्रथा के कारण अपने भीतर कुंठा महसूस करते हैं। माता-पिता को अपना सर्वस्व लुटा कर बेटी का विवाह कराना पडता है। आज भी पुरुष कितना प्रगतिशील हो, आदर्शवादी हो, या शिक्षित हो, फिर भी दहेज लेने से इनकार नहीं करते हैं। इसलिए आज भी दहेज की बलि वेदी में कई स्त्रियाँ और उनके परिवार खुद टूटते जा रहे हैं। 'बिटिया' नामक कहानी में दहेज का भीषण रूप देखा जा सकता है। बेटी मधुरिमा के विवाह के लिए वरपक्ष के द्वारा दहेज की माँग सुनकर घर में सन्नाटा फैल जाता है। इसके साथ विवाह के दिन निकट होने पर लिस्ट भी बड़ा हो रहा है। ये सब देखकर मधुरिमा के माँ-बाप के

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 159

मन में बिजली का तार पड़ गया। "वीरेश्वर बाबू सन्न रह गए। छिटपुट चीज़ों की ये माँगें घर पर वज्र की तरह गिरी। घर भर में एक पीली उदासी छा गयी। शारदा रूआँसी हो गयी, 'कहाँ तो सोच रहे थे खींचतान कर दस हज़ार में कुल ब्याह निपटा देंगे, कहाँ ये तीनों चीज़ें ही दस हज़ार की पडेंगी।"[1] अपनी बेटी की खुशी और भविष्य को सुरक्षित रखने के लिए वे दहेज जैसी कुप्रथाओं का विरोध भी नहीं कर सकते हैं। दहेज को जमा करने के लिए अपना प्रिय स्कूटर बेचने के लिए वह बेचारा पिता तैयार हो जाता है। पिता आहत होकर मन ही मन सोचता है - "अपने हाथ-पैर जोड़ कर उससे कहेंगे, तुम मेरी बीवी के गहने ले लो, मेरा इंश्योरेंस ले लो, मेरे बैंक की पासबुक ले लो, मेरा स्कूटर ले लो, मेरी बेटी भी ले लो, बस तुम प्रसन्न हो कर जाओ, मेरी इज्जत का झुनझना मत बनवाओ"[2] वास्तव में बेटी के विवाह के साथ यह कुप्रथा परिवारवालों से हंसी, खुशी आदि भी जीन लेती है।

'रिश्तों के बुनियाद' नामक कहानी में प्रीति माँ के मरने के बाद भाई और भाभी के साथ जीती है। वे प्रीति के विवाह की जिम्मेदारी नहीं लेना चाहते हैं। वे प्रीति को घर के लिए एक बोझ और भाई के लिए एक मुसीबत मानते हैं। "बात-बात में भाभी कहती है, "औरों के सास-ससुर मरते हैं, तो भरा घर छोड़कर जाते हैं। यहाँ हमारे मत्थे छोड़ गए हैं, यह पचास हज़ार की बिल्टी............... प्रीति पहचानने लगी कि घर में 'मुसीबत की गठरी', 'दहेज की दलदल' और 'पचास हज़ार की बिल्टी' उसे ही कहा जाता है।"[3] भाई बहन के लिए पैसे खर्च करना नहीं

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 378
2. वही - पृ. 382, 383
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 310

चाहती, इसलिए उसे विवाह के बिना घर के कामों में बंधी रखने की कोशिश करवाते हैं। प्रीति घरवालों की मानसिकता और दहेज की भीषणता से त्रस्त है। वह अपने मनपसंद व्यक्ति के साथ घर छोड़कर जाने के लिए तैयार हो जाती है। परवेज़ तो अन्य जातिवाला है इसलिए उसके साथ जाने के कारण परिवार और समाज से उसे कई धमक्कियों का सामना करना पड़ता है। फिर भी प्रीति परवेज़ के साथ जाकर हमारी व्यवस्था की कुप्रथाओं पर अपना मानसिक आक्रोश प्रदर्शित करती है। ममता कालिया इस कहानी के द्वारा विवाह संबन्धी मानदण्डों में परिवर्तन लाने की आवश्यकता पर विचार करती है।

रुपये की कमी के कारण बेटियों के विवाह न होने के बारे में सोचकर मन ही मन रोनेवाले पिता को 'खिड़की' नामक कहानी में चित्रित किया गया है। पिता शिव शरणबाबू अपनी तीन बेटियों के विवाह के लिए एक-एक रुपये को भी समाया रखता है। वह अपनी शारीरिक विषमताओं को सहकर काम करने के लिए विवश हो जाता है। बडी अटैची को खुद उठाकर जाते वक्त वह कहता है - "तीन-तीन बेटियों का बाप कुलियों पर पैसे लुटाए, यह भी तो नहीं बनता।"[1] यह कथन उसकी मानसिक व्यथा का परिचायक है। हमारी व्यवस्था दहेज जैसी जंजीरों में फँसकर पिताओं के सपने, नींद, खुशी और स्वास्थ्य को भी लूट लेती है। मन ही मन त्रस्त होकर वह सोचता है कि विवाह के बदले स्वयंवर हो तो कितना अच्छा ही होगा। 'अब जब समाज में दहेज दिन दूनी, रात चौगुनी छटा दिखा रही थी,

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 154

शिवचरण बाबू को स्वयंवर जैसी प्रथा के बारे में सोचना अच्छा लग रहा था। कभी-कभी वे कहते भी मैं तो अपनी बेटियों को फूलों के गहनों में विदा करूँगा। इन्हें मैंने पढ़ा-लिखा दिया, अब जो इनकी कद्र करे वह मेरे सामने याचना कर इन्हें ले जाए।"[1] शरणबाबू ऐसा एक सपना देख रहा है कि अपनी बेटियों को धन के तराजू पर नहीं, शिक्षा या ज्ञान की वजह से शादी करनेवाला कोई उच्च आदर्शवाला वर मिले। लेकिन उसे यह समझना पड़ता है कि ऐसे पुरुष को मिलने की सूरत नज़र भी नहीं है। पुरुष की मानसिकता बदले बिना इस स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं आयेगा।

4.4.2.6 मीडिया और विज्ञापन

विज्ञापन बाजारू सामाजिक व्यवस्था का प्रमुख अंग है। हमें देख सकते हैं कि इन विज्ञापनों में नारी की मांसल और वासना रंजित छवि को बेनकाब किया जाता है। सुंदर और महत्वाकांक्षी लड़की ऐसे विज्ञापनों में अत्यधिक पैसे कमाने और मॉडल या हीरोइन बनाने के लिए अपने शरीर को प्रदर्शित करने के लिए तैयार हो जाती है। ओमप्रकाश शर्मा के मुताबिक "मीडिया संस्कृति ने सौन्दर्य प्रतियोगिताओं, रोक शो, बालीवुड की फिल्मों के कामोत्तेजक दृश्यों तथा विज्ञापन में स्त्री का देह-उघाडू प्रसारण करके नारी जाति को कुत्सित प्रवृत्तियों की ओर अग्रसर किया है तथा पुरुष जाति में भी विकृत सोच पैदा की है। यद्यपि स्त्री का समाज के प्रति तथा समाज का स्त्री के प्रति अधिक खुलापन सुलभ हुआ है, परंतु

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - पृ. 156

यह खुलापन स्त्री के प्रति सकारात्मक सोच पर आधारित न होकर उसकी कामुकता को उभारते हुए पैसा उगाहने का एक यंत्र तक ही बन सका है।"[1] विज्ञापन की दुनिया स्त्री के कमनीय रूप का भरपूर इस्तेमाल करती है। विज्ञापन के झिलमिला जगत् और उससे मिलनेवाले फायदे स्त्री को फँसाते हैं। ममता कालिया की 'कौवे और कोलकत्ता' नामक कहानी इसका स्पष्ट उदाहरण है। कहानी की नायिका हेमा जोशी व्यस्त मॉडल है और उसकी दीदी भी। दीदी को एक दिन नहाते समय पैर फिसल कर फ्रेक्चर हुआ। यह घटना दीदी को मन ही मन उलझ गयी है। क्योंकि वह जानती है कि मॉडलिंग की दुनिया में आराम तो हराम है। एक बार अनुपस्थिति होने पर मॉडलिंग की कार-बार से उसे निकल जाना पडता है। तीन महीने के आरम के बाद हेमा की दीदी की हालत बहुत दयनीय बन गयी "तीन महीनों में उसके फिगर पर चर्बी की एक परत चढ़ गयी। पहले के समान कपड़ों में घुसना नामुमकिन हो गया। उसने उबला खाना बनवाना शुरू किया, कोई राहत नहीं। पुरानी सेविका दुलारी ने कहा, 'बेबी खाने से नहीं पानी से मोटा होता है देहीं। दीदी ने पानी पीना कम कर दिया। निर्जलीकरण की शिकार, मरते मरते बची। पर वह अदा कि किसी सगे-सौतेले को खबर नहीं लगने दी।"[2] दीदी शारीरिक रूप से ही नहीं मानसिक रूप से भी थक गयी। अवसरों की कमी के साथ आयु की बढ़ाई उसे रुग्ण मानसिकता में पहूँचाई। "उम्र का क्या करोगी? कैसे पता लगेगी उम्र। मैंने अपनी जन्मपत्री, हाइस्कूल सर्टिफिकेट सब फाड़ फेंके हैं'...... दीदी के चेहरे पर

---

1. ओमप्रकाश शर्मा - समकालीन महिला लेखन - पृ. 117
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 30

शैतान की शरारत और चमक उभरी।"[1] इस प्रकार मॉडलिंग और विज्ञापन की दुनिया में अपने आप नष्ट करनेवाली लड़कियों की मानसिक-व्यथा को ममताजी ने चित्रित किया है। वे लड़कियाँ शरीर के बारे में सोचते-सोचते अपना अस्तित्व को नष्ट कर देती हैं। वास्तव में वे पुरुष और समाज के उपभोग वादी नज़रिए की गुलाम हैं। मीडिया जगत स्त्री को स्वतंत्रता प्रदर्शित कराने के नाम पर नयी गुलामी थोपता है।

4.4.2.7 कानूनी सुरक्षा

भारत के संविधान में नारी, पुरुष, अमीर, गरीब, शिक्षित, अशिक्षित सभी को समान सुरक्षा प्रदान की गई है। संविधान की प्रस्तावना में ही सामाजिक न्याय, समान अवसर तथा समता एवं स्वतंत्रता स्त्री और पुरुष दोनों को देने की बात कह गयी है। अनुच्छेद 14-19 अनुच्छेद 36-54 आदि में स्त्री की सुरक्षा, अधिकार और समानता की बातें कह गयी हैं। लेकिन हमारे समाज में कितनी प्रतिशत स्त्रियों को कानून की सुरक्षा मिलती है, यह विचार करने का विषय है। स्त्री की सुरक्षा के लिए कानून है लेकिन इसकी कारवाई अधिकारी लोग नहीं करते हैं। इसलिए समाज में स्त्री में अत्याचारों की परंपरा चल रही हैं। स्त्री पर होनेवाले अत्याचार आज अखबार के प्रमुख समाचार है। लेकिन अधिकारी वर्ग उचित कारवाई नहीं करते।

ममता कालिया की 'इक्कीसवीं सदी' नामक कहानी में इसका खुला चित्रण देखा जा सकता है। इसमें विनोद और पत्नी बारिश के कारण एक होटल

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 35

पर रुक गये। लेकिन विनोद की आँखों के सामने से ही पत्नी गायब हो जाती है। पुलीस, नेता आदि इसको एक छोटी घटना मानकर जाँच करने के लिए भी तैयार नहीं हो जाते हैं। अगले दिन पत्नी रेखा की क्षत-विक्षत शव मिल गयी। शव देखने से ही पता चलता है कि अपराधी चोर नहीं है, बलात्कार की वजह से मृत्यु हुई है। लेकिन पुलीसवालों इस पर ज़्यादा ध्यान नहीं देते हैं। यह सब देखकर विनोद को समझ में आया कि कानूनी सुरक्षा सिर्फ कागज़ पर सीमित है। "सामने की दीवार पर बड़े-बड़े अक्षरों में प्रधानमंत्री का नया बीस सूत्रीय कार्यक्रम लिखा हुआ था जिसमें अनेक वायदों के साथ-साथ महिलाओं को सुरक्षा व समान अधिकार का आश्वासन भी था।"[1]

घर में भी स्त्री पर अत्याचार चलता रहता है। अधिकार और पद के सामने सभी नियम शिथिल हो जाते हैं। 'श्यामा' नामक कहानी में विजिलेंस इंस्पेक्टर रमेश चंद्र श्रीवास्तव अपनी पत्नी श्यामा को घर में शारीरिक और मानसिक रूप से शोषण कर रहा है। एक दिन श्यामा अपनी सहेली के सहारे पुलीस की सुरक्षा माँगती है। उसे सुरक्षा ही नहीं मिली और इसके बदले पति के हाथों से मौत हुई। सब जानते हैं कि पुलीस में शिकायत करने के कारण ऐसा हुआ है। अखबार में खबर आने पर भी इसके प्रति जाँच करने के लिए कोई तैयार नहीं है। "एक दिन अखबार के स्थानीय पृष्ठ पर एक कॉलम में सबसे नीचे छोटी सी खबर दिखाई दी, रमेश चंद्र श्रीवास्तव की पत्नी श्यामा श्रीवास्तव सीढ़ी से गिर कर बेहोश हो गयी। उपचार के लिए उन्हें अस्पताल ले जाया गया, जहाँ आज सबेरे

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 51

उनका दम टूट गया।"[1] सब जानते हैं कि श्यामा की मौत नहीं, हत्या है। श्यामा सीटियों से गिरी नहीं गिरायी गयी है। लेकिन भय के कारण सच बोलने के लिए कोई तैयार नहीं है। सभी लोग रमेश चंद्र की झूठी कहानियों पर विश्वास करते हैं। हम जानते हैं कि स्त्रियों की सुरक्षा सिर्फ कहने मात्र हैं। स्त्री को शोषित करने के लिए कानून में 'लूप होलस' हमारा समाज और पुरुष बनाते हैं 'औरत होने की सज़ा' नामक पुस्तक में अरविन्द जैन ने इस प्रकार लिखा है "तुम औरत हो..... मुझसे अलग मेरे विरुद्ध आँख उठाने की कोशिश भी करोगी तो कीड़े-मकौड़े की तरह कुचल दी जाओगी। कोई तुम्हारी मदद के लिए आगे नहीं आएगा। समाज, धर्म, कानून, मठाधीश, मंत्री-नेता और राजा सब मेरे हैं, बल्कि ये ही वे हथियार है, जिनसे मैं दुनिया में ही नहीं, दूसरी दुनिया में ही तुम्हें नहीं छोडूँगा....।"[2] यह धमकी हमारी कानूनी व्यवस्था की कारवाई को व्यक्त कराती है।

4.4.3 धर्म और स्त्री

भारतीय समाज में प्रारंभिक काल से लेकर धर्म का महत्वपूर्ण स्थान है। इसलिए ईश्वर, विश्वास, रूढ़ियाँ, परंपरा, कर्मकांड, पाप, पुण्य, स्वर्ग, नरक, पुनर्जन्म जैसी बातों का समावेश भारतीय समाज से अलग नहीं कर सकते हैं। लेकिन आज धर्म का रूप बदल गया है। धर्म एक धंधा मात्र बन गया है। धर्म की ओट में पुरोहित एवं धर्म के संचालक अपना लाभ उठाने का कार्य करते हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 258
2. अरविन्द जैन - औरत होने की सज़ा - पृ. 27

इसलिए धर्म के नाम पर बाह्याडंबर, अंधविश्वास, शोषण आदि चल रहा है। ध्यान देने की बात यह है कि धर्म के नाम पर शोषण स्त्री पर अधिक रूप से चल रहा है। क्योंकि हमारे धर्माचार्य और धार्मिक व्यवस्थाएँ स्त्री को पुरुष से हीन स्थापित करने की कोशिश करती रहती हैं। मृणाल पाण्डे ने इसकी ओर सूचित किया है - "पुरुषत्व की मूल अवधारणा समाज में हमेशा सकारात्मक और केन्द्रीय रही है। यानी पुरुष का जन्म एक संपूर्ण मानव ही नहीं, मानवता का सही और आदर्श स्वरूप होना सहज स्वीकृत रहा है। इसके ठीक विपरीत समाज में स्त्रीत्व की मूल अवधारणा नकारात्मक है। लगभग सभी धार्मिक और दार्शनिक दोनों दायरों में स्त्री को पुरुष के संदर्भ में एक अपूर्ण और सापेक्ष जीवन के रूप में देखा गया है।"[1] पुरुष से ज़्यादा स्त्री अधिक भावुक और संवेदनशील होने के कारण स्त्री धर्म, रूढ़ियाँ, आचार आदि पर अधिक लगाव और विश्वास रखती है। हमारे धर्माचार्य स्त्री के इन गुणों को उन्हें शोषण करने का साधन मानते हैं। ममता कालिया ने धार्मिक विश्वास और रूढ़ियों द्वारा स्त्री का किस प्रकार शोषण किया जाता है, इसको अपनी कहानियों में दिखाने की कोशिश की है।

4.4.3.1 अंधविश्वास

इक्कीसवीं सदी में भी हमारे देश में अंधविश्वास की समस्या बरकरार रही है। निम्न और मध्यवर्गीय अनपढ़ लोग ही नहीं, शिक्षित लोग भी अंधविश्वास के शिकार हैं। ममता कालिया की कहानियों में इसके अनेक उदाहरण देख सकते हैं।

---

1. मृणाल पाण्डे - स्त्री देश की राजनीति से देह की राजनीति तक - पृ. 13, 14

'मेला' नामक कहानी में धर्म के प्रति स्त्री की अंधश्रद्धा की ओर इशारा मिलता है। इस कहानी में गंगा नदी में नाव पर यात्रा करने का चित्रण है। संतों के आदेशानुसार सभी भक्त स्त्रियाँ मौन व्रत लेती हैं। नाव को डूबते देखकर भी उनके मुँह से कोई शब्द या रोदन नहीं उभरते हैं। क्योंकि उनका विश्वास यह है कि उस दिन शोर मचाना पाप है। वे अपने व्रत में बाधा डालना नहीं चाहती हैं। "सभी सवारियाँ एक-दूसरी के गले लगाकर रो रही थी, मौन रोदन, जिसमें शब्द की जगह सिसकियाँ थीं, अश्रु की जगह आँखों में भय............। जो स्त्रियाँ आसीन थीं, आग्नेय दृष्टि से उन्हें देख रही थी।"[1] ममताजी ने इस कहानी के द्वारा यह भी संकेत किया कि सभी तीर्थ स्थानों और मंदिरों में पुरुषों की अपेक्षा स्त्री की संख्या अधिक है। "ज़्यादा स्त्रियाँ बूढ़ी अधेड और जवान। अनुपात में पुरुष कुछ कम। वे सारे के सारे महीने टिकते भी नहीं हैं, एक-दो प्रमुख स्थान दिनों का लाभ उठाकर लौट जाते हैं, वापस दुनिया की ठेकेदारी में। अपनी निजी पाप-पुण्य का गट्ठर अपनी स्त्रियों को थमाकर वे चल देते हैं। उन्हें पूर्ण विश्वास है कि एक-दो डुबकी लगाने से उनके समस्त पाप धुल गए।"[2] स्त्री तो महीनों तक अपना और अपने पति के पाप-मुक्ति के लिए और उसका कल्याण के लिए पुण्य स्थानों में भडकती है। पुरुष भी स्त्री की अंधश्रद्धा का लाभ उठाता है।

'खुशियाँ का लौटना' नामक कहानी में मुकुल और स्मिता को विवाह के नौ साल बाद एक बच्ची पैदा हुई। नानी का विश्वास है कि अपनी प्रार्थना और

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 144
2. वही - पृ. 135

विश्वास के कारण अपनी बेटी गर्भवती बन गयी है। इसलिए बच्ची पैदा होने के एक साल पूरा होने पर उन्होंने दिल्ली के कोने-कोने के मंदिर तक बच्ची को दर्शन करवा दिये। इतने छोटी बच्ची को लेकर मंदिरों में जाने के लिए वे हिचकते नहीं हैं। बच्ची को तीन साल होने पर नानी ने बच्ची को लेकर बदरीनाथ यात्रा की है। मानव की अंध भक्ति देखकर कहानी के प्रेरणा नामक पात्र के ज़रिए ममता जी अपना एतराज प्रकट करती हैं - "मन्नत उतारने भाभी अकेली जा सकती थीं। छोटी-सी बच्ची को ऐसी दुर्गम जगहों में साथ घसीटने का क्या मतलब था?....... बदरीनाथ की यात्रा बड़े बूढ़े करते हैं, छोटे बच्चे नहीं?"[1]

मानव की ऐसे विश्वासों पर ममताजी घोर व्यंग्य कसती हैं। 'खुशियों का लौटना' कहानी की प्रेरणा और पति परिवार नियोजन कर रहे थे। लेकिन घरवालों की धारणा है कि प्रार्थना की कमी के कारण उन्हें बच्चा पैदा नहीं हो रहा है। इसलिए वे प्रेरणा को पूजा करने की आदेश देते हैं। "उसके हाथ में उन्होंने लाल चुनरी और नारियल देकर कहा था - 'देवी माँ के आगे माथा टेककर मन्नत माँग कि अगले साल तू बेटेवाली होकर यहाँ आये। प्रेरणा को माँ के भोलेपन पर रुलाई और हँसी आयी थी। उसे लगा था सबसे पहले तो उसे पर्स से निकालकर उन गोलियों का पत्ता बाहर फेंकना पडेगा जो उसे नियम से रोज़ खानी होती थी।"[2] ममता कालिया अपनी कहानियों के द्वारा मानव के अंधविश्वास और धार्मिक मूर्खता पर अपनी नफरत और विरोध प्रकट करने के साथ-साथ कटु व्यंग्य भी करती है।

---

1. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 47
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 47

4.4.3.2 व्रत

भारतीय स्त्री में धर्म के प्रति विशेष रूप से आस्था एवं निष्ठा होती है। इसलिए वह व्रत, उपवास, पूजन, भजन, जप-तप आदि में अपना मन विशेष रूप से रमाती है। लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि कभी-कभी ये व्रत और अनुष्ठान स्त्री की जिम्मेदारी के रूप में बन गया है। व्रत लेने के लिए वह मज़बूत बन गयी है। ममता कालिया की कहानियों में इसका स्पष्ट उल्लेख देख सकते हैं। 'एक पति की मौत' नामक कहानी की सिया के मन में धार्मिक आचारों और रूढ़ियों के प्रति घोर विरोध है। वह ऐसे दिखावे की प्रवृत्ति में विश्वास नहीं करती है। लेकिन उसकी सास उसे दूसरों के सामने सिंदूर डालकर पति भक्ता जैसा जीने के लिए मज़बूत बनाती है। सास का आदेश है - "सुहागनों को सूनी माँग नहीं सोहती। तेरा सोने जैसा आदमी सात समुन्दर पार बैठा है, दिन-रात उसकी खैर मना, यही तेरा फर्ज है।"[1] यह सुनकर सिया मन ही मन जल उठती है। उसे ससुराल में छोडकर चले गये पति की यादों को एक बोझ जैसा सिर पर डालने के लिए वह तैयार नहीं है। सिया अपना विरोध प्रकट करते हुए कहा है "ना मैं सघवा न मैं विधवा, फिर एक कर्मकाण्डी सुहागन की तरह क्यों सिंगार का स्वाँग भरूँ। प्यासी रहूँ, उपासी रहूँ किसके लिए! जो मेरा जनम बिगाड़ गया? तुम्हारा वह बेटा है, तृप्ति का बाप है पर मेरे तो कुछ नहीं रहा।"[2] सिया सशक्त भाषा के ज़रिए अपना विरोध प्रकट करती है।

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 100
2. वही - पृ. 101

आज लोग कहते हैं हम आधुनिक है, पुराने रूढ़ियों में विश्वास नहीं करते हैं, लेकिन मन ही मन वे ऐसी रूढ़ियों पर अंधे रूप में विश्वास करते हैं। 'मनोविज्ञान' कहानी के नवीन का सशक्त उदाहरण है। नवीन खुद अपने को आधुनिक समझता है। इसलिए विवाह के बाद सबसे पहले नवीन ने अपनी पत्नी कविता को भी आधुनिकीकरण किया। कविता का बाल कटवा कर छोटा करवाया, इसके साथ वैक्सिंग, थ्रेडिंग और ब्लीचिंग भी मंजूर कर ली। इसके बाद एक दिन नवीन ने अपने मित्र से सुना है कि मित्र की पत्नी ने पति के लिए व्रत लिया है। तब उसने दूसरों के सामने खुलकर कहा है - "मैं नहीं सोचता व्रत, पतिव्रत को बढ़ाता है।"[1] लेकिन घर में पहूँचकर उसने कविता व्रत न लेने का कारण पूछकर नाराज़ा हो गया है। नवीन मन में कितना रूढ़ीग्रस्त है, उनका निम्नलिखित कथन इसका द्रष्टव्य है। "तुम इतनी परंपरा-शून्य क्यों हो? दरअसल तुम मुझसे ऊब चुकी हो। अगले जनम में तुम परिवर्तन चाहती हो। तुम एक संवेदनशून्य औरत हो।"[2] आज भी लोगों की धारणा है कि आधुनिक बनाने का अर्थ सिर्फ बाह्य तौर का बदलाव है। मन ही मन वे रूढ़ीग्रस्त हैं।

व्रत, अनुष्ठान आदि अत्याचारों के साथ ही साथ प्रतिरोध करने की ताकत भी स्त्री से धर्म ने छीन लिया है। क्योंकि अपने पर होनेवाले शोषण के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए, या उनसे मुक्ति पाने के लिए प्रतिरोध करना पड़ता है। प्रतिरोध के बिना कुछ भी परिवर्तन नहीं होगा। दरअसल धर्म और धार्मिक

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 366
2. वही - पृ. 366

आचार्यों ने गलत धार्मिक व्याख्यानों द्वारा सदियों से स्त्री के प्रतिरोध करने की शक्ति छीन लिया है। उन्हें स्त्री को आवाज़ उठाने के बजाय रोने का आदेश देती रहती है। 'तस्की हम न रोये' नामक कहानी में इसका स्पष्ट उल्लेख देखा जा सकता है। इसमें विजेन्द्र ने अपनी पत्नी आशा को हमेशा नफ़रत की दृष्टि से देखा है और घोर व्यंग्य कर दूसरों के सामने भी अपमानित किया है। ऐसे अवसरों में आशा पति का विरोध करना चाहती है। लेकिन वह विरोध प्रकट नहीं कर सकी। इसका कारण ममताजी ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है। "आशा तिलमिला गयी, बमुश्किल उसने अपने हाथों को उस ओर पेपरवेट फेंकने से रोका। ऐसे मौकों पर उसे अपनी माँ और बच्चे बेतरह याद आते हैं। माँ ने शादी के समय कहा था - अबसे ज़िन्दगी में केवल दो चीज़ों पर भरोसा करना एक प्रार्थना, दूसरी सहनशक्ति।"[1] वास्तव में ऐसे आदेश स्त्री को बचपन से ही मिलते रहते हैं। ऐसे आदेशों के स्त्री अपने अस्तित्व की पहचान न कर सकती है। हमारी धार्मिक व्यवस्था ने स्त्री के मन में ऐसा एक विश्वास देने की कोशिश की है कि प्रार्थना और सहनशक्ति के द्वारा सब ठीक हो जाएगा। विरोध करना अच्छी औरत का लक्षण नहीं है।

4.4.3.3 शारीरिक शोषण

भक्ति की ओट में कभी-कभी स्त्री पर शारीरिक शोषण होता है। 'मेला' नामक कहानी में इसका स्पष्ट उल्लेख देखा जा सकता है। स्वामिनी ने एक भक्तिन से इस प्रकार कहा कि "स्वामी रामानंद अच्छे थे, पर उन्हें भी देह की दानवी भूख

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 115, 116

थी। आय टेल यू। एक रात मैं उन्हें कृष्णामूर्ति की फिलॉसफी समझा रही थी। मुश्किल से नौ बजे थे, उन्होंने मेरे चोंगे में हाथ डाल दिया। बाय गॉड। मैंने प्रोटेस्ट किया तो बोले, कौने देखेंगा। किसी को पता भी नहीं चलेगा। मैंने उन्हें बदनामी का डर दिलाया। वे हँसे, 'कैंप में सब बुढ़िया भक्तिन है, खा-पीकर सोई हैं।"[1] स्वामिनी के मन में इन शोषणों के प्रति घोर विरोध और नफरत है। इसलिए वहाँ उसे अपने मन को खोलकर दिखाने के लिए एक सहेली मिली तो उसने इस प्रकार कहा - "जानती हो एक मिनिट को यहाँ बत्ती चली जाती है तो कितने बलात्कार हो जाते हैं इस बीच।"[2] धर्म भी स्त्री को शारीरिक शोषण करने का एक साधन बन गया है। धर्म में भी स्त्री को आश्वासन नहीं मिलता है। नीलम कुलश्रेष्ठ इसका कारण बताती है "आज विश्व में जितने भी धर्म हैं.... हिन्दू, इस्लाम, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि सभी के संस्थापक पुरुष हैं, स्त्री नहीं, न ही स्त्री किसी धर्म की संचालिका है।"[3] इसलिए सभी धार्मिक व्यवस्थाएँ स्त्री विरोधी बन गयी है। वास्तव में सभी धर्मों में स्त्री को उच्च स्थान देने का आदेश है। लेकिन बाद में आये हुए धर्माचार्यों और धार्मिक व्याख्याताओं ने स्त्री स्वतंत्रता पर प्रश्न चिह्न लगाया। धार्मिक रीति-रिवाज़ों और अंधविश्वासों ने स्त्री को दोयम दर्जे का स्थान दिया है। ममता कालिया ने अपनी कहानियों में इसका खुला चित्रण किया और कटु व्यंग्य भी किया है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 142
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 142
3. नीलम कुलश्रेष्ठ - धर्म के आर-पार औरत - पृ. 29

4.4.4 नौकरी और स्त्री

पुरुष वर्चस्ववादी समाज में पुरुष स्त्री को अपनी उन्नति की सीढ़ियाँ बनाता रहता है। लेकिन जब से स्त्रियाँ शिक्षित हुई तब से लेकर जीवन के विभिन्न कार्यक्षेत्रों में स्त्रियों पुरुष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य करने और अपनी योग्यता प्रदर्शित करना शुरू किया। घर से बाहर आकर नौकरी करनेवाली स्त्रियों की संख्या आज अधिक है। स्कूलों, अस्पतालों, दफ्तरों, बैंकों आदि सभी क्षेत्रों में स्त्री अपनी उपस्थिति प्रस्तुत की है। आज स्त्रियाँ नौकरी कर अपने पैरों में खडी होती हैं। क्योंकि आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबित होने पर स्त्रियों का आत्मविश्वास बढ़ता है। वे अपनी अस्मिता, अस्तित्व और अधिकारों के प्रति जागृत हो जाती हैं। आर्थिक सुरक्षा उन्हें आवाज़ उठाने की ताकत है क्योंकि नौकरी हर व्यक्ति के आर्थिक स्वावलंबन की जबरदस्त सीढ़ी है। इस संदर्भ में रामदरश मिश्र की निम्न लिखित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं "एक अच्छी बात यह उभर रही है कि वे अत्याचार का विरोध कर सकती है। उन्हें इस बात की प्रतीति है कि यदि उन्हें अलग होना पडा तो वे बेसहारा नहीं होगी, जीवन-यापन के लिए उनके पास नौकरी है, जीवन की समझ है, आत्मबल है।"[1] लेकिन समाज और पुरुष के नज़रिये में कोई बदलाव नहीं आया है। इसलिए नौकरीपेशा नारी को घर के बाहर और भीतर कई तरह की समस्याओं का सामना करना पडता है जैसे घर के पूरी ज़िम्मेदारी के साथ नौकरी, सहकर्मियों और अफसरों का दुव्यवहार, घर में समय की पाबन्दी करना, वेतन में

---

1. रामदरश मिश्र - वर्तमान साहित्य, मार्च 2011 - पृ. 24

अन्याय। इन अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठानेवाली स्त्रियाँ पुरुष और समाज की दृष्टि में एक प्रश्नचिह्न हैं। इसलिए हमारी व्यवस्था स्त्री को किसी-न-किसी प्रकार चुप रखने की कोशिश करती है। बोलनेवाली औरत को हमेशा समाज में विरोधी तत्व समझा जाता है। ममता कालिया नौकरी करती थी। इसलिए उसने अपने अनुभवात्मक लेखन से स्त्री को नौकरी के क्षेत्र में पुरुष-सत्तात्मक मानसिकता के कारण जो कुछ झेलना, सहना पडता है, उस दर्द को अत्यन्त गहराई से अपनी कहानियों में प्रस्तुत किया है। वह अपनी रचनाओं के द्वारा यह व्यक्त करना चाहती है कि विरोधी तत्व बनने से कोई गलती नहीं है। अपनी अस्मिता और अस्तित्व को कायम रखने के लिए कभी-कभी विरोधी तत्व बनाना पडेगा। "ममता कालिया की स्त्री दृष्टि में एक अपेक्षित संतुलन भी है। वे चेतना के पिछडेपन में फँसी स्त्री के प्रति कोई ममता नहीं रखती।"[1] आगे ममता कालिया की कहानियों में नौकरीपेशा स्त्री को जिन-जिन परिस्थितियों और समस्याओं से गुजरना पड़ता है, और स्त्री कैसे आगे जाती है इसका चित्रण किस प्रकार है, इस पर विचार किया जाएगा।

4.4.4.1 शारीरिक शोषण

नौकरी के क्षेत्र में पुरुष का शोषण श्रम और अर्थ का होता है। पर स्त्री को इन शोषणों के साथ यौन शोषण की शिकार भी होनी पडती है। पुरुष सहयोगी उसे सिर्फ भोग की वस्तु मानते हैं। नारी चाहे कितनी भी बड़ी ऑफीसर हो, पर उसके स्वतंत्र व्यक्तित्व को मानने के लिए पुरुष तैयार नहीं है। सभ्यता के बढ़ते

---

1. शैलेन्द्र सागर, रजनी गुप्त - आज़ाद औरत : कितनी आज़ाद - पृ. 114

चरण के इस युग में पुरुष की मानसिकता में कोई परिवर्तन नहीं आया है। इसलिए पुरुष नारी को जिस तरह घर में कैद रखता है उसी प्रकार नौकरी के क्षेत्र में भी कैद रखना चाहता है। यदि स्त्री 'उनकी' इच्छाओं का इनकार करने पर झूठे आरोपों को लगाकर पुरुष मानसिक रूप से उसका शोषण करते हैं।

सभ्यता का मुखौटा पहनकर स्त्री को नौकरी के क्षेत्र में मानसिक और शारीरिक रूप से शोषण करनेवाले पुरुष सहकर्मियों की विकृत मानसिकता का पर्दाफाश है ममता कालिया की 'जाँच अभी जारी है' नामक कहानी। इस कहानी की नायिका अपर्णा एक राष्ट्रीकृत बैंक में अपनी मेहनत से काम पाया था। इस दफ्तर के मुख्य अधिकारी और अन्य पुरुष सहकर्मी अपनी सहकर्मी स्त्रियों को शारीरिक रूप से शोषण करनेवाले हैं। वहाँ नौकरी मिलने के कुछ दिन बाद ही अपर्णा को ऐसी ही स्थितियों से गुज़रना पडा। "आज की शाम आप क्या कर रही है, यह सवाल धीरे-धीरे बैंक का हर छोटा-बडा अधिकारी अपर्णा से पूछ चुका था। अपर्णा बुद्धू नहीं थी। माँ की बीमारी, पिता का प्रवास उसके रक्षाकवच थे।"[1] अपर्णा उनके जाल में न फँसने के कारण उन लोगों ने एल.टी.सी के झूठे आरोप लगाकर अपर्णा पर अनुशासनात्मक कारवाई की। अपर्णा ने अपने को बेगुनाह स्थापित करने के लिए कई अफसरों से मदद माँगी। लेकिन किसी ने भी उसकी मदद नहीं ती। शिकायत देने के लिए पिता के साथ अफसर के सामने आयी अपर्णा को देखकर अफसर ने चपरासी से कहा है - "इसी तरह ये अपने पिताजी के साथ

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 56

आती रहेगी तो दसियों साल इंक्वायरी चलाऊँगा, रो न दे तो कहना"[1] अफ्सर के इस कथन से ही उसकी वासनात्मक दृष्टि का प्रमाण मिलता है। अपर्णा जानती है कि यदि वह अपना शरीर उन लोगों के सामने प्रस्तुत करने के लिए तैयार होती है तो मदद उसे ज़रूर मिलती थी। लेकिन अपर्णा अपनी अस्मिता और अस्तित्व को दूसरों के सामने नष्ट करने के लिए तैयार नहीं है। इसलिए वह सत्य की जीत के लिए लडती रहती है।

'साथ' नामक कहानी का अशोक एक नामवर दफ्तर के अधिकारी है। उसने अपने दफ्तर के स्टेनो सुनन्दा को विवाह करने का वादा देकर शारीरिक रूप से उपयोग किया और एक साथ जीना भी शुरू किया। इसलिए सुनन्दा विवाह की बात कहने पर कोई-न-कोई कारण बताकर उसने बचाना शुरू किया। "जब सुनन्दा शादी के लिए कहती, वह वार्डरोब से निकाल कर टाइयों का सेहरा सिर पर बाँध लेता और सुनन्दा पर चुम्पनों का धारावाहिक सिलसिला शुरू कर देता। पर जिन दिनों सुनन्दा की जिद ज़्यादा कड़ी होती उसे बैंक से पैसे निकलवा कर साड़ी खरीदनी पड़ती। वैसे समय वह बिस्तर पर फुसफुसाते हुए एक से अधिक बार कहता, 'यु आर मोर दैन माइ वाइफ, यू आर माई लाइफ।"[2] अशोक अपना पद, अधिकार, धन आदि के ज़रिए सुनन्दा को उपयोग करता रहता है। अशोक सुनन्दा को अपनी शारीरिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए साथ रहती है। जब यह सुनन्दा की समझ में आयी तो वह विरोध प्रकट नहीं कर पाती। नौकरी नष्ट होने के भय से चुप होकर अशोक के साथ उसे रहना पडता है।

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 60
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 69

इनमें सबसे ज़्यादा दुःखद बात यह है कि नौकरी की दुनिया में होते इन शोषणों में आखिर को सहारा देने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। स्त्री सहकर्मी भी इन समस्याओं में अपने को शामिल करना नहीं चाहती है। 'जाँच अभी जारी है' में ममताजी ने इस विषय की ओर भी ध्यान दिया है। अपर्णा पर होनेवाले अत्याचारों के बारे में वहाँ की महिला सहकर्मी जानती हैं। लेकिन अपर्णा का समर्थन करने के लिए या अत्याचारियों के विरुद्ध आवाज़ उठाने के लिए वे तैयार नहीं हैं। अपर्णा से सहकर्मी स्त्री इस प्रकार कहती है - "न बाबा, मैं इस लपडे में नहीं पडना चाहतीं। कितनी फ़जीहत होगी। मेरी अब्बा तो जान से मार डालेंगे.... मैं मोर्चा नहीं बनना चाहती है।"[1] आज मानव दूसरों को सहायता देने के लिए तैयार नहीं है। वह अपना जीवन, पद आदि में किसी-न-किसी प्रकार की बाधा डालना नहीं चाहती है। लेकिन सच्चाई तो यह है कि ऐसी मानसिकता जिस काल तक स्त्री में है उस काल तक शोषणों से स्त्री की मुक्ति नहीं होगी।

4.4.4.2 आर्थिक विषमता

आज नारी सुशिक्षित है, नौकरीपेशा है। लेकिन नौकरी होने पर भी उसे कभी-कभी आर्थिक विषमताओं का सामना करना पडता है। नौकरी की अस्थिरता, वेतन की कमी आदि उसके जीवन को और भी कष्टदायक बनाते हैं। ममता कालिया की 'लगभग प्रेमिका' की सुजाता एक कॉलेज में अंशकालिक प्रवक्ता है। अंशकालिक प्रवक्ता होने पर भी उसे पूर्वकालिक कार्य करना पडता है। "यह बडी

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 63

हास्यास्पद सच्चाई थी कि कहने को मैं प्रवक्ता थी, लेकिन मुझे कुल डेढ़ सौ रुपये मिलते थे। पिछले तीन साल से मैं विमेन्स कॉलेज में अंशकालिक प्रवक्ता थी। हर साल कॉलेज में न जाने कितनी नयी नियुक्तियाँ होतीं, पदोन्नतियाँ होतीं। और मैं वहीं की वहीं रह जाती। ....मैं अंशकालिक पद पर पूर्वकालिक कार्य करती थी, मेरी सहयोगी प्रवक्ता पूर्वकालिक वेतन पर अंशकालिक काम।"[1] सुजाता जानती है कि यदि पदोन्नतियाँ मिलने के लिए या स्थिर नियुक्ति मिलने के लिए धन और सिफारिश की ज़रूरत है। इसलिए कॉलेज में नयी नियुक्तियाँ होने पर सुजाता इस प्रकार कहती है "नयी साड़ियों में जो नये चेहरे आते, उनके बारे में पता चलता, किसी का पिता घडियों का सबसे बडा व्यापारी है, तो किसी का चाचा इनकमटैक्स कमीश्नर है। मेरी जडें इतनी पक्की नहीं है।"[2] ममताजी ने इस कहानी के द्वारा यह संकेत किया है कि नौकरी मिलने के लिए शिक्षा और प्रतिभा के साथ और कुछ भी चाहिए।

'वसंत सिर्फ एक तारीख' की नायिका चंदा साहित्यकार है। फिर भी बढ़ती हुई आर्थिक विषमताएँ किसी भी रास्ते से भी नौकरी प्राप्त करने के लिए उसे मज़बूर बनाती है। चंदा अपनी गली के परिचित प्राचार्या को अपने वश में लाकर नौकरी प्राप्त करने की कोशिश करती है। "मेरी संवेदना वसंत का आनन्द ले रही थी। मेरी चेतना एक महत्वाकांक्षी योजना बना रही थी। मेरी पहचान की एक महिला अभी पिछले महीने गाँधी कॉलेज की प्राचार्या बनकर शहर में आयी थीं।

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 130
2. वही - पृ. 130

जिस दिन यह जानकारी मुझे मिली, मेरी आह्लाद की कोई सीमा न रहीं।"[1] प्राचार्या की प्रशंसा करते-करते चंदा उसे अपने वश में लाने का जाल बुनती है। क्योंकि उसकी आर्थिक स्थिति उतनी ही दयनीय थी। नौकरी की प्रतीक्षा में कॉलेज में जाते वक्त चंदा रोते हुए अपने बच्चों से इस प्रकार कहती है - "बेटे, आज अम्मा को जाने दो, हो सकता है जब अम्मा लौटे तो उसकी जेब रकम से भारी हो।"[2] अधिकारी लोग नौकरी करनेवाली स्त्रियों के घर की स्थिति, नौकरी की आवश्यकता, अज्ञान आदि को समझकर उनका शोषण करते हैं। 'शाल' नामक कहानी में ननकी एक स्कूल में ग्यारह साल से चपरासिन का काम करती रहती है। नौकरी स्थायी बनाने के लिए क्या-क्या करने हैं, इसके बारे में ननकी को कोई जानकारी नहीं है। इसलिए वह सालों से 'आधा वेतन' पर काम कर रही है। "उस स्कूल में काम करते, ग्यारह साल हो गये थे, लेकिन उसकी नौकरी अभी भी कच्ची थी। कच्ची नौकरी कैसे पक्की होती है, यह ननकी को मालूम नहीं था, बस, इतना मालूम था कि कच्ची नौकरीवालों को पक्की नौकरीवालों से आधा वेतन मिला करता है।"[3] नौकरी स्थायी करने के लिए जो-जो कार्यक्रम हैं उनके बारे में स्कूल के प्रिंसिपल, मानैजर, टीचर सब जानते हैं लेकिन वेतन में लाभ उठाने के लिए वे सब एकत्रित होकर अभिनय करते हैं। 'मनहूसाबी' की नायिका ऊषा भी वेतन की कमी के कारण संघर्ष का सामना करती है। उसे कम वेतन के साथ दोगुना काम भी करना पडता है। "पिछले साल से मनहूसाबी एक स्कूल में पढ़ाने भी लगी है। उसे औरों

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 211
2. वही - पृ. 211
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 112

से डयोढ़ा काम मिलता है और वेतन आधा।"[1] अधिकारियों का शोषण जानते हुए भी आर्थिक विपिन्नताएँ उसे आधा वेतन पर काम करने के लिए विवश बनाती हैं।

'जी' शीर्षक कहानी में एक ऐसी माँ की मानसिक व्यथा का चित्रण हुआ है जिसको आर्थिक तनाव के कारण अपनी बच्ची को अकेले छोड़कर काम करना पड़ता है। 'जी' की नायिका मिलन अपने पति के साथ एक रेस्टेरेन्ट में मुस्किल शो चलाती है। अपनी नन्हीं बच्ची को रेस्टेरेन्ट के एक कमरे में अकेले छोडकर उसे शो के लिए निकलना पडता है। उसके पास और कोई विकल्प नहीं है। आर्थिक विषमताएँ उसके जीवन विपन्न बनाती हैं। 'काली साडी' की कल्पना अपनी सहेली उज्जवला को एक साड़ी सम्मान के रूप में देना चाहती है। लेकिन आर्थिक तंगी के कारण उसे अपनी इच्छा को छोड़ना पडता है। बढ़ता पारिवारिक खर्चा उसकी पूरी कमाई को निगलता है। कहानी की निम्न लिखित पंक्तियाँ इसका गवहा है - "मकान का किराया, बिजली का बिल, बच्चों की फीज़, रिक्शे का भाड़ा, दूध के दाम देते-देते तक वेतन का लिफाफा 'राम नाम सत्य है' बोल पड़ता और कल्पना चुपचाप अपना ध्यान आध्यात्मिक संतोष में लगाने का प्रयत्न करती।"[2] अर्थाभाव उसकी ज़िन्दगी की इच्छाओं और खुशियों को निगलता है। इसप्रकार ममता कालिया ने अपनी कहानियों के द्वारा नौकरी होने पर भी अर्थाभाव से कारण त्रस्त नारी जीवन को हमारे सामने प्रस्तुत किया है। अधिकारी हमेशा अपने नीचे काम करनेवालों को

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 344
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 232

विशेषकर स्त्रियों को वेतन में न्याय न करने का रास्ता ढूढ़ते हैं। वेतन कम करके काम का बोझ बढ़ा करके अधिकारी हमेशा लाभ उठाते हैं।

4.4.4.3 दोहरी भूमिका

वर्तमान ज़माना ने नारी पर दोहरी भूमिका सौंप दी है। एक तो नौकरी करना है और दूसरा घर संभालना है। उसे ऑफीस में बॉस को और घर में घरवालों को भी संतुष्ट करना पडता है। काम के बाद वापस आने पर पुरुष जिस प्रकार थक जाता है उसी प्रकार स्त्री भी थक जाती है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि पुरुष या घरवाले स्त्री की थकावट को थकावट नहीं मानते हैं। नौकरीपेशा नारी कभी-कभी घर की आय को बढ़ाने का एक साधन मात्र बन जाता है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान लिखती हैं - "हमारे देश में औरत यदि पढ़ी-लिखी है और काम करती है तो उससे समाज और परिवार की उम्मीदें अधिक हैं। लोग चाहते हैं कि वह सारी भूमिकाओं को बिना किसी शिकायत के निभाए। वह कमा कर भी लाए और घर में अकेले खाना भी बनाए, बूढ़े सास-ससुर की सेवा भी करें और अपने बच्चों का पालन-पोषण भी।"[1] पुरुष और घरवालों की इस मानसिकता के कारण स्त्री को परिवार और कार्यस्थल में संतुलन स्थापित करने की कोशिश करनी पड़ती है।

ममता कालिया की 'मनहूसाबी' नामक कहानी परिवार और नौकरी के बीच की स्त्री की भागदौड़ का सच्चा दस्तावेज़ है। नायिका ऊषा घर और स्कूल के

---

1. प्रभा खेतान - स्त्री उपेक्षिता - पृ. 15

कामों से बेचैन है। ऊषा के बारे में सोचने के लिए और सहायता देने के लिए बच्चे और पति भी तैयार नहीं है। घर के सारे की सारे काम अकेले करने के बाद उसे स्कूल जाना पडता है। "फिर जब वह घड़ी देखती है तो न नहाने का वक्त बचा होता है न ठीक से तैयार होने का। किसी तरह अपनी लीचड़ चप्पलों में अपने पस्त पैर डाल वह घर से भागमभाग निकलती है। रास्ते भर एक इस्तेहार अपने शब्द बदल कर लगातार उसके साथ-साथ चलता है - 'पाउडर मलिए काम पर चलिए', 'नाश्ता निगालिए काम पर चलिए'। रास्ते में उसे कई बार लगता है शायद बिन्दी टेढ़ी लगी है लेकिन इसके पर्स में छोटा शीशा नहीं रहता। गुड़िया पर्स में शीशा रहने ही नहीं देती, चुपके से अपनी गुडिया के लिए निकाल लेती है। रास्ते में पडने पानवालों के शीशों में चेहरा देखने का यत्न करती मनहूसाबी अन्ततः नाकामयाब होकर यह फिर्क और कोशिश छोड़ देती है। ऐसे में मनहूसाबी को लगता है वह इन्सान नहीं एक धक्का गाड़ी है, सुबह से ही ठेलमठेल शुरू हो जाती है।"[1] सात घण्डे स्कूल में और दस घण्टे घर में आवाज़ उठाते-उठाते ऊषा की आवाज़ काफी भर्रा गयी है लेकिन पति इसके बारे में अनभिज्ञ जैसा बैठा है। "कभी उसके मुँह से हाय निकल जाता है तब पति अपनी अध्ययनशीलता में से आधा सिर उठाकर आश्चर्य से पूछता है - 'क्या हुआ, किस बात से थक गई'।"[2] यह सुनकर ऊषा का मन और भी तटस्थ बन जाता है। घरेलू कामकाज और नौकरी के चक्कर को झेलकर ऊषा को लगता है उसकी समस्त इंद्रियों की संवेदनशीलता खो गयी है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 345
2. वही - पृ. 346

गर्म चीज़ को छूने पर या ठंडी चीज़ को छूने पर उसे कोई फर्क नहीं लगता है और जीभ को मीठा हो या खट्टा हो सब एक जैसा लगता है। दोहरे कार्यभार से उसे कभी खुद अपने को एक बैल लगता है। "जबकि मनहूसाबी स्कूल से लौटने के समय तक एकदम घामड़ हो जाती है, पसीने से उसकी नाक चमकने लगती है, बिन्दी बह जाती है, धोती मुचड़ जाती है और ब्लाउज़ पर पसीने के छापे बन जाते हैं। हर मौसम में, गर्मी जाड़ा चौमासा, वह घर के सामान लदी फँदी, बैल की तरह हॉफती वापस लौटती है।"[1] घर और स्कूल के उत्तरदायित्वों, कामों में, आकुलताओं में पडकर ऊषा के जीवन का रस सूखती जा रहा है।

'मनहूसाबी' की तरह 'काली साड़ी' की कल्पना भी दोहरी कार्यभार से पीडित है। कहानी की ये पंक्तियाँ यह प्रमाणित करती है - "दो वक्त की दाल रोटी बनाने के बाद कल्पना तो इतनी थक जाती है कि हाड़-हाड़ दुखता है। उस पर कॉपियों, रजिस्टर वर्क, फीस वसूली जैसे अतिरिक्त सिरदर्द।"[2] नौकरी पेशा नारी को आराम करने के लिए कहीं भी समय नहीं मिलता है। इसके साथ ही साथ वे अपने परिवार और बच्चों को लेकर सदा चिंतित है। 'जी' नामक कहानी में नायिका मिलन को अपनी नौकरी में पूर्ण रूप से ध्यान नहीं दे पाती है। क्योंकि नौकरी के लिए उसे अपनी नन्हीं बच्ची को रेस्टेरेंट के एक कमरे में छोडना पडता है। अनजाने ही उसका मन और आँखें उस कमरे की दरवाज़े तक जाती रहती है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 346
2. ममता कालिया - प्रतिदिन - पृ. 97

लेकिन नौकरी के नष्ट हो जाने के भय के कारण उसे बच्ची को अकेले छोड़ना पड़ी। आर्थिक विषमताएँ उसे अपनी आकुलताओं को दबाकर नौकरी कराती हैं।

4.4.4.4 नौकरीपेशा नारी के प्रति समाज का नज़रिया

नौकरीपेशा नारी पर समाज हमेशा शंकाभरी दृष्टि डालता है। कभी-कभी समाज ऐसा वेश खुद लेता है कि नौकरी के लिए बाहर जानेवाली लड़कियों की चरित्र-शुचिता अपना उत्तरदायित्व है। समाज सहानुभूति और सहायता के बजाय उसपर ईर्ष्या की दृष्टि डालती है। वह उससे अनुचित लाभ उठाने का अवसर देखता रहता है। दरअसल नौकरी करनेवाली नारियाँ समाज में रहकर भी अकेली हैं। ममताजी 'शक' नामक कहानी के द्वारा समाज की इस शंकाभरी दृष्टि को व्यक्त करती है। इस कहानी की मिसेज़ पाण्डे रेडियो स्टेशन में अनाउन्सर का काम करती है। शुरू में बस्तीवाले मिसेज़ पाण्डे की नौकरी के बारे में अनभिज्ञ थे। इसलिए उसका आना-जाना की हिसाब लेना और अंदाज़ कर कहानियाँ बनाना शुरू किया। मिसेज़ पाण्डे नौकरी पर जाने से बस्ती में जो परिवर्तन हुए इसको ममताजी ने इस प्रकार चित्रित किया है - "मिसेज़ पाण्डे के आ जाने से कुछेक परिवर्तन सामने आये................ बस्ती में कई जोड़े कान, कार की आवाज़ का इंतज़ार करते रहते। आवाज़ के साथ ही कुछ आँखें खिड़की की ओर उठ जाती, फिर निश्चितन्तापूर्वक नींद उन्हें घेर लेती। यह उनकी दिनचर्या का ही हिस्सा बनता जा रहा था। उनकी पत्नियाँ दिन में मुँह बिचका कहतीं, हूँह, जाने कहाँ से लौटती है, इतनी रात कौन-सा दफ्तर छूटता है।"[1] जब उसकी नौकरी के

1. ममता कालिया - काले दी हट्टी - पृ. 62

बारे में बस्तिवालों को जानकारी मिली तब से उन लोगों ने रेडियो सुनना शुरू किया। वे रेडियो से समाचार सुनने से ज़्यादा ध्यान से एनाउन्समेट सुनते हैं क्योंकि वे लोग परखना चाहते हैं कि आखिरी एनाउन्समेंट के बाद मिसेज़ पाण्डे आने में कितनी देर करती है। स्त्री के जीवन पर समाज का अनावश्यक दखलनामा का दस्तावेज़ है यह कहानी।

'पच्चीस साल की लडकी' नामक कहानी की नायिका अविवाहिता है और स्टैनो का काम करती है। उसे बोस की पत्नी शंकाभरी दृष्टि से देखती है और जल्दी विवाह करने का आदेश भी देती है। अविवाहित नौकरी पेशा नारी पर समाज का दृष्टिकोण मिसेज़ शर्मा के इस वक्तव्य से व्यक्त होता है - "पर लड़कियों को तो सोचना चाहिए। सामनेवाले मकान में रहती है एक। दफ्तर से रोज़ रात ग्यारह-बारह बजे लौटती है। बताओ आधी रात में कौन कराता है नाइट ड्यूटी। जिसे देखो वही चालू हो गयी।"[1] मिसेज़ शर्मा नायिका की ओर गंदी दृष्टि से देखती है। ममताजी ने यहाँ मिसेज़ शर्मा को समाज के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया है। 'चिरकुमारी' की दिशा की स्थिति भी ऐसी ही है। अविवाहित दिशा घर में अकेली रहती है। दिशा अपना सहकर्मी आलम से अच्छी दोस्ती करती है। आलम कभी-कभी उसके घर में आता है। इससे आसपास के लोगों को उन पर आरोप करने का बहाना मिल गया है। "आसपास के क्वार्टरों में थोड़ी चुहल हुई। दिशा के घर के गेट पर हरा स्कूटर देखते ही लोग कहते हैं 'लगता है दिशा मैडम को पाजी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 331

लड़का मिल गया है।"[1] लेकिन दिशा और आलम को ये सब चिंता का विषय भी नहीं है। दिशा आत्मनिर्भर स्त्री है जो अपनी मर्जी और रुचियों के अनुसार जीती है, दूसरों के नहीं। ममताजी ने दिशा को एक प्रेरणास्रोत के रूप में पाठकों के सामने विशेष कर स्त्री पाठकों के सामने प्रस्तुत किया है।

4.4.4.5 नौकरीपेशा नारी के घरवालों का नज़रिया

नौकरीपेशा नारी को कई प्रकार की बदनामियों का सामना करना पडता है। इनमें सबसे दुःखद बात यह है कि वह जिन घरवालों के लिए अथक श्रम करती है उन परिवालों ही उस पर संशय की दृष्टि डालती है। चाहे स्त्री कितने ही बडे पद पर हो, घरवालों ही उसे समय की सीमा के अंदर बंधित रखती है। घर में पहूँचाने में थोड़ा विलंब होने पर उसे कई प्रश्नों का उत्तर देना पडती है। समाज के साथ घरवालों की शंकाभरी दृष्टि से उसे हमेशा गुज़रना पडती है। 'एक पति की मौत' की नायिका सिया अध्यापिका है और उसे छोडकर उसका पति दूसरी स्त्री के साथ चला गया। सिया सास के साथ जी रही है। सिया को हमेशा सास की शंकाभरी दृष्टि की शिकार होनी पडती है। बहु की शुचिता की जाँच-पड़ताल के तहत सास कभी सिया के पर्स, कभी किताबें और कभी उसके मैले पेटीकोट की जाँच करती है। ये सब देखकर सिया चीखकर कहती है "हमारी चौकीदारी करने की कोई ज़रूरत नहीं है, समझीं। अरे जब हमारा आदमी हमें छोड़ गया तो हम जैसे चाहे रहें, जहाँ मर्जी जायें-आयें, चाहे गली के काले कुत्ते के साथ सोयें, तुमको क्या?"

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 225
2. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 100

'बीमारी' नामक कहानी में नायिका नौकरी की सुविधा के लिए अकेली रहती है। एक बार उसे बुखार होने पर उसके उपचार के लिए भाई पत्नी के साथ आया। डॉक्टर की रिपार्ट पढ़ने पर भाई और पत्नी ने उसके चरित्र पर शंका प्रकट किया क्योंकि बुखार के साथ उसे इन्फेक्शन भी है। भाई और पत्नी की धारणा है कि अविवाहित लड़कियों को इंफेक्शन होना उसका दुश्चरित की निशानी है। नौकरी की विडंबनाओं के साथ घरवालों के ऐसे व्यवहारों के होने पर स्त्री मन ही मन टूट जाती है। विवाहित नौकरीपेशा नारियों की स्थिति और भी कष्टदायक है। क्योंकि पति और ससुरालवालों उसे हमेशा शंका की दृष्टि से देखते हैं। पत्नी को नौकरी में प्रेमोशन मिलता है तो पति इसका श्रेय पत्नी की योग्यता न मानकर इतर कारणों को ढूँढता है। शंका की इस लाइलाज बीमारी हर वर्ग के पुरुषों में है।

4.4.4.6 नौकरीपेशा नारी और सहकर्मी लोग

नौकरी के क्षेत्र में स्त्री को कई प्रकार की विड़ंबनाओं का सामना करना पडता है। कभी-कभी महिला सहकर्मी भी उस पर क्रूर व्यवहार करती है। 'वसंत सिर्फ एक तारीख' में चंदा नौकरी की तलाश में अपनी परिचित प्राचार्या के पास गयी। वहाँ चंदा ने देखा कि एक अध्यापिका प्रसव के लिए छुट्टी माँगने पर प्राचार्या उसे नौकरी से हटाने की धमकी देती है। प्राचार्या इस प्रकार कहती है - "इस्तीफा दे दो, तुम्हारी भी मुश्किल दूर हो जाएगी, हमारी भी, ठीक है न। ....आराम से घर बैठकर बच्चे पैदा करो। अरे काम करने के लिए डैडिकेशन चाहिए।"[1] यह

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 214

सुनकर चंदा चकित हो गयी। उसकी समझ में नहीं आया कि स्त्री ही स्त्री के साथ क्यों ऐसे व्यवहार करती है। अपनी सहकर्मी स्त्री पर मानवीयता की दृष्टि रखने के लिए वे तैयार नहीं है।

'शॉल' नामक कहानी में स्कूल के प्रिंसिपल और अध्यापिकाओं ने पैसा चंदा कर कोई मानवतावादी कार्य करने की निर्णय लिया है। उन्होंने पैसा चंदा देकर स्कूल के चपरासिन ननकी को एक शॉल खरीद दिया और तालियाँ बजाकर अपना मानवतावादी काम संपन्न किया। लेकिन इसके बाद स्कूल की अध्यापिकाएँ ननकी को छोटी-छोटी बातों पर भी डॉट देना शुरू किया और याद कराती है कि शॉल तो हमारा पैसा है, हमारी उदारता है। एक अध्यापिका ने उससे कहा है तुम्हें तो नया शॉल पहनकर बडी अकड़ हो गयी है, सफाई का काम मेरा है या तुम्हारा? और दूसरे ने कहा है कि ए ननकी तेरे शॉल में हमने भी चंदा दिया है। ऐसी बातें ज़ारी होने पर मन ही मन चोट लगकर ननकी प्रिंसिपल बडी बहनजी को शॉल वापस देती है। "उसने पुराने अखबार में लिपटा अपना नया शॉल बड़ी बहनजी के मेज़ पर रख दिया और हाथ जोडकर बोली, 'बहनजी, यह शॉल आप लेत जाएं, हमका न चाही। ....आपके हात जोड़ित है, हम शॉल न लेव, सुबह से मार फबती सुन सुन हमार छाती फट गयी।"[1] ननकी वृद्धा है फिर भी सहकर्मी महिलाएँ भी उनके साथ मानवताविहीन व्यवहार करती हैं।

नौकरी के क्षेत्र में स्त्री के प्रति आज भी दोहरा मापदण्ड है। पुरुष वर्चस्ववादी समाज स्त्री को अपने सहकर्मी के रूप में या उच्च अधिकारी के रूप

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 114-115

में होना नहीं चाहता है। 'प्रिया पाक्षिक' कहानी के द्वारा ममताजी पुरुष की इस मानसिकता को दर्शाती हैं। 'प्रिया' महिलोपयोगी पत्रिका है। आश्चर्य की बात यह है कि लाखों सर्कुलेशन होनेवाली इस पत्रिका में एक भी महिला कर्मी नहीं है। महिला कर्मी की नियुक्ति करना संपादक और अन्य स्टाफ नहीं चाहते हैं। "एक महिला की नियुक्ति करना ज़रूरी था और यह बात न मालिक को पसंद थी, न संपादक को। महिला कर्मी को वे एक मुसीबत मानते थे। इस बात पर मालिक और संपादक दोनों सहमत थे कि महिला कर्मी कम काम करती हैं, सुविधाएँ ज़्यादा माँगती है, महिला कर्मी अविवाहित हुई तो प्रेम में पड़कर दफ्तर का अनुशासन तोड़ेगी और विवाहित हुई तो गर्भधान, प्रसव या गर्भपात के कारण कार्यक्षमता में बाधा पैदा करेगी। मालिक और संपादक को पुरुष वर्कर इसलिए पसंद थे, क्योंकि ये सारे हादसे उनके साथ नहीं होते थे, ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें फ्लू होता था, जो दो-तीन दिन में निपट जाता। यह बात अजीब लेकिन सच थी कि इतनी बड़ी महिला पत्रिका में किसी भी स्तर पर एक भी महिला कर्मी कार्यरत नहीं थीं।"[1] ध्यान देने की बात यह है कि यदि महिलोपयोगी पत्रिका की संस्था की स्थिति यह है तो अन्य संस्थाओं की स्थिति क्या होगा। पुरुष का अहम् स्त्री को समान स्थान देने के लिए अब भी तैयार नहीं है। वह स्त्री को कुर्सी में कठपुतली जैसे बिठाकर उसके अधिकारों को छीनना चाहता है।

इस प्रकार घरवालों से, पति से, समाज से और सहकर्मियों से स्त्री को विपरीत स्थितियों का सामना करना पडता है। यदि स्त्री ने अपने पद में या नौकरी

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 66

में ऊँचा स्थान प्राप्त किया तो उसे इन सभी प्रतिकूल परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है।

4.4.4.7 अकेलापन

व्यक्ति का सबसे बडा अभिशाप है अकेलापन। अपनी ज़िन्दगी और कमाई परिवारवालों के जीवन को हराभरा देने के लिए नष्ट करने के बाद कभी-कभी नौकरीपेशा नारी को ऐसा महसूस करना पडता है कि वह अकेली है। कभी घरवाले जानबूझकर, कभी अनजाने उसे इस त्रासदी में थकेलते हैं। 'सूनी' नामक कहानी में इसका भीषण रूप देख सकते हैं। नायिका सुनंदा अविवाहिता है और एक महिला कॉलेज की प्राध्यापिका भी है। सुनन्दा को ज़्यादातर लोग सूनी कहते हैं। धीरे-धीरे वह नाम उसका व्यक्तित्व और जीवन में भी सार्थक हो गया। सुनन्दा विवाहित होकर पारिवारिक जीवन बिताना चाहती थी लेकिन माँ ने कभी भी इसको सहमति नहीं दी। सुनन्दा का प्यार, ध्यान आदि नष्ट हो जाने के भय के कारण माँ ने उसके विवाह में बाधाएँ डाली और सुरक्षा के नाम कहकर उन्होंने बेटी के अविवाहित मित्रों को रोका। "माँ ने हर अविवाहित मित्र के साथ सलूक किया। उन्होंने अपनी सुरक्षा के फिक्र में सूनी के जीवन को अकेला कर डाला।"[1] माँ की मृत्यु के बाद सुनन्दा पूर्ण रूप से अकेली बन गयी। उसे अपने जीवन के प्रति भी नफरत लगती है। "अच्छे वेतन के बावजूद सूनी एक सन्यासी सा जीवन बिता रही थी। उसकी बार्डरोब में एक भी चटख रंग की साड़ी नहीं थीं। उसे पसंद ही आते

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 55

थे मटमैले, दबे, रंग-काले, स्लेटी, भूरे, ऊदे, सफेद"[1] अकेलापन के कारण सुनन्दा के जीवन में और व्यवहार में एक प्रकार की उदासीनता छा गयी। 'मुहब्बत का मौसम' की उपमा की स्थिति भी इससे भिन्न नहीं है। उपमा अध्यापिका है और अविवाहिता भी है। उसने अपने जीवन का हरा-भरा समय भाई और बहनों के लिए बिताया। वे सब अब अपनी-अपनी ज़िन्दगी में व्यस्त है। उपमा अपने जीवन का एकाकीपन मिटाने के लिए नैनिताल में पहूँचा। लेकिन वह नैनिताल और पहाड़ का आस्वादन नहीं कर पाती क्योंकि वहाँ के हरएक दृश्य उसे याद दिलाता है वह जीवन में अकेली है। उपमा की पीठ भर घायल है क्योंकि उसकी पीठ पर खुजली चलती है तो वह पेंसिल, फूटरुलर से सुजा लेती है। इससे बननेवाली चोट पर मरहम लगाने के लिए भी उसके पास कोई नहीं है। अकेलापन की भीषणता और तटस्थता इन कहानियों के द्वारा ममताजी व्यक्त करती हैं। दूसरों के लिए नष्ट कराते अपने जीवन के मौसम के बारे में सोचकर अफ़सोस करनेवाले नायिकाएँ हैं सुनन्दा और उपमा।

'ज़िन्दगी सात घंटे बाद की' नामक कहानी की आत्मीया रेडियो स्टेशन में प्रोग्राम एक्ज़ीक्यूटिव है। आत्मीया अपनी नौकरी से पूर्ण रूप से आनन्द उठाती है। उसे लगता है वह सिर्फ सात घंटे जीती है, दस से पाँच तक। इसलिए स्टेशन से घर पहूँचना वह पसंद नहीं करती है। शाम पाँच बजे होने पर उसमें एक प्रकार के डिप्रेशन का अनुभव होता है। इसलिए वह छुट्टी के दिनों से नफ़रत करती है।

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 48

छुट्टी के दिनों में वह सेकटन्स को गिनते-गिनते अगला कार्यदिवस की प्रतीक्षा कर रही है। फ्लॉट में रहते वक्त वह कहीं से आवाज़ सुनने या लोगों को देखने, बातें करने का भी इच्छा करती है। इससे वह अपना ऊब मिटाने की कोशिश करती है। "छुट्टी के दिन अच्छी लगती है यह आवाज़। ऐसा लगता है जैसे बच्चे दौड़-दौड़ कर चाभीवाली मोटर चला रहे हैं। सन्नाटा में हर ध्वनि में एक व्यक्ति पैदा हो जाता है। संभवतः इसलिए कि हम उसे अतिरिक्त महत्व देते हैं या इसलिए कि वह एक नहीं को 'हाँ' से भर देता है।"[1] ये पंक्तियाँ आत्मीया अपनी नौकरी घंटों को क्यों इतनी प्रधानता देती है, इसके व्यक्त करती हैं। 'मंदिरा' कहानी की नायिका मंदिरा प्राध्यापिका है और उसका इकलौता लड़का हॉस्टल में है। इसलिए उसे घर में जाना पसंद नहीं है। पति से भी उसे नफरत लगती है। मंदिरा अपना समय कॉलज में बिताना चाहती है। घर उसे एक गढ़ जैसा लगता है। "देखा जाय तो मंदिरा केवल उतनी देर युनिवर्सिटी में रहती। तीन बजे क्लासों से छुट्टी पाकर वह रिक्शे में घर की ओर चल देती। कुछ देर तो मन उत्फुल्ल रहता, छात्र-छात्राओं की ताजगी भरी याद दिमाग में रहती, लेकिन जैसे ही उसे अपने घर के मोड़ पर बना वह सूखा कुण्ड नज़र आता, दिल डूब जाता। रोज़ उसकी इच्छा होती रिक्शा वापस युनिवर्सिटी ले जाये। पर रोज़ रिक्शा उसे अपने दरवाज़े पर खड़ा मिलता। सुस्त कदमों में वह अपने कमरे में घुस जाती।"[2] ममताजी ने इन कहानियों के द्वारा अपने-आप अकेलापन और ऊब की शिकार होती नौकरीपेशा नारियों को चित्रित किया है।

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 63
2. वही - पृ. 287

इनसे ठीक विपरीत 'चिरकुमारी' में अकेलापन का आस्वादन करने वाली स्त्री का चित्रण है। दिशा छोटी-छोटी बातों में आनन्द उठाने की कोशिश करती है और वह अपने आप में तृप्त है। लोग उससे पूछते हैं "कैसे रह लेती हो अकेला दिन नहीं घबराता तुम्हारा?"[1] यह सुनकर वह हैरान हो जाती है क्योंकि उसे कभी भी अकेलापन महसूस नहीं हुआ है। उसके घर में दो बिल्लियाँ हैं और हर वक्त आंगन में ढेर सारे पक्षी भी हैं। कॉलेज से वापस आने पर या छुट्टियों में वह इनके साथ समय बिताती है। यह उसकी समझ में नहीं आयी है कि इन जानवरों और पक्षियों के बीच अकेलापन कैसे महसूस होगा? कॉलेज में वह ऐसी एक अध्यापिका नहीं है सिर्फ पढ़ाई के बारे में सोचती रहती हो। वह छात्रों के बारे में और उनकी रुचियों के बारे में जानना चाहती है। अगर कोई छात्र किसी समस्या लेकर आयी तो उसे सुलझाने में वह जी जान लगती है। लड़कियों पर होते शोषणों को देखकर वह उबल पडती है और सशक्त रूप से उसका विरोध भी करती है। ये सब देखकर लोग उसे 'एक्टिविस्ट' कहकर हँसी उठाती है तो वह भडक उठती है - "क्या एक्टिविस्ट हुए बिना आए अधिकारों की लड़ाई नहीं लड़ सकते? यह तो सच्चाई से बचने का बहाना है।"[2] दिशा की सहकर्मियों की धारणा यह है कि लड़कियों और स्त्रियों की समस्यायें अधिक है, इसलिए इनको सुलझाना कठिन कार्य है। इसलिए वे इन विषय में भागदारी करना नहीं चाहते है। यह सुनकर दिशा उन्हें आदेश देकर कहती है - "इसका मतलब यह नहीं कि हम शुरुआत ही न करें।"[3] इस प्रकार

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - मुखौटा - पृ. 223
2. वही - पृ. 224
3. वही

दूसरों की समस्याओं को अपना ही समस्या मानकर जीने के लिए और उन समस्याओं को सुलझाने का महत्वपूर्ण कार्य दिशा ने किया है। नौकरी उसे वेतन पाने का मार्ग मात्र नहीं है। इसलिए उसे जीवन में अकेलापन और ऊब भी नहीं लगते हैं। उसे जीवन में करने के लिए कई बातें हैं। ममताजी ने दिशा को एक प्रेरणास्रोत के रूप में हमारे सामने प्रस्तुत किया है। हमारी मानसिकता के द्वारा जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों को हम अपना अनुकूल बना सकते हैं। इसका सशक्त उदाहरण है दिशा।

4.5 निष्कर्ष

ममता कालिया अपनी कहानियों में स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण कर स्त्री अस्मिता को जीवंतता प्रदान करने की कोशिश करती हैं। ममता कालिया यह बताना चाहती है कि स्त्री अस्मिता या उसके अधिकार सिर्फ स्त्री ही नहीं, संपूर्ण मानवता का विषय है। क्योंकि समाज में मानवता का पक्ष संपूर्ण मानव जाति का प्रतिनिधित्व करता है न केवल स्त्री या न केवल पुरुष का। इसके लिए समाज की पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता में बदलाव लाना चाहिए। स्त्री को पुरुष के समान स्थान और अधिकार देकर उसकी अस्मिता कायम रखना चाहिए। ममता कालिया अपनी कहानियों के द्वारा यह संदेश देती है कि जब तक हमारा समाज स्त्री के प्रति सहज नहीं होगा और उसके अस्तित्व को नहीं समझेगा, तब तक स्त्री की अस्मिता का पक्ष अधूरा ही रहेगा।

❖❖❖

पाँचवाँ अध्याय

ममता कालिया की कहानियों की शिल्पगत विशेषताएँ

पाँचवाँ अध्याय
ममता कालिया की कहानियों की शिल्पगत विशेषताएँ

5.0 प्रस्तावना

हिन्दी की स्वातंत्र्योत्तर महिला रचनाकारों में ममता कालिया का अपना अलग स्थान है। उनकी कहानियाँ हमारे समय और समाज के यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। उनकी कहानियों में मुख्यतः आरंभ से अन्त तक नारी ही छायी रहती है। सभ्य, सुशिक्षित, नौकरीपेशा विवाहित स्त्री होने के कारण उन्होंने समाज की विभिन्न वर्ग की स्त्रियों की समस्याओं पर प्रकाश डाला है। समाज के सभी तबके के लोगों की समस्याओं को आलोकित करके लोगों को उन समस्याओं के प्रति सचेत करने की कोशिश की है।

ममता की तमाम कहानियाँ कहानी के स्वरूप, परिभाषा और तत्व की दृष्टि से सफल कहानियाँ हैं। उनकी कहानियों के कथानक छोटे हैं। उन्होंने लंबी कहानियाँ नहीं लिखी है। कहानियों की विषयवस्तु प्रायः घरेलू है। लेकिन अन्य विषयों पर भी उन्होंने लिखा है। उन्होंने पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, नारी विषयक समस्याओं पर खूब लिखा है। कहानियों की कथावस्तु संक्षिप्त होने के कारण पात्रों की संख्या बहुत ही कम है। पात्रों के मनोविज्ञान को भी उन्होंने प्रस्तुत किया है।

किसी भी साहित्यिक रचना की सबसे महत्वपूर्ण बात रचनाकार का अनुभव या संवेदना ही है। इस संवेदना या अनुभव की अभिव्यक्ति के लिए रचनाकार शिल्प का सहारा लेता है। अर्थात् एक रचना को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का माध्यम है शिल्प। हर रचनाकार को अपने विचारों की अभिव्यक्ति के लिए अपना एक तरीका होती है। उस तरीके को उस रचनाकार का शिल्प कहते हैं। इस अध्याय में ममता कालिया की कहानियों की शिल्पगत विशेषताओं पर विचार किया जाएगा।

5.1 शिल्प

अंग्रेज़ी के 'टेकनिक' शब्द के पर्यायवाची शब्द के रूप में हम 'शिल्प' शब्द का प्रयोग करते हैं। शिल्प शब्द का अर्थ है किसी चीज़ को बनाने या रचने का ढ़ंग या तरीका। शिल्प अभिव्यक्ति का माध्यम है। "किसी वस्तु की रचना की जो-जो प्रक्रियाएँ होती हैं, उनके समुच्च को शिल्प-विधि के नाम से पुकारा जाता है। सरल भाषा में यदि कहा जाए तो शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करना या दस्तक कारीगरी से है।"[1] अर्थात् शिल्प शब्द का संबन्ध कोई कलात्मक कार्य, हस्तकला, ललित कला, काव्य, संगीत, अभिनय, नृत्य जैसे किसी भी कला के कौशल, रूप और आकृति से जुडा हुआ है। इसलिए कहते हैं कि शिल्प तो अभिव्यक्ति का कलात्मक ढंग है। शरद जोशी के अनुसार "शिल्प तो एक लिविंग प्रोसस है। यदि लिविंग प्रोसस - वह विकासशील प्रक्रिया - अपने आप में कहीं रुक जाए तो शिल्प मुद्रा हो जाए।"[2]

---

1. अशोक कुमार गुप्ता - जयशंकर प्रसाद की कहानियाँ का शिल्प विधान, भूमिका से
2. बृहद हिंदी कोश - पृ. 1239

साहित्य का शिल्प उस साहित्यिक कृति रचने का तरीका या ढ़ंग से संबन्धित है। शिल्प के अभाव में साहित्य की प्रौढ़ता और सजीवता नष्ट हो जाती है। शिल्प साहित्यिक रचना का कलापक्ष है। इसके माध्यम से रचनाकार अपना विचार, अनुभव, अनुभूति को व्यवस्थित रूप से पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। एक रचना के आंतरिक स्वरूप को अर्थात् लेखक की अनुभूति और भाव को अभिव्यक्त करने का बाह्य रूप है शिल्प। शिल्प के माध्यम से रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति को सशक्त और सुस्पष्ट बनाता है। हम जानते हैं कि पहले साहित्यिक रचनाओं का शिल्प एक निश्चित सीमा में बंधित था। लेकिन वर्तमान दौर में रचनाकार इस सीमा को लाँघकर अपना सृजन करता है। इसलिए ही समकालीन साहित्य के शिल्प विधान को किसी एक निश्चित परिभाषा या तत्वों में बाँधना असंभव है।

5.2 ममता कालिया की कहानियों का शिल्प

ममता कालिया ने साहित्य के लगभग सभी विधाओं में सफल भूमिका अदा की है। फिर भी कहानी के क्षेत्र में ही उन्हें विशेष ख्याति मिली। उन्होंने 200 से अधिक कहानियाँ लिखीं। उन्होंने अपने अनुभव और अनुभूतियों को अपने निजी शिल्प में बाँधकर प्रस्तुत किया है। इसलिए उनकी कहानियों के शिल्प में कृत्रिमता का अंश मिल नहीं सकता है। उनकी कहानियों का शिल्प कहानियों के कथन में घुला-मिला हुआ है। उनकी कहानियों की समीक्षा करते हुए डॉ. पुष्पपाल सिंह ने इस प्रकार कहा है “इसी समृद्ध अभिव्यक्ति, गहन अनुभव, वैविध्य और कहानी कहने की अपनी निजी सी सरल-सहज शैली के होते हुए भी इन कहानियों

में एक सपाटता है। लगता है लेखिका अनुभव को रचनात्मकता में पढ़ने और पढ़ाने से पहली प्रस्तुत करने की किसी जल्दबाज़ी में है। यदि ममता कालिया इस अभाव से बच सकें तो कुछ रचनाएँ दे सकती हैं।"[1] ममताजी ने वर्तमानकालीन जीवन परिस्थिति को, संघर्ष को, प्रतिरोध को और जटिलता को पाठकों के मन को स्पर्श करने लायक ढंग से प्रस्तुत किया है। इसके लिए उन्होंने सहज भाषा, विभिन्न शैलियों और प्रतीकों का इस्तेमाल किया है। एक रचना का मूल्यांकन करते समय उसमें 'क्या निहित है' इस पर चर्चा तो सीमित नहीं कर सकता, बल्कि उसमें निहित वस्तु को 'कैसे कहा है' यह भी महत्वपूर्ण है। इसलिए आज के आलोचक एक रचना को परखते समय उसकी रचना शैलियाँ, भाषिक उपकरण जैसे प्रतीक, बिंब आदि की भी समीक्षा करता है। तब एक रचनाकार की सफलता व्यक्त होती है। आगे ममता कालिया की कहानियों के शिल्प पर विचार किया जाएगा।

5.2.1 कथ्य

एक रचना के सबसे महत्वपूर्ण घटक उसका कथ्य ही है। लेकिन उस कथ्य की प्रस्तुतीकरण में शिल्प की सहायता अवश्य है। इसका मतलब यह नहीं है कि शिल्प की अपेक्षा कथ्य को ज़्यादा महत्व है। सच्चाई यह है कि शिल्प पर उपेक्षा रखने पर रचना की सफलता में भी हानि पहूँचती है। अर्थात् कहानी के कथ्य और शिल्प दोनों एक दूसरे पर निर्भर है। कहानी की सफलता उसकी कथावस्तु पर और कथावस्तु की सफलता उसके शिल्प पर निर्भर है। कथ्य और

1. डॉ. प्रेमीला के.पी. - औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार - पृ. 72

शिल्प की सही संयोजना पर एक अच्छी रचना का सृजन होती है। डॉ. पुष्पपाल सिंह इसका समर्थन करते हुए कहा "वस्तुतः शिल्प कथ्य की अंतः प्रवृत्ति का सहज प्रतिफलन है।"[1] संक्षिप्तता, मौलिकता, रोचकता, क्रमबद्धता, विश्वसनीयता, उत्सुकता, कौतूहलता, प्रभावात्मकता आदि कथानक के प्रस्तुतीकरण को विशेष महत्व देते हैं। ममताजी की कहानियों के कथानक भावुकता से ज़्यादा यथार्थता पर आधारित हैं। वर्तमान दौर की समस्याओं और उसके पीछे के कारणों को पाठकों के सम्मुख खू-ब-हू ढ़ंग से प्रस्तुत करना उन्होंने अपना उत्तरदायित्व समझा है। इसलिए उनकी कहानियों में ऐतिहासिक, काल्पनिक और रोमांटिक कथानक दृष्टिगत नहीं होता। उनकी कहानियों में मुख्य रूप से समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक परिवेश एवं देश की राजनीतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डाला है। इन परिस्थितियों से आम जनता का संघर्ष, तनाव, बेबसी आदि ममता कालिया की कहानियों में व्यक्त हैं। ममता कालिया अपने समय को गहराई से समझनेवाली कहानीकार हैं। समाज में व्याप्त बुराईयों, भ्रष्टाचारों, अन्यायों के प्रति ममताजी अपनी कहानियों में कभी आक्रोश करती हैं और कभी व्यंग्य का अंगार भी बरसाती हैं।

आज का समय भूमण्डलीकरण से उत्पन्न परिस्थितियों का समय है। भूमण्डलीकरण की देन है उपभोग संस्कृति। हमारा समाज पूर्ण रूप से उपभोक्तावादी संस्कृति के कब्जे में फँस गया है। उपभोक्ता संस्कृति ने ऐसी एक मानसिकता को पनपने दिया है जो अर्थ पर केन्द्रित है। इसने मानव के मन को मुनाफा, लाभ और

---

1. डॉ. पुष्पपाल सिंह - समकालीन हिन्दी : युगबोध के संदर्भ - पृ. 290

स्वार्थ के हिसाब से भरा दिया है। इसका परिणाम हमारे समाज के हर पहलू में देख सकते हैं। समाज की सबसे छोटी इकाई परिवार में भी यह दृष्टिगत है। ममताजी ने अपनी कहानियों में धन के अनुसार पारिवारिक संबन्धों में आए हुए बदलाव पर गहराई से विचार किया है। 'बीमारी' नामक कहानी में धन नष्ट होने के भय के कारण बीमारग्रस्त बहन का उत्तरदायित्व लेने के लिए इनकार करनेवाले भाई और भाभी को देख सकते हैं। अस्पताल से आयी हुई बहन के हाथ में अभी तक खर्च किये रुपये का बिल देकर भाई ने रुपये वापस मांगे। "मैंने भाई से पूछा, 'तुम्हारे अपने पैसे तो नहीं लगे किसी चीज़ में।' भाई ने झोंपते हुए अपनी जेब से पर्स निकाला और कई कागज़ उल्ट-पल्ट कर एक कागज़ मुझे थमा दिया। उसमें उन पैसों का हिसाब था, जो इधर-उधर मेरे सिलसिले में आने-जाने में खर्च हुए थे और जो फल मेरे लिए लाए गए थे।"[1] धन के अनुसार संबन्धों की गहराई में बदलाव आता रहता है। नौकरी और आमदनी न होनेवाले बेटे पर भेदभाव रखनेवाले माँ-बाप की कहानी है 'उसका यौवन'। घर में कभी-कभी रामू की आवाज़ नष्ट हो जाती है। नौकरी न होने के कारण बाकी घरवाले रामू को नफरत की दृष्टि से देखते हैं। कहानी की पंक्तियाँ हैं - "बम्बई से भैया सपरिवार आए हुए हैं। जितने दिन भैया हैं, उतने दिन घर में खाना अच्छा ही मिलेगा। अम्मा रोज़ सुबह लोकनाथ जाकर खुद चुनकर तरकारी लाती है, भैया की पसंद की।"[2] लेकिन अम्मा रामू के साथ इसका ठीक उल्टा व्यवहार करती है क्योंकि उसे आमदनी नहीं है। रामू के

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 47
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 309

साथ घरवालों की मानसिकता ममताजी इन शब्दों में व्यक्ति करती है "'रामू चाय पीनी है तो पी ले।' अम्मा की आवाज़ ने सब गुड़ गोबर कर दिया। घर रह गये इरादे। उसे बेतरह चिढ़ आयी। वह जागकर भी आँखें बन्द किये पडा रहा। सोते से उठाकर चाय पिलाने का क्या तुक। हमेशा ऐसे ही तंग करती है अम्मा। बात कहने का सलीका तक नहीं है इस घर के लोगों को। अम्मा जब बोलोगी तो ऐसे ही 'खाना है तो खा ले', 'नहाना है तो नहा ले"[2] आमदनी होनेवाले या न होनेवाले बेटे के साथ माँ के व्यवहार में होनेवाले बदलाव को चित्रित कर ममताजी यह व्यक्त करना चाहती है कि आज प्यार, इज्जत, प्रतिष्ठा सब अर्थ के आधार पर है और वहाँ संबन्ध और रिश्ते का कोई स्थान नहीं।

'पहली' नामक कहानी के द्वारा ममताजी ने धन प्राप्ति के अनुसार घरवालों की मानसिकता में आनेवाले परिवर्तनों को गहराई से प्रस्तुत किया है। वेतन-प्राप्ति के दिन में घरवालों आपस में बातें करते हैं, हँसते हैं। लेकिन महीने के अंत तक आने पर रुपये कम होने के साथ ही साथ घर की खुशी भी खतम हो जाती है। घर के अन्य सदस्यों के ऐसे व्यवहारों को घर के छोटे बच्चे की समझ में नहीं आती है। वह माँ से पूछता है - "कितनी अच्छी होती है पहली तारीख अम्मा, अच्छा अगर पहली तारीख न आये तो?"[3] बच्चा डरता है कि यदि पहली तारीख में वेतन न मिलने तो घर की खुशी भी नष्ट हो जाएगी। अर्थ की धुरी पर चलनेवाले मानव-

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 309
2. वही
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 81

जीवन को ममताजी ने अपनी कहानियों का विषय बनाया है। वे अपनी 'उपलब्धि', 'काली साड़ी', 'प्यार के बाद', 'दर्पण' आदि कहानियों में भी अर्थ के अभाव और अर्थ की प्रधानता के कारण पारिवारिक संबन्धों में आये बदलावों पर प्रकाश डालती हैं। इसके साथ ममताजी की कहानियों का कथ्य पारिवारिक जीवन के अन्य पहलुओं को भी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है।

जीवन की साध्य वेला में घरवालों के तिरस्कार और उपेक्षा के कारण त्रस्त वृद्ध लोगों पर ममताजी ने अनेक कहानियाँ लिखीं। 'नमक', 'आज़ादी', 'तासिर', 'उडान' आदि कहानियों के कथानक इस पर आधारित है। शारीरिक और मानसिक विषमताओं के साथ आर्थिक परेशानियाँ भी वृद्ध लोगों के जीवन को कितना त्रासदीपूर्ण बनाती है, इस पर भी ममताजी ने संकेत किया है। 'वारदात' कहानी के वृद्ध दम्पति अकेले रहते हैं, उनके बेटे उन्हें छोडकर शहर में रहता है। आर्थिक तंगी के कारण वे कॉलनी के कार्य कलापों में भागीदारी नहीं करते हैं। चंदा के लिए आनेवाले आसपास के लोगों को अपनी स्थिति का संकेत कर सिंह साहब इस प्रकार कहता है - "आप तो खामखाह नाराज़ हो गये। बात यह है, हमारी कोई आमदनी तो है नहीं, रिटयर्ड लाइफ़ है। पैंसठ की उमर हो चली।"[1] लेकिन उसकी बात को मानने के लिए पडोस के लोग तैयार नहीं है। सिंह साहब घर और दवा के खर्च के लिए पेंशन को बचाकर रखता है। लेकिन पडोसी-लोग उसकी स्थिति को समझ न कर उसे तंग करना और उपेक्षा करना शुरू करते हैं। 'तासीर'

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 115

कहानी के कंसल बाबू अपनी आर्थिक मुसीबतों के कारण कंजूस जैसा व्यवहार करता है। लेकिन उसके गाँववाले इसको लेकर उसपर मज़ाक उठाते हैं। घरवालों से उपेक्षित कंसल बाबू को यह मानसिक तनाव भी सह नहीं सकता। कंसल बाबू का मानसिक संघर्ष ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - "कंसल बाबू एकदम काठ हो गये। लडखडाते कदमों से वे अंदर आए, मेज़ पर भगौना रखकर वे तख्त पर धम से बैठ गए। उन्हें लगा आज अपने अड्डे तक जाने की ताकत उनके पैरों में नहीं रही।"[1] उन्होंने धीरे-धीरे अपने कमरे में सिमटना शुरू किया। यह उसे जल्दी ही मृत्यु के द्वार तक पहूँचाया। आज मानव स्वार्थ केन्द्रित बन गया है। अपना लाभ और सुख के अतिरिक्त दूसरों के मन और मानसिकता को समझने के लिए वह तैयार नहीं है। परिवारवाले ही अपने आप समझने में हार हो जाते हैं। इस कठोर सत्य की ओर पाठकों का ध्यान ममताजी आकर्षित करती हैं और इसे दर्शाने में उनकी कहानियों का कथ्य एकदम सफल बन जाता है।

उपभोग संस्कृति का सबसे सशक्त औजार है बाज़ार। बाज़ार के मोहक जाल में फँसी आम जनता का जीवन भी ममताजी के कहानियों का मुख्य विषय है। 'बाज़ार' नामक कहानी इसका सशक्त उदाहरण है। आज मानव को खुशी घर से नहीं, बज़ारों से मिलती है। 'खरीदना' खुशी का आधार बन गया है और 'स्टाटस' का प्रतीक भी। खरीदारी की इस नयी संस्कृति ने मानव से सोचने की क्षमता को छीन लिया है। क्या खरीदना है या न खरीदना, आज बाज़ार ही यह तय करता है।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 18

कई प्रकार के आकर्षक वायदे देकर वे जनता से पैसा लूट लेते हैं। 'बाज़ार' कहानी की शिखा आवश्यकता न होने पर भी शोपिंग करती है क्योंकि उसे पता मिला है कि मेगा मार्ट से खरीदने पर एक छतरी मुफ्त में मिल जाएगी। बाज़ार आज शोपिंग फेस्टुवल, ऑनलैन शोपिंग, कटौती जैसे अनेक आकर्षक जाल बिछाकर जनता को उसमें फँसाते हैं। 'काके दी हट्टी', 'निवेदन' आदि कहानियों का कथ्य का ताना-बाना भी ममताजी ने इस विषय को लेकर किया है। बाज़ारवादी शक्तियाँ मानव के दिमाग को अपने नियंत्रण में लाने के लिए विज्ञापन का इस्तेमाल करती हैं। झूठा वादा और नकली बातों को प्रस्तुत कर विज्ञापन मनुष्य मन से यथार्थबोध और सोचने की शक्ति को हडप करता है।'बाज़ार' और निवेदन कहानियों में विज्ञापनों के प्रभाव का खुला चित्रण देख सकते हैं।

विज्ञापनों का बढ़ता प्रभाव मॉडलिंग की दुनिया की ओर युव लोगों को विशेषकर युवतियों को आकर्षित करता है। क्योंकि विज्ञापित वस्तु किसी-न-किसी होने पर भी उसका मॉडल स्त्री होना ज़रूरी है। यह ऐसी धारणा को बढ़ावा देने में सहायक बन जाता है कि स्त्री सिर्फ शरीर मात्र है। सूरजपाल चौहान का वक्तव्य है - "उदारीकरण और भूमण्डलीकरण का आधार बाज़ारवाद और बाज़ारवाद का आधार उपयोगिता है। यानी जो जितना उपयोगी है, वह उतना ही जल्दी बिकेगा। स्त्री हमेशा से ही उपयोगी रही है, इसलिए वह ज़्यादा बिक रही है। हम अपने आसपास बडे-बडे शोरूम और कोरपोरेट घरानों में देखते हैं कि वहाँ रिसेप्शनिस्ट, निजी सचिव और स्टेनोग्राफर के रूप में सुन्दर युवतियाँ काम कर रही हैं। चाहे कार का विज्ञापन हो या शराब का सबमें स्त्री को ही दिखाया जा रहा है। सवाल

यह है कि विज्ञापन अपनी विज्ञापित चीज़ों के लिए है या स्त्री-देह के लिए। सच मायने में पहले बिकनेवाली चीज़ स्त्री देह ही है। इसलिए उन दूकानों पर ज़्यादा भीड़ होती है, जहाँ युवतियाँ माल बेच रही हैं।"[1] धन और यश स्त्री को इस दुनिया की ओर आकर्षित करते हैं। लेकिन स्त्री को इस दुनिया सिर्फ एक शरीर के रूप में सिमट कराती है। 'कौवे और कोलकत्ता' नामक कहानी मॉडलिंग और विज्ञापन जगत् से अचानक आराम लेने के लिए विवश मिस बहार की कहानी है। मिस बहार को पैर फिसलकर तीन महीने घर में रहना पडा। लेकिन उसे पता था कि यदि एक दिन उन दुनिया से अलग रहने पर वहाँ से हमेशा के लिए बाहर हो जाएगी। यह बात उसे बेहद परेशान बनाती है और धीरे-धीरे मानसिक रोग की स्थिति तक पहूँचाती है। अपने को दूसरों के सामने जवान स्थापित करने के लिए मिस बहार अपनी आयु दूसरों से छिपाती है। क्योंकि उसे पता है, यदि असली आयु का पता लेने पर उसका अवसर नष्ट हो जाएगा। इसलिए उसने अपने सारे प्रमाणपत्रों को फाड़कर फेंक दिया है। "कैसे पता लगेगी उम्र। मैंने अपनी जन्मपत्री, हाईस्कूल सर्टिफिकेट सब फाड़ फेंके हैं। बस, एक तू अपनी उम्र का सही मानेजमेंट करे तो मैं अभी दस पास 28 की रही आऊँ....।' दीदी के चेहरे पर शैतान की शरारत और चमक उभरी।"[2] मॉडलिंग और विज्ञापन की दुनिया स्त्री के मन में यह बोध देती है कि स्त्री माने देह मात्र है और सौन्दर्य में है स्त्री की कामयाबी। लेकिन ममताजी अपनी कहानियों के द्वारा ऐसी धारणाओं पर अपना विरोध जाहिर करती हैं।

---

1. सूरजपाल चौहान - हिंदी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध - पृ. 11
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 35

सिर्फ मॉडलिंग की दुनिया में नहीं समाज के हर क्षेत्रों और परिवार में भी स्त्री को देह समझनेवाले या उपभोग की वस्तु माननेवाले लोग होते हैं। 'जितना तुम्हारा हूँ' नामक कहानी में श्वेता पति की ऐसी मानसिकता से आहत है। शिकागो से वापस आये पति रघु एक होटल में एक दिन पत्नी के साथ बिताकर वापस जाता है। एक साल के बाद हो गई इस मुलाकात में रघु पत्नी के साथ बातें करना नहीं चाहता है और पत्नी की पूछताछ करना भी नहीं चाहता है। वह पत्नी से सेक्स के अलावा और कुछ नहीं चाहता है। रघु की राय में पत्नी सेक्स का साधन मात्र है। 'एक जीनियस की प्रेमकथा' नामक कहानी का कथ्य भी इस विषय को लेकर बुना गया है। इसमें संदीप अपनी पत्नी कविता को प्यार का घरेलू संस्कार मानता है। इसलिए कविता का शारीरिक सौन्दर्य नष्ट हो जाने पर संदीप बिना किसी भावना से कहता है "तुम मेरे जीवन के सबसे सुखद प्रसंग की सबसे दुःखद परिणति है।"[1] पुरष की ऐसी मानसिकता का खुला चित्रण है 'बडे दिन की पूर्व साँझ' नामक कहानी। इसमें पत्नी कहती है - "हमारी शादी के सिर्फ पाँच दिन गुजरे थे। साढ़े चार दिन हम एक ही कमरे में कैद रहे थे और उठने के नाम पर बाथरूम तक जाते थे।"[1] पति रूप के ऐसे व्यवहारों से त्रस्त पत्नी का विरोध और आक्रोश को ममताजी इस कहानी में व्यक्त करती है। 'आहार', 'तस्की हम न रोये', 'निवेदन', 'जाँच अभी जारी है' आदि कहानियों का कथ्य भी इस संदर्भ में उल्लेखनीय है। ममताजी अपनी कहानियों के द्वारा पुरुष सत्तात्मक मानसिकता पर प्रश्न चिह्न

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - प्रतिदिन - पृ. 29

करती हैं। उपभोग करते-करते जीवन को और भी खुश बनाने की दौड में एक क्षण रुककर सोचने के लिए ममताजी की कहानियाँ पाठकों को मज़बूद बनाती है।

साथ ही साथ 'सुलेमान', 'कामयाब', 'संस्कृति', 'उपलब्धि' आदि कहानियों के द्वारा ममता जी ने राजनीतिक क्षेत्र से जुड़ी हुई समस्याओं पर संकेत किया है। धार्मिक क्षेत्र के खोखलेपन को और धर्म या जाति के नाम पर होनेवाले विभाजन की ओर पाठकों का ध्यान आकर्षित करनेवाली उनकी कहानियाँ हैं 'मेला', 'रोशनी की मार', 'परली' आदि। 'बच्चा', 'नए दोस्त', 'पिकनिक' जैसी कहानियों के द्वारा वे मानव को प्रकृति और पर्यावरण की सुरक्षा पर सजग बनाने की कोशिश करती हैं। कुल मिलकर यह कह सकता है कि वर्तमान समय के सभी ज्वलंत समस्याएँ और स्थितियाँ ममता कालिया की कहानियों का कथ्य बन गयी हैं।

5.2.2 भाषा

शिल्प का सबसे महत्वपूर्ण पक्ष है अभिव्यक्ति। अभिव्यक्ति के लिए भाषा की ज़रूरत होती है अर्थात् भाषा के बिना किसी भी रचना संभव नहीं हो जाती है। लेखक के भावों और विचारों की सफल और सूक्ष्म अभिव्यक्ति भाषा के द्वारा संभव हो जाती है। कथ्य को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने और पाठकों को प्रभावित करने में भाषा की अहम भूमिका है। सरल, सहज, सीधी-सादी भाषा पाठकों को हमेशा प्रभावित करती है। बिंब, प्रतीक, मुहावरे एवं लोकोक्तियों के ज़रिए रचनाकार भाषा का सौन्दर्य और आकर्षणीयता बढ़ाता है। साथ ही साथ कथ्य के संदर्भानुसार भाषा का प्रयोग से रचना की प्रभावात्मकता बढ़ती है। "भाषा

अभिव्यक्ति का सर्वाधिक विशिष्ट माध्यम है। बदलते समय की संवेदना इसमें विलंबित है....... भाषा की सिद्धि इस बात में है कि वह अपने परिवेश की सार्थक अभिव्यक्ति हो। कोशगत शब्दों के प्रयोग भाषा को प्राणहीन और दुरूह बनाते हैं।"[1] यह ठीक है कि भाषा जितनी ही सरल होगी रचना में उतनी ही प्रभावात्मकता होगी। ममता कालिया की भाषा इस अर्थ में प्रभावात्मक है।

प्रत्येक साहित्यकार की भाषा-शैली अलग-अलग होती है। समकालीन साहित्यकारों में ममता कालिया अपनी भाषा की वजह से अन्य कहानीकारों से भिन्न है। वह सरस, प्रवाहमान, तीखी, सुगठित, रोचक और साफ-सुथरी भाषा का हिमायती है। उनकी कहानियों की भाषा प्रतिरोध की भाषा है। समकालीन समय की कुरीतियों, अन्यायों और विसंगतियों पर अपनी भाषा के ज़रिए उन्होंने सशक्त प्रतिरोध जाहिर किया है।

5.2.2.1 प्रतिरोध की भाषा

समकालीन साहित्य प्रतिरोध का साहित्य है। इसलिए ही समकालीन साहित्यकार की भाषा में प्रतिरोध की आग जलती है और इस आग की रोशनी में दूसरों को समझदार बनाने की कोशिश भी करता है। वर्तमान समय की नवऔपनिवेशिक स्थितियाँ, स्त्री, दलित और आदिवासी अस्मिता का संघर्ष, पारिस्थितिकी आदि समकालीन साहित्य के प्रबल पक्ष रहे हैं। समय के प्रति सजग साहित्यकार ममता

1. डॉ. चन्द्रशेखर वर्मा - ज्योत्सना, दिसंबर 1976 - पृ. 35

कालिया अपनी कहानियों के द्वारा समकालीन परिस्थितियों पर अपना विचार व्यक्त करती हैं। ममता कालिया की स्त्री जीवन से जुड़ी हुई कहानियों में प्रतिरोध की आवाज़ सबसे अधिक उभर आती है। ममता कालिया की कहानियाँ के नारी पात्र अपनी पहचान और अस्मिता के प्रति सदैव जागरूक हैं। इसलिए उनकी कहानियों की नारियाँ विरोधी परिस्थितियों में मुरझाने के बजाय अपना प्रतिरोध जाहिर करती हैं।

जब स्त्री समाज में अकेले रहती है तो लोगों ने हमेशा उसे शंका की दृष्टि से देखा है। लोग सोचते हैं कि स्त्री को पुरुष के सहारे के बिना जी नहीं सकती। ऐसी मानसिकता रखनेवालों पर ममताजी 'एक पति की मौत' नामक कहानी की सिया के द्वारा आक्रोश करती है। पति से उपेक्षित सिया को हमेशा सास और कॉलीगों की शंका-भरी दृष्टि की शिकार होनी पड़ती है। बहू की शुचिता की जाँच-पड़ताल के तहत सास सिया के पर्स, किताबें और मैला पेटीकोट की भी जाँच करती है। ऐसी स्थिति में सिया चीखकर कहती है - "हमारी चौकीदारी करने की कोई ज़रूरत नहीं है, समझी। अरे, जब हमारा आदमी हमें छोड गया तो हम जैसे चाहे रहे, जहाँ मर्जी जायें-आयें, चाहे गली के काले कुत्ते के साथ सोयें, तुमको क्या?"[1] उसी प्रकार 'थिएटर रोड के कौवे' शीर्षक कहानी में प्यार के नाम पर रात दो बजे भी फ्लॉट में अकेली रहती पत्नी को फोन करनेवाले पति से पत्नी खुलकर कहती है - "तुम तो अभी मेरी ज़िन्दगी में आये हो। सत्ताईस साल मैंने अपनी रक्षा

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 100

खुद की है, समझे।"[1] आज की नारी डरकर रोने के बदले खुलकर अपनी बात बताने के लिए सक्षम है। वह अपने अधिकारों के प्रति भी सजग हैं। ममता कालिया की 'बाथरूम' नामक कहानी इस संदर्भ में विशेष उल्लेखनीय है। लज्जा की ओट में छिपने के बजाय ससुरालवालों के सामने अपने अधिकारों और आवश्यकताओं को खुलकर बतानेवाली कांता को ममताजी ने इसमें प्रस्तुत किया है। कांता ससुरालवालों से कहती है - "मैं खुले में बैठकर नहीं नहाऊँगी। आपकी इज्जत भी अजीब है जो गलत बातों को मानने से बनती है और न मानने से बिगड़ती है। बाथरूम न होगा तो मैं अभी वापस चली जाऊँगी और कभी नहीं आऊँगी।"[2] ममता कालिया की कहानियों के स्त्री पात्र अपनी अस्मिता को बरकरार रखने के लिए खुला प्रतिरोध करनेवाली हैं।

स्त्री के समान सदियों से शोषण का शिकार होनेवाला एक वर्ग है दलित। अपनी अस्मिता को पहचानकर आगे आने की कोशिश करने पर उन लोगों को कभी-कभी समाज में मौजूद सवर्ण मानसिकता का शिकार होना पडता है। ममता कालिया की 'रोशनी की मार' नामक कहानी में इस सवर्ण मानसिकता के प्रति दलितों में दबे आक्रोश को सुन सकता है। उच्च वर्ग की निंदा और घृणा से आहत होकर कहानी की नायिका बिटिया आक्रोश करती है - "सुन लो अच्छी तरह। हम कानो झूठ नहीं बोली। हमारे सच बोले से तोहार इज्जत चली जात है तो हम का करीं। अरे तुम ब्राह्मणों की इज्जत का है, जा के चार बूँद गंगाजल छींट लो आपन

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 17
2. वही - पृ. 113

ऊपर, आपन चूल्हें - चौका पर। वापस आय जाएगी इज्जत।"[1] बिटिया के इन शब्दों से उनके मन के विरोध और प्रतिरोध को हम समझ सकते हैं।

'पिकनिक' नामक कहानी में बेटा प्रकृति और प्राकृतिक वस्तुओं पर नफरत कर विदेशी चीज़ों के पीछे भागने पर माँ सशक्त रूप से उसका विरोध प्रकट करती है। "असित चिढ़ गया। दाँत पीसते हुए बोला, 'आयी हेट दिस ब्लडी कोकानट। यह बौड़म सी चीज़ हमारे व्यापार का रोडा है। क्या है यह, न ढ़ंग का, न साइज़, न सूरत, पर लोग इसे सिर पर चढ़ाये हुए हैं।' 'इसकी ठंडक देखो, प्रकृति प्रदत्त। कुछ भी कृत्रिम नहीं है इसमें। तुम एक नेचुरल चीज़ को नष्ट करोगे और कुछ नहीं।' मैंने कहा।"[2] माँ अपने बेटे को किसी न किसी प्रकार प्रकृति की ओर वापस लाने की कोशिश करती है। इस प्रकार ममता कालिया ने अपनी की सभी कहानियों में प्रतिरोध और प्रतिक्रिया की चिनगारियाँ छिपाकर रखी हैं।

5.2.2.2 व्यंग्यात्मक भाषा

प्रतिरोध का सबसे सशक्त औजार है व्यंग्य। व्यंग्य में न केवल मनोरंजन या विध्वंस की भावना है, उसमें परिवर्तन और परिवर्धन की भावना होती है। व्यंग्य के सहारे साहित्यकार समाज में प्रचलित त्रुटियों, मूर्खताओं, विद्रूपताओं पर मज़ाक उठाकर उसके प्रति सोचने के लिए पाठकों को मज़बूर बनाता है। इसलिए अमृतराय ने इस प्रकार लिखा है - "व्यंग्य पाठकों के क्षोभ या क्रोध को जगाकर प्रकारांतर

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 222
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 415

से उसे अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करने के लिए सनद्ध करता है।"[1] ममताजी की कई कहानियों में व्यंग्य का बखूबी प्रयोग देखा जा सकता है। 'तस्की हम न रोये' नामक कहानी में अपने मोटे शरीर के कारण पति से हमेशा अपमान और निंदा की शिकार होनेवाली आशा का चित्रण किया गया है। दिन में विजेन्द्र दूसरों के सामने आशा की कुरूपता पर हंसी उठाता है और रात में उसी ही शरीर को पाने की इच्छा में आशा के पास आता है। पति के ऐसे व्यवहारों पर आशा का विरोध ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - "पिछले इतवार उसने चोली काट का ऊँचा ब्लाउज पहना हुआ था। दो चार बार रसोई में उठ बैठ की तो ब्लाउज कुछ ऊपर खिसक गया। विजेन्द्र की नज़र उस पर पड़ी और बोला 'वह देखो मांस लटक रहा है'। उसने तुरंत जवाब दिया 'पता है रात में इसी को तुम वक्ष कहते हो।"[2] आशा की व्यंग्य भरे जवाब में विजेन्द्र चुप हो जाता है। इस कहानी के द्वारा स्त्री को शरीर या भोगने की वस्तु माननेवाली पुरुष-मानसिकता पर ममताजी व्यंग्य करती हैं।

सरकारी कार्यालयों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य करनेवाली कहानी है 'लड़के'। सरकारी गाड़ियाँ व्यक्तिगत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इस्तेमाल करनेवाले सरकारी कर्मचारियों पर इसमें खुला व्यंग्य किया गया है। कहानी की पंक्तियाँ हैं - "तभी एक जीप दन्न से आकर उनके पास रुकी। जीप सिंचाई विभाग की थी उसमें से कई लोग तौलिए लेकर उतरे। ताहिर के मुँह से बेसाख्ता ठहाका निकल गया। 'आइए, आइए बस आपकी कमी थी। हम सोच ही रहे थे, सिंचाई

---

1. डॉ. तेजपाल चौधरी - हिन्दी व्यंग्य बदलते प्रतिमान - पृ. 29
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 115

विभाग इस साल नहाने नहीं आया' सारे लड़के ठठाकर हंस हड़े। आने वाले अचकचा गये। उनके चेहरों पर खिसियाहट थी। उन्होंने ध्यान से लड़कों को देखा। क्या पता कौन गुप्तचर विभाग का है। ....इंजीनियर खुद बेहद बौखलाया, खिसियाया हुआ था। फिर वे लोग बिना नहाये, लदर-पदर जीप में घुसे और वापस चले गये। लड़कों का दिन सार्थक हो गया। वे हँसे और हँसते चले गये।"[1] 'दल्ली' नामक कहानी में सरकारी कार्यालयों को बंद करवाने के लिए (साम्राज्यवादी शक्तियाँ से पैसा लेकर) कोशिश करनेवाले सरकारी कर्मचारियों पर व्यंग्य किया गया है। 'सुलेमान', 'कामयाब' आदि कहानियों में वर्तमान समय के राजनीतिक नेताओं के खोखलेपन पर व्यंग्य किया गया है। समाज के किसी भी क्षेत्र के अन्यायों या अत्याचारों पर खुले ढ़ंग से व्यंग्य करने में ममताजी हिचकती नहीं है।

5.2.2.3 अंग्रेज़ी शब्द का प्रयोग

ममता कालिया की अधिकांश कहानियाँ मध्यवर्गीय और उच्च मध्यवर्गीय जीवन परिस्थितियों से जुड़ी हुई हैं। इसलिए ही उन्होंने अपनी कहानियों में परिवेश के अनुरूप शब्दों और भाषा का प्रयोग करने में विशेष योगदान दिया है। यह कहानी की भाषा को प्रवाहमय और रोचक बनाता है। ममता कालिया की कहानियों में अंग्रेज़ी शब्दों की भरमार है। उदाहरण के लिए 'कॉलनी', 'ब्लॉक', 'सेन्ट्रल मार्कट', 'कॉल सेन्टर', 'सूपर स्टोर', 'प्रोफसर', 'मार्केटिंग मैनेजर', 'मैडम',

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 95

'डिजिटल मशीन'[1], 'डिस्टर्ब', 'पार्क', 'टेबिल लैम्प'[2], 'शोपिंग', 'ड्राइवर'[3], 'टेपरिकॉर्डर', 'डिनर', 'क्रॉकरी', 'रेकॉर्ड'[4], 'डाक्टर', 'नॉनसेंस', 'सॉरी', 'ट्रांसफर', 'ग्रेट', 'प्रमोशन', 'पोस्टिंग ऑडर', 'ब्रीफकेस', 'बयोडाटा'[5], 'एंडवांस', 'डिसेक्शन'[6], 'ओ हाऊ ब्यूटीफुल'[7]।

5.2.2.4. फारसी, उर्दू, अरबी शब्दों का प्रयोग

ममता कालिया ने अपनी कहानियों में परिवेश के अनुसार शब्द चयन किया है। अंग्रेज़ी शब्दों के समान 'फारसी', 'उर्दू' और अरबी शब्दों का भी प्रयोग किया है। यह कहानी की प्रभावात्मकता बढ़ाती है और भाषा को सौन्दर्य प्रदान करती हैं।

फारसी शब्द - घर[8], अन्दर[9], बच्चा[10]

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 8, 9, 10, 17, 41
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 37
3. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 90
4. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 164
5. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 43, 352, 352
6. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 196, 352
7. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 15
8. वही - पृ. 23
9. वही - पृ. 39
10. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 217

उर्दू शब्द - आज़ादी[1], औरत[2], वक्त[3], तकलीफ[4], बीवी[5]

अरबी शब्द - सुभान अल्ला[6], खुदा हाफिज़[7], करीब[8], माहौल[9], तबियत[10], मुसीबत[11]

5.2.2.5 चिकित्सा संबन्धी शब्द

ममता कालिया ने कई कहानियों में चिकित्सा क्षेत्र पर होनेवाले अत्याचारों पर विचार किया है। इसलिए ही उनकी कहानियों में चिकित्सा क्षेत्र से जुड़े हुए कई शब्द मिलते हैं। जैसे - अबॉर्शन, फिजिशियन, लेडी डाक्टर[12], आइ हॉस्पिटल, सर्जन, सुई, लैब[13], नर्सिंग हॉम, मेडिकल कॉलेज, प्रेक्टिस, एंटीबायोटिक, ट्रीटमेंट।[14]

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 194
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 225
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - जाँच अभी जारी है - पृ. 11
4. वही - पृ. 46
5. वही - पृ. 49
6. वही - पृ. 15
7. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 385
8. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - जाँच अभी जारी है - पृ. 11
9. वही - पृ. 23
10. वही - पृ. 62
11. वही - पृ. 66
12. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 36
13. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 41, 43
14. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 195, 196

5.2.2.6 मुहावरों का प्रयोग

मुहावरे शब्द का अर्थ है 'बातचीत'। जब कोई वाक्य या वाक्यांश मूल अर्थ में बदलकर किसी विशेष अर्थ प्रकट करता है तो उसे मुहावरा कहता है। साहित्य में मुहावरे का प्रयोग से भाषा सुन्दर बन जाती है और वाक्य के बीच में इसके प्रयोग से रचना की आकर्षणीयता भी बढ़ जाती है। ममता कालिया अपनी कहानियों में उचित स्थान पर मुहावरे का प्रयोग कर अपना विचार पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में सक्षम है। उदाहरण के लिए 'भट्ठा बैठा देना' इसका मतलब है भट्ठा में रखना या नाश करना। 'काके दी हट्टी' नामक कहानी के चंद्रप्रकाश की आजीविका बंद हो गयी है क्योंकि उसकी दूकान के पास आये सूपर स्टॉर और वहाँ के मालिक के व्यवहारों से आसपास की सभी दूकानों को बंद करना पडा। ऐसी स्थिति में चंद्रप्रकाश कहता है - "सूपर स्टोर की धूल ने मेरी हट्टी का तो भट्ठा बैठा देना है।"[1]

'जोश पर पानी नहीं फेरेगी' इसका मतलब है उत्साह नष्ट न करना। 'बगिया' नामक कहानी में अपने बच्चों की छोटी-छोटी इच्छाओं को सफल कराने के लिए कोशिश करनेवाली माँ को चित्रित किया गया है। कहानी की पंक्तियाँ हैं "ऐसे संकट में पत्नी का मनोबल बेहद बड़ जाता था। उसने तय कर लिया कि बच्चों के जोश पर पानी नहीं फेरेगी। उसने पैसा-पैसा जोडकर सौ रुपये बनाये हुए थे।"

---

1. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 11

'सब घोडे बेचकर सोये पडे हैं' इसका मतलब है बेफ़्रिक होकर सोना। छुट्टी के दिन घर का माहौल देखकर 'बाज़ार' कहानी की दादी इस प्रकार कहती है - "घर में इतने सदस्य हैं। सब घोडे बेचकर सोये हैं। इनकी नींद को जैसे पता है आज इतवार है।"[1] 'मुँह काला कर दिया' इसका अर्थ है निंदा का कारण बन गया, अपमानित हो गया। 'तोहमत' कहानी में बेटी की चरित्र शुचिता पर गाँववाले संदेह प्रकट करने पर घरवालों की प्रतिक्रिया ममताजी ने यों प्रस्तुत किया - "हमारा मुँह काला करा दिया, अपना मुँह काला करा लिया, जन्मी थी औलाद।"[2]

'बोलनेवाली औरत' नामक कहानी का ससुर उच्च शिक्षित है और घर में अंग्रेज़ी में बातें करना पसंद करता है। घर के बिगडते माहौल को शांत कराने के लिए वह आदेशों के बदले सिर्फ मुहावरे से संकेत करता है। जैसे 'अर्ली टु बेड एंड अर्ली टु राइज', 'एज यू सो, सो शैल यू रीप'।[3]

5.2.2.7 प्रतीक

प्रतीक शब्द अंग्रेज़ी के 'सिम्बल' शब्द का रूपांतरण है। यह अभिव्यक्ति का सरल साधन है। यह संवेदनाओं को व्यक्त करने का और समस्याओं के प्रति प्रतिरोध जाहिर करने का सबसे सशक्त मध्यम है। प्रतीक के द्वारा भाषा में नई अर्थशक्ति और प्रौढ़ता आती है। ममता कालिया की कहानियों में प्रतीकों का प्रयोग

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 63
2. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 88
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 128, 131

देखा जा सकता है। प्रतीकों के प्रयोग के द्वारा कहानी की प्रभावात्मकता बढ़ती है। ‘बाथरूम’ नामक कहानी के बाथरूम शब्द को स्त्री स्वतंत्रता के प्रतीक के रूप में ममताजी ने प्रस्तुत किया है। ससुराल में नववधु कांता बाथरूम के लिए लडती है। यह लडाई वास्तव में एक प्रतीक है, स्त्री की स्वतंत्रता और अस्मिता की लडाई का प्रतीक। देखने की बात यह है कि कांता की इस लडाई में सबसे पहले स्त्रियों ही उसका विरोध करती हैं। क्योंकि उन स्त्रियों को पता नहीं है कि बाथरूम का सुरक्षा क्या है। जब वे बाथरूम के फायदों का अनुभव करते हैं तब वे भी कांता के साथ में खडे रहते हैं। ‘थिएटर रोड के कौवे’ नामक कहानी में ‘कौवे’ को ममता जी ने पुरुष वर्ग के प्रतीक के रूप में चित्रित किया है। फ्लॉट में अकेली रहती बेला को कौवे के द्वारा हमेशा घूरकर देखने का चित्रण ममताजी ने कहानी के प्रारंभ में किया है। वास्तव में ये कौवे पुरुष वर्ग ही हैं जो हमेशा एक अवसर के लिए घूरकर देखते रहते हैं। ‘खिड़की’ नामक कहानी में नायिका कंचल ने परिवार की दयनीय स्थिति के कारण पढ़ाई की आधे में छोड दिया। लेकिन एक रेलयात्रा में मिले एक युवक से पढ़ाई को आगे चलाने की प्रेरणा मिली और उस युवक से स्कॉलरशिप के बारे में पता भी मिला। वास्तव में ममताजी ने खिड़की शब्द से कंजन के भविष्य का संकेत किया है। रेलगाडी की खिड़की खुलने के साथ ही साथ कंचन के मन में भी प्रतीक्षा की किरणें आ जाती हैं। इस प्रकार प्रतीकों के प्रयोग के द्वारा ममताजी ने अपनी कहानियों की भाषा को रोचक और आकर्षक बनाया है।

5.2.3 शैली

शैली अंग्रेज़ी के 'स्टईल' शब्द का हिन्दी रूपांतरण है। इस शब्द का अर्थ है अभिव्यक्ति का ढ़ंग अथवा तरीका। शिल्प के सबसे प्रमुख अंगों में एक है शैली। रचनाकार अपने विचारों, भावों और अनुभूतियों को जिस ढ़ंग से पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है, उसे उस रचनाकार की शैली कह सकता है। गोथे के अनुसार, "An Author's style is a faithful copy of his Mind"[1] शैली के बारे में कमलेश्वर का विचार इस प्रकार है - "शैली कहानी के व्यक्तित्व का अलग न किये जा सकनेवाला अंग है जिसे रूपायित नहीं किया जा सकता, केवल अनुभव किया जा सकता है।"[2] शैली का सौन्दर्य वास्तव में उसकी स्वाभाविकता पर आधारित है। इसलिए रचनाकार कथानक के अनुरूप में शैली को रूपायित करता है। हिंदी साहित्य कोश में शैली को इसप्रकार व्यक्त करके लिखा गया है - "शैली का अस्तित्व इसमें निहित है कि दिए हुए विचार के साथ उन सब परिस्थितियों को जोड़ दिया जाय तो उस विचार के अभिमत प्रभाव को संपूर्णता में उत्पन्न करनेवाली है।"[3] इसलिए कहते हैं कि शैली के अभाव में रचना संगठित और रोचक नहीं होती है। रचनाकार अपने विचारों और भावों को संपूर्णता में अभिव्यक्त करने के लिए भिन्न-भिन्न शैलियों का इस्तेमाल करता है। यह कथ्य को सफल और रोचक बनाती है। समकालीन रचनाकार किसी निश्चित परंपरा, वाद, तत्व से बंधित नहीं है। समकालीन कहानियों की शैली पर दृष्टि रखने पर यह स्वतंत्रता हम समझ सकते हैं।

---

1. New Dictionary of thoughts - P. 617
2. कमलेश्वर - नयी कहानी की भूमिका - पृ. 194
3. हिंदी साहित्य कोश, भाग-1 - पृ. 773

ममता कालिया ने अपनी कहानी कला में किसी एक शैली का उपयोग न कर परिस्थिति एवं परिवेश के अनुसार भिन्न-भिन्न शैलियों का प्रयोग किया है। इसलिए उनकी कहानियों में बनावटीपन का अंश नहीं है। ममताजी की समग्र कहानियों को शैली की दृष्टि से देखने पर मालूम पड़ता है कि उनकी कहानियों में प्रमुख रूप से वर्णनात्मक, आत्मकथात्मक, संवादात्मक शैलियों का प्रयोग दिखाई देता है।

5.2.3.1 वर्णनात्मक शैली

यह शैली इत्तवृत्तात्मक, व्याख्यात्मक और विवरणात्मक नाम से भी जाना जाता है। यह सबसे सरल शैली है। इसलिए साहित्यकार इस शैली को बखूबी इस्तेमाल करता है। इसमें रचनाकार वर्णन और विवरण के सहारे घटनाओं को, वातावरण को और पात्रों की मानसिक व्यापारों को प्रस्तुत करते हैं। ममताजी ने अपनी अधिकांश कहानियों में इस शैली का इस्तेमाल तो किया है। समकालीन परिस्थिति को गहराई में पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में इस शैली का प्रयोग सहायक है। 'थिएटर रोड के कौवे', 'वसंत-सिर्फ एक तारीख', 'सेमिनार', 'लैला मजनूँ', 'लडके', 'पर्यटन' जैसी अनेक कहानियों में इस शैली का प्रयोग देख सकते हैं। 'वसंत-सिर्फ एक तारीख' में लेखिका लोगों की व्यस्तता को इस प्रकार वर्णित किया है "लोग बेतहाशा भागे जा रहे हैं - साइकिलों पर, स्कूटरों पर, रिक्शों में। वे न आपस में बोल रहे हैं, न इधर-उधर देख रहे हैं, बस भागे जा रहे हैं, उससे ठीक सिर के ऊपर नीले आसमान में एक गुनगुना बादल ठुमक रहा है। लेकिन वे

भागे जा रहा है।"[1] आज लोग पैसा कमाने की दौड में हैं। इस दौड में एक दूसरे की परवाह करने का समय उसके पास नहीं है। महानगरीय जीवन की व्यवस्ता का वर्णन ममताजी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है। "थकान तो नहीं, पर धूप और भी तेज़ लग रही थी। इस लिहाज से यह शहर कपडे धोने के लिए सर्वोत्तम था। बम्बई में ऐसी तीखी धूप नहीं पडती थी। वहाँ अक्सर मौसम फिल्मी हो जाता। यह बात और थी कि रेल और बसों के लिए भागते रहने में उस मौसम को कभी फुरसत में देख नहीं पाये।"[2] 'अपने शहर की बत्तियाँ' नामक कहानी में ममताजी दिल्ली का चित्रण इतने मनोरम ढ़ंग से खींचती है कि जो पाठकों को अपने आँखों के सामने देखना जैसे लगते हैं। "अजब शहर था यह, स्वदेशी होते हुए भी विदेशी और विदेशी दिखते हुए भी स्वदेशी। जैसे-जैसे शाम उतर रही थी, शहर शरारती होता जा रहा था, खूबसूरत, शोख, और शातिर। कनाट प्लेस के गोल घेरे का चक्कर लगाते-लगाते वे चकरा गए। विजय चौक से जब उन्होंने इण्डिया-गेट की तरफ देखा, तो रात, चाँद और बिजली के वैभव के बीच उन्हें लगा वे दुनिया का सबसे सुंदर दृश्य देख रहे हैं। उस दृश्य का रूप और विस्तार, लाल पत्थरों का स्थापत्य, सड़कों का विलक्षण विभाजन, रोशनी का सतर्क संतुलन, सब कुछ अनुपम था।"[3] धर्म के परिप्रेक्ष्य में लिखी गयी ममता कालिया की कहानी है 'मेला'। इसमें धर्म के प्रति मानव के अंधविश्वास और इसके लाभ उठानेवाले धर्माचार्यों पर व्यंग्य किया

---

1. ममता कालिया - थिएटर रोड के कौवे - पृ. 93
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - छुटकारा - पृ. 76
3. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - उसका यौवन - पृ. 321

गया है। साथ ही साथ कुंभ मेला और गंगा नदी के मनोरम वर्णन भी ममता जी ने किया है। कहानी की पंक्तियाँ हैं - "सोहबतिया बाग से संगम जानेवाले मार्ग पर भगवे रंग की एम्बैसडर गाड़ियाँ दौड़ रही थी। पाँच सितारा अध्यात्म पेश करनेवाले, विशाल जटाजुट धारण किए साधु-संत, फकीर, रंग-बिरंगे यात्रियों के रेल में अलग नज़र आ रहे थे। दूर से गंगा तट पर असंख्य बाँस-बल्ली के चंदोवे तने हुए थे। कहाँ घर में रजाई में बैठे हुए भी ठंड से ठिठुर रहे थे, कहाँ मेले में ठंड़े कपडों में बूढ़े, जवान, अधेड़ स्त्री-पुरुष पार करने का उपक्रम। सब एक दूसरे की धोती या कुरते का छोर पकड़ रेलगाड़ी के डिब्बों की तरह चल रहे थे। ठीक 11 साल 86 दिन बाद पडा है यह कुंभमेला।"[1] इस प्रकार ममता कालिया की लगभग सभी कहानियों में इस शैली का प्रयोग देख सकते हैं।

5.2.3.2 आत्मकथात्मक शैली

इसे 'मैं' शैली या आत्मपदीय शैली भी कहते हैं। इस शैली में लेखक 'मैं' को केन्द्र में रखकर रचना कहता है। अपने जीवन का अनुभव और अनुभूति को इस शैली में प्रस्तुत करने पर रचना में प्रभावात्मकता और विश्वसनीयता का समावेश आ जाता है। ममताजी अपने जीवन से जुड़ी हुई समस्याओं को प्रस्तुत करते वक्त मुख्य रूप से इस शैली का प्रयोग करती हैं, विशेषकर स्त्री जीवन से जुड़ी हुई कहानियों में। समाज स्त्री को हमेशा उपयोग या एक अवसर की दृष्टि से देखता है। 'लगभग प्रेमिका' नामक कहानी में ममताजी ने आत्मकथात्मक शैली में

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - बोलनेवाली औरत - पृ. 138

ऐसी एक घटना का चित्रण किया तो स्त्री पाठकों को ऐसा लगा था कि अपना अनुभव ही है। "कुछ देर खिड़की से बाहर का दृश्य देखने के बाद ही मुझे यह अहसास हुआ कि मेरे पहलू में बैठा यात्री निश्चल नहीं है। मैंने आश्चर्य से सुना, 'बेबी, विल यू हैव डिनर विद मी, फिफ्टी रुपीज़।' वह बेहद प्रौढ़, लगभग वृद्ध, पारसी था। उसका सफेद बन्द गले का कोट काफी ढीला और पुराना लग रहा था। आशय समझते ही मैं भय से जड़ हो गयी, 'नो, शट अप!' कहती मैं उठ कर खड़ी हुई और अगले स्टोप पर बस रुकते ही उतर गयी।"[1] ससुराल में अपना अस्तित्व नष्ट हो जाने पर स्त्री मन की विवशता ममताजी 'एक अदद औरत' नामक कहानी में यों ही प्रस्तुत करती है - "मुझे अपनी नाराज़ी नहीं दिखानी है, एक आदर्श पत्नी की तरह ऊब को भी पतिव्रता का हिस्सा मान कर झेलना है, मुझे मुस्कुराना है, मुझे खुश होना है, मुझे सहमति में सिर हिलाते चलता है....... घर के लोग सोते हैं तो मैं सो जाती हूँ। घर में पढ़ना-लिखना हो रहा है तो मैं पढ़ने-लिखने लगती हूँ। घर में सफाई चलती हो तो मैं सफाई करने लगती हूँ। मेरा अलग से कोई कार्यक्रम नहीं है।"[2]

'वह मिली थी बस में' नामक कहानी वास्तव में ममता कालिया का आत्मविश्लेषण ही है। इस कहानी के द्वारा ममताजी यह विश्लेषित करती हैं कि क्या स्त्री असल में स्वतंत्र है अर्थात् जो स्वतंत्रता पायी है क्या वह असल में स्वतंत्रता है। यदि मिले है तो स्त्री हमेशा डरकर जीने का कारण क्या है। आत्मकथात्मक

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - सीट नम्बर छह - पृ. 137
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 225

शैली में लिखी गयी इस कहानी में ममताजी अपने मन में दबाकर रखे सवालों को पाठकों के सामने प्रस्तुत करती है। रात में बस ब्रेक डाउण होने पर नायिका घबराती है। घबराहट रात को या पुरुष से नहीं, पति और ससुरालवालों की याद से है। "हे भगवान, घर में प्रमोद तो आगबबूला हो रहे होंगे। वे घड़ी देखते जायेंगे और अपने अन्दर बारूद इकट्ठा करते जायेंगे। मेरे पहूँचते ही विस्फोट होगा - 'धड़ाम'। 'तुमने क्यों कहा था तुम नौ बजे पहूँच जाओगी? रेल की जगह बस क्यों पकडी? स्टेशन पर दो घंटे बैठ नहीं सकती थी? पीछे से कम्मू कितना रोई, तुम्हें कोई परवाह है? एक बार घर से निकली है तो लौटने की कोई चिंता नहीं रहती तुम्हें? सारी राष्ट्रीय सेवा योजना तुम्हीं को करनी है जो दौड़ पड़ी फाइल ले कर?' इसके अलावा कुछ मौलिक, मारक आरोप भी प्रमोद ईजाद करेंगे जिनकी काट इस थके हाड से कैसे करेगी?"[1] पति और ससुरालवालों के ऐसे प्रश्नों को सोचकर ही नायिका अर्द्धप्राण बन गयी है। इस कहानी के द्वारा ममताजी यह बात बताना चाहती हैं कि स्त्री आज शिक्षित है, ऊँचे पद पर काम भी करती है, बाहर जाती है फिर भी उसे डरकर जीना पडता है। अपनी मानसिकता को खुलकर बताने का साहस उसमें नहीं है। ऐसी स्थिति में पाठकों को ऐसा महसूस होता है कि वास्तव में क्या पायी गयी है, पढ़ाई करने की स्वतंत्रता? कहानी के अंत में ममताजी द्वारा उठाये गये प्रश्न पाठकों के मन में गूँज उठते हैं कि डर के बिना जीने के लिए मुझे कितने जनम लेना पडेगा?

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-II - निर्मोही - पृ. 379

'वसंत सिर्फ एक तारीख', 'बाज़ार', 'कौवे और कोलकत्ते' आदि कई कहानियों में ममताजी ने आत्मकथात्मक शैली का प्रयोग किया है। ममताजी सोचती हैं कि अपने मन के भावों और विचारों को पाठकों को उसी तरह से समझने के लिए आत्मकथात्मक शैली काफी सक्षम है। ममताजी कहती है "मेरी कहानियों के पीछे वे समस्त विसंगतियाँ हैं, जिनकी मूकदर्शक बनकर बैठना मुझे गवारा न हुआ। समय के सवालों से जूझने की चुनौती और उत्कण्ठा तथा जीवन के प्रति नित-नूतन विस्मय ने ही रचनाओं का लिखना संभव किया है।"[1] ममताजी ने अपने दिल की आकांक्षाएँ, आशंकाएँ, व्यथाएं, स्वप्न-दुस्वप्न सबको प्रस्तुत करने के सफल तरीका के रूप में इन शैली का प्रयोग किया है।

5.2.3.3 पूर्वाभास शैली का फ्लैश बॉक शैली

रचनाकार पूर्वघटित घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए पूर्वाभास शैली का प्रयोग करता है। इसे पूर्वदीप्ति शैली भी कहते हैं। इस शैली के सहारे से रचना में अतीत की छाया लाने और पात्रों के भूतकाल से पाठकों को परिचित कराने में लेखक सफल बन जाता है। ममता कालिया की कई कहानियों में पूर्वदीप्ति शैली का प्रयोग देख सकते हैं। 'सूनी' नामक कहानी में सुनन्दा के जीवन के अकेलापन, सूनापन आदि के कारणों का पर्दाफाश करने के लिए ममताजी ने फ्लैश बॉक शैली का प्रयोग किया है। माँ की मृत्यु के बाद जीवन में अकेली बन गयी सुनन्दा अपने जीवन के अतीत की ओर मुड़कर देखती है। माँ की स्वार्थता के कारण सुनन्दा की

---

1. ममता कालिया - थोड़ा सा प्रगतिशील - पृ. 9

शादी समय पर न हुई। क्योकि माँ ने सोचा कि यदि बेटी की शादी हो जाने के बाद माँ और बेटी के बीच दरार पड जाएगी। माँ की शर्तें सुनन्दा की यादों में अब भी हैं। "माँ का कहना था कि वे सूनी के लिए ऐसा वह चाहती है जो उन्हीं के साथ आकर रहे, कभी ऊँची आवाज़ में न बोले, माँ के लिए सेवा-भाव रखे और सूनी और माँ के बीच में दीवार बनने की कोशिश न करें।"[1] 'तस्की हम न रोये' नामक कहानी की आशा वैवाहिक जीवन के संघर्षों के बीच पिघलते वक्त अपनी माँ की याद करती है। माँ एक सहनशील आदर्शवादी औरत थी, इसलिए माँ हमेशा बेटी को आदेश देती थी। "आशा तिलमिला गयी, बमुश्किल उसने अपने हाथों को उस ओर पेपरवेट फेंकने से रोका। ऐसे मौकों पर उसे अपनी माँ और अपने बच्चे बेतरह याद आते हैं। माँ ने शादी के समय कहा था - 'अब से ज़िन्दगी में केवल दो चीज़ों पर भरोसा करना, एक प्रार्थना, दूसरी सहनशक्ति।"[2] माँ के ऐसे आदेशों ने बचपन से ही आशा से संघर्ष करने की शक्ति नष्ट करवायी। पति के द्वारा होनेवाले सभी शोषणों को सह-सहकर जीते वक्त आशा माँ की याद करती रहती है। इसलिए इस कहानी में फ्लैश बॉक शैली की अहम भूमिका है।

'तासीर' कहानी के मिश्रा बाबू अवकाश प्राप्त किए अठारह साल हो चुका है। उसे ऐसा लगा है कि अवकाश प्राप्ति के बाद का जीवन निरर्थक है। इसलिए वह हमेशा दफ्तर की यादों में जीना चाहता है और मुलाकात हुई सभी से अपने

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 50
2. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 115

भूतकाल की यादें साझा करता है। कहानी की पंक्तियाँ हैं - "मिश्रा बाबू कहते, 'सारा दप्तर मेरे सामने थर्राता था। किसी की क्या मजाल कि मेरी मर्जी के बिना अपनी अर्जी बदल दे।"[1] मिश्रा बाबू के अतीत को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने के लिए ममताजी पूर्वदीप्ति शैली का सहारा लेती हैं।

5.2.3.4 संवाद शैली

नाटक के प्राण तत्व के रूप में संवाद को माना जाता है। इसलिए यह शैली नाट्यात्मक शैली नाम से भी जाना जाता है। संवादों के सहारे कथा गति प्राप्त कर सकती है और रचना को रोचक और प्रभावात्मक बना भी सकता है। ममता कालिया अपनी कहानियों में छोटे-छोटे संवादों को प्रस्तुत करने में सक्षम है। यह उनकी कहानियों को रोचक और सरल बनाती है। 'बोलनेवाली औरत' नामक कहानी में नायक-नायिका के बीच के इस संवाद से ही कहानी का मुख्य विषय, पात्रों की मानसिकता आदि की जानकारी पाठकों को मिलती है। "रात उसने कमरे में शिखा से कहा, 'तुम माँ से क्यों उलझती रहती हो दिन भर।'

'इस बात का विलोम भी उतना ही सच हैं।'

'हम विलोम-अनुलोम में बात नहीं कर रहे हैं, एक संबन्ध है जिसकी इज्जत तुम्हें करनी होगी।'

'गलत बातों की भी'

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 181

'माँ की कोई बात गलत नहीं होती।'

'कोई भी इंसान परफेक्ट नहीं हो सकता।'

कपिल तैश में आ गया, 'तुमने माँ को इम्परफेक्ट कहा। तुम्हें शर्म आनी चाहिए। तुम हमेशा ज़्यादा बोल जाती है और गलत भी।

'तुम मेरी आवाज़ बंद करना चाहते हो।"[1]

'दूसरी आज़ादी' नामक कहानी के वसीम और तमन्ना के बीच की बातचीत से यह समझा जा सकता है कि स्त्री के प्रति वसीम की मानसिकता क्या है। "उसने बिगड़ कर फोन किया, 'यह मैं क्या सुन रहा हूँ बेगम। आप चार पैसों के लिए टीचरी करने लगीं। अगर खर्च ज़्यादा था तो मुझे बताती, मैं और पैसे भेज देता।"

तमन्ना ने कहा, 'पैसों का सवाल नहीं है, यह भी सोचो मैं टाइमपास कैसे करूँ?'

'पाँच वक्त नमाज़ पढ़ा करो, अपनी बच्चियों पर ध्यान दो। नेक औरतों के यही दो काम होते हैं।'

'मैं आपको नहीं गिनाती कि नेक मर्दों के कौन-से काम होते हैं?'

'तुम तो ज़्यादा बकबक करने लगी हो'।"[2] इसी प्रकार छोटे-छोटे संवादों के ज़रिए ममताजी पाठकों को ऐसा अनुभव करती है जो कहानी नहीं आँखों के सामने हो रही घटनाएँ हैं।

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 127
2. ममता कालिया - काके दी हट्टी - पृ. 53

5.2.3.5 उद्धरण शैली

लेखक कथानक के साथ कभी इतिहास या पुराण का संदर्भ जोडता है या कही किसी प्रसिद्ध कवि या संत की पंक्तियाँ जोडता है। इस प्रकार अन्य रचनाओं की पंक्तियाँ जोडने के तरीके को उद्धरण शैली कहते हैं। इस शैली के प्रयोग के द्वारा लेखक के भाव या विचार पाठकों के मन में अधिक प्रभावात्मक और अटूट बन जाते हैं। इसलिए आलोचकों की राय में यह शैली विचारों की बौद्धिक उच्चता के लिए उपयुक्त शैली है। 'खिड़की' नामक कहानी के शिवचरण बाबू अपनी बेटियों के प्रति बहुत अधिक चिंतित है। उनकी पढ़ाई और विवाह समय-समय पर चलाने का पैसा कमाने में बीमारग्रस्त शिवचरण बाबू असफल हो गया। अपनी बेटियों की ज़िन्दगी को सुरक्षित और सफल बनाने का कोई भी रास्ता न पाकर अंत में शिवचरण बाबू ने भगवान में आश्रय करना शुरू किया। क्योंकि उसे लगा है कि अपने परिवार को आगे बढ़ाने के लिए वह सक्षम नहीं और आगे एक ही रास्ता भगवान है। जीवन के हर संघर्षों को उसने धर्मग्रन्थों की पंक्तियाँ दोहराकर सामना किया। ममताजी ने इसमें रामचरित मानस की पंक्तियों को उद्धृत किया है। "मन ही मन तो वह कह रहे थे-

> 'अब जानि कोउ माखै भटमानी।
> बीर विहीन मही मैं जानी।
> तजहु आस निज निज गृह जाहू।
> लिखा न बिधि बैदेहि बिबाहू।'[1]

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 156

शिवचरण बाबू ने धर्म ग्रन्थों में इतना अटूट विश्वास किया है कि अपनी बेटियों को सीता, ऊर्मिला, माण्डवी और श्रुतिकीर्ति के समान स्वयंवर कर जाने की संकल्पना किया है। "कभी-कभी वे कहते भी है - "मैं तो अपनी बेटियों को फूलों के गहनों में विदा करूँगा। इन्हें मैंने पढ़ा-लिखा दिया, अब जो इनकी कद्र करे वह मेरे सामने याचना कर इन्हें ले जाए।"[1] शिवचरण बाबू यथार्थ और कल्पना को पहचान न कर पाने की स्थिति तक पहूँच गये हैं। उनके मानसिक संघर्ष और तनाव को पाठकों के साथ उसी रूप में संप्रेषित करने के लिए ममताजी ने रामायण की पंक्तियों और रामायण की घटनाओं का सहारा लिया है।

'मेला' नामक कहानी में धार्मिक क्षेत्र में हो रहे अत्याचारों का हूबहू चित्रण ममताजी ने किया है। वातावरण को अनुकूल बनाने के लिए और पाठकों के मन में अटूट प्रभाव डालने के लिए ममताजी ने कहानी के बीच-बीच में भजन का प्रयोग किया है। जैसे-

"मेरे श्याम तूँ रास विच नच लेन दे। नी....
खाया मक्खन भतेरा ओनूँ पच लेन दे।-
नी, मेरे श्याम............."[1]

"मैं भूल गयी दाता, मैं भूल गयी गइयाँ, धर्म दा राह छड़
ओझड़ पइयाँ

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 156
2. वही - पृ. 128

आज दी न भूली मैं कल दी न भूली
जनम-जनम दी आई हूँ रुलवी
सोच समझकर देख ले मनुआ। यह सब नाल किसी दे न जइयों।"[1]

हाफीज़ जालंधरी उर्दू के प्रसिद्ध कवि हैं जो पाकिस्तान के राष्ट्रगान की रचयिता भी हूँ। उनका प्रसिद्ध नज़्म है 'अभी तो मैं जवान हूँ'। ममता कालिया ने 'फरवरी एक शाम' नामक कहानी में इस कविता की पंक्तियों को जोड़ दिया है। "शबनम की आवाज़ में नशीली लरज़िश थी। उसने गाना शुरू किया-

चलो जी किस्सा मुख़्तस तुम्हारा तुक्ता-ए-नज़र
दुरस्त है तो हो मगर, अभी तो मैं जवान हूँ।
अभी तो मैं जवान हूँ, अभी तो मैं जवान हूँ।
ये मौत इस क़दर क़रीब मुझे न आयेगा यकीन
नहीं नहीं अभी नहीं, नहीं नहीं अभी नहीं।
अभी तो मैं जवान हूँ, अभी तो मैं जवान हूँ।
न मय में कुछ कमी रहे, क़दा से हमदमी रहे।
नशिस्त ये जमी रहे, यही हमा हमी रहे।
हर इक लब पे हो सदा, न हाथ रोक साक़िया।
पिलाये जा , पिलाये जा, पिलाये जा, पिलाये जा।
अभी तो मैं जवान हूँ, अभी तो मैं जवान हूँ।"[2]

---

1. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - बोलनेवाली औरत - पृ. 128
2. ममता कालिया - थोडा सा प्रगतिशील - पृ. 101

ममता कालिया ने कहानी के अंत में लिखा है कि कविता खतम होने पर भी ऐसा लगता है कि फिज़ा में नज़्म के टुकडे रह-रहकर तैर रहे थे। उसी प्रकार कहानी पढ़ने के बाद भी हमारे मन में यह नज़्म तैर रहे हैं। इसलिए निसंदेह कह सकते हैं कि उद्धरण शैली को वातावरण के अनुकूल प्रयुक्त करने में ममताजी अग्रणी हैं।

5.2.3.6 मनोविश्लेषण शैली

ममताजी ने अपनी कहानियों में मानव मन के अंतर्द्वन्द्व को व्यक्त करने की कोशिश की है। ऐसी कहानियों में बाह्य जगत् की अपेक्षा आंतरिक जगत् के संघर्षों का चित्रण होता है। 'एक अकेली तस्वीर' नामक कहानी में तनिया के मानसिक संघर्षों को प्रस्तुत किया है। तनिया ने इस प्रकार सोचा है कि जीवन में सफलता पाने के लिए शादी एक बाधा है। शादी माने समझौता है, उसमें दायित्वों का भरमार होती है। इसलिए अपनी खुशी, स्वतंत्रता, समय आदि नष्ट न करने के लिए तनिया अविवाहित रही। लेकिन आगे जाने पर उसे शंका हुआ कि अपना निर्णय सही है या नहीं। उसे लगा कि परिवार के बिना अपना चित्र अपूर्ण है और मृत्यु के बाद दुनिया में अपनी कोई निशानी भी नहीं होगी। इसप्रकार अपने निर्मय के बारे में बार-बार सोचकर मानसिक संघर्ष झेलनेवाली तनिया को ममताजी ने इसमें चित्रित किया है। तनिया का आत्मसंघर्ष ममताजी इन शब्दों में व्यक्त करती हैं - "आँखों तक आती सूर्य की किरण के साथ-साथ तनिया को जैसे कुछ बिंध गया। आत्मसाक्षात्कार के दर्पण के आगे उस क्षण उसे लगा उसकी मणि झूठी है।

प्राप्ति के बाद की वितृष्णा से पलायन करते-करते आज वह इतनी दूर आ गयी है कि अब उसके साथ-साथ धुँधली होकर मिट जाने के लिए कोई तस्वीर ही नहीं है।"[1]

'वसंत-सिर्फ एक तारीख' कहानी में नायिका चंदा ने साहित्यकार होते हुए भी आर्थिक परेशानियों के कारण नौकरी की खोज की है। नौकरी पाने के लिए उसने सिफारिश का रास्ता चुना है और अपने लाभ के लिए एक निरीह गर्भवती को नौकरी से हटाने की कोशिश भी की। लेकिन नौकरी पाने पर उसे खुशी के बदले दुःख महसूस हुआ। उसकी मानसिकता का पर्दाफाश ममताजी इन शब्दों में व्यक्ति करती हैं "मेरे पैरों में कँपकंपी उठी जैसी स्कूल के दिनों में दौडने से पहले उठा करती थी। दिमाग में कोई दमामे बजा रहा था। ......अगल-बगल के फुटपाथों पर नगर महापालिका द्वारा लगाये गये नीले, पीले, गुलाबी फूल उसी तरह इतरा रहे थे मैं उधर नहीं देख रही थी। मेरे अंदर एक वसंत अभी-अभी झुलकर मर गया था।"[2] चंदा को अच्छी तरह पता है कि अपनी गलती की गहराई कितनी है लेकिन समाज को मशाल दिखानेवाला साहित्यकार होते हुए भी ऐसे अत्याचारों को सहारा लेने के लिए आर्थिक परेशानियों ने उसे विवश बनायी। सही और गलत रास्ते के बीच के उसके मानसिक संघर्ष को व्यक्त करने के लिए ममताजी ने इस शैली का इस्तेमाल किया है।

---

1. ममता कालिया - ख़ुशक़िस्मत - पृ. 19
2. ममता कालिया - ममता कालिया की कहानियाँ-I - एक अदद औरत - पृ. 214

5.3 निष्कर्ष

कहानियों में प्रयुक्त भाषा और शैलीगत विविधताएँ कहानीकार की अभिव्यक्ति क्षमता का परिचायक है। ममता कालिया की कहानियाँ अपने अलग और स्वतंत्र शिल्प विधि के सहारे हिंदी साहित्य के क्षेत्र में विशेष चर्चित हैं। समाज के प्रति होनेवाली पैनी दृष्टि और उस दृष्टि के अनुकूल कथानक के ताने-बाने ने ममता कालिया की कहानियों को अलग स्थान प्राप्त कराया। कथानक को अनुकूल शैली में परिवर्तित करने में ममताजी सक्षम है। वर्णनात्मक शैली, आत्मकथात्मक शैली, पूर्वदीप्ति शैली, संवाद शैली, उद्धरण शैली जैसे विभिन्न शैलियों के प्रयोग से उन्होंने अपनी कहानियों के कथानक और विचार को एक दूसरे के अनुकूल बनाया है और यह यथार्थ का पूर्ण निर्वाह करने में कहानियों को सफल बनाती है। निसंदेह कहा जा सकता है कि उनकी कहानियाँ भाषा के सौन्दर्य और शिल्प की दृष्टि से अभूतपूर्व उपलब्धियाँ हैं।

❖❖❖

उपसंहार

उपसंहार

वर्तमान समय भूमण्डलीकरण का समय है। मानव जीवन के हर पहलुओं पर भूमण्डलीकरण से उपजी परिस्थितियों का प्रभाव या अधिकार देखा जा सकता है। आज के मानव इन नवऔपनिवेशिक शक्तियों का गुलाम बन गया है। सबसे भयानक बात यह है कि इस गुलामी को समझने में हम असफल हो गये है और हो रहे हैं। एक रोज़गार के रूप में हमने इस गुलामी को स्वीकार किया गया है। क्योंकि नवऔपनिवेशिक शक्तियों ने बाह्य रूप से नहीं बौद्धिक रूप से हम पर अधिकार स्थापित किया है। अब हमारे दिल और दिमाग पर इन शक्तियाँ शासन करती हैं। समकालीन साहित्य अपने समय की विसंगतियों और अंतर्विरोधों पर अपना ध्यान रखता है। इसलिए समकालीन साहित्यकार नवऔपनिवेसिक शक्तियों के इन गुप्त तंत्रों के प्रति हमें सचेत करने की कोशिश करते हैं। समकालीन साहित्य के समकालीन परिदृश्य में सबसे अधिक चर्चित कहानीकार हैं ममता कालिया। ममता कालिया जी अपने साहित्य के द्वारा वर्तमान परिस्थितियों का खुलासा कर प्रतिरोध करने की आवश्यकता पर हमें सजग बनाती हैं।

ममता कालिया अपनी कहानियों में वर्तमान समय की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनीतिक पक्षों का विश्लेषण करती है। भूमण्डलीकरण का प्रभाव समाज के छोटे-छोटे पहलुओं में भी देखा जा सकता है। समाज की सबसे छोटी

इकाई परिवार भी इससे अलग नहीं है। भूमण्डलीकरण जनता के मन में ऐसी एक धारणा उत्पन्न करता है कि सबका आधार धन है। यह सोच हमारे पारिवारिक और मानवीय संबन्धों की नींव को हिलाती है। सब में अपने लाभ का नज़रिया रखने की आदत मानव में उत्पन्न हुई है। 'बीमारी' नामक कहानी की बहन, भाई की ऐसी मानसिकता से त्रस्त है। बीमारग्रस्त बहन के लिए खर्च किये गये रुपये वसूल करने के लिए तडपनेवाले भाई को इसमें देखा जा सकता है। 'पहली' नामक कहानी में बच्चे माँ-बाप के पास पैसे हैं तो उनसे बातें करते हैं, हँसते हैं। पैसे कम होने के साथ-साथ घर में खुशी भी खतम होने की भयानक स्थिति की ओर ममताजी हमारा ध्यान आकर्षित करती हैं। पैसे के इस हिसाब में घर से हमेशा उपेक्षा और तिरस्कार भोगने के लिए विवश बन गयी है बुजुर्ग पीढ़ी। 'उनका जाना', 'पण्डिताइन', 'इक्कीसवीं सदी', 'किताबों में कैद आदमी' आदि कहानियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं।

धन कमाने की भागदौड़ में रिश्तों, माँ-बाप, घर, गाँव सबको छोडकर जाने में आज की पीढ़ी तैयार है। लेकिन इस दौड़ में कभी-कभी उन्हें एक प्रकार के मानसिक द्वन्द्व का अनुभव करना पडता है। एक ओर अपना परिवार, गाँव और संस्कृति की पुकार है तो दूसरी ओर धन, विलासिता, कामयाबी का दबवा है। 'शहर-शहर की बात', 'लड़का हमेशा गर्मी लगता है', 'अपनी शहर की बत्तियाँ आदि कहानियों में आज के मानव के इस संघर्ष को ममताजी व्यक्त करती हैं।

अर्थ को केन्द्र में रखकर उत्पन्न आज की व्यवस्था समाज के संतुलन को बरबाद करती है। समाज के हर क्षेत्र में भ्रष्टाचार का बोलबाला है। इसका प्रमुख

कारण धन के प्रति मानव का लालच है। समाज के उच्च पद पर विराजमान, इज्जतदार लोग भी इससे अलग नहीं हैं, चाहे वह डॉक्टर हो, अध्यापक हो या साहित्यकार। समाज का पथ प्रदर्शन करनेवाले लोग भी अपने दायित्व को भूलकर धन कमाने के रास्ते के रूप में अपने कार्यक्षेत्र को मानते हैं। ये हमारे समाज को खतरनाक स्थिति में पहूँचाते हैं। सार्वजनिक क्षेत्र में आये हुए भ्रष्टाचार, अफसरों की दायित्वहीनता आदि ने नवसाम्राज्यवादी शक्तियों की जडों को यहाँ मज़बूत बनाया। 'दल्लि' नामक कहानी में इसका स्पष्ट चित्रण ममताजी पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करती हैं। देश की ऐसी स्थिति में पूरी प्रशासनिक व्यवस्था उत्तरदायी है। लेकिन जनता का प्रतिनिधित्व करनेवाले राजनीतिक नेता भी भ्रष्टाचार की इस चंगुल से मुक्त नहीं है।

अपना लाभ और सुख पर केन्द्रित मानसिकता वास्तव में उपभोगवादी संस्कृति का देन है। किसी को भी अपनी आवश्यकताओं के लिए उपभोग करने की मानसिकता आज की पीढ़ी में देखा जा सकता है। 'साक़ी', 'कौवे और कोलकत्ते' आदि कहानियों में ममताजी मानव की ऐसी मानसिकता का पर्दाफाश करती है। सबसे दुःखद बात यह है कि आज मानव इस उपभोगवादी मानसिकता के प्रति ज़रा भी गलती महसूस नहीं करता है। मानव अपनी गलती को समझे और सुधार करे, इसके लिए ममताजी ने अपनी कहानियों के लिए ऐसे संदर्भों को चुन लिया है कि जो हमारे अपने जीवन में या आसपास में घटित वैसा लगते हैं।

सदियों से शोषण की शिकार होने पर भी अपनी अस्मिता को पहचानकर आगे आनेवाली स्त्री जीवन को भी ममताजी ने अपनी कहानियों में प्रमुख स्थान

दिया है। आज की स्त्री अपनी अस्मिता के लिए आवाज़ उठाती है, लडती है और अपने पैरों में खडे होने की कोशिश भी करती है। लेकिन आज भी स्त्री को उपभोग की वस्तु के रूप में देखने की मानसिकता में काफी बदलाव तो नहीं आया है। 'आहार', 'थिएटर रोड के कौवे', 'जितना तुम्हारा हूँ' आदि कहानियों में ममताजी पुरुष की इस मानसिकता का चीरफाट करने की कोशिश करती हैं। नौकरी के क्षेत्र में, परिवार में और समाज में अपना अस्तित्व कायम रखने के लिए संघर्ष करनेवाली स्त्री की दस्तावेज़ हैं ममता कालिया की स्त्री जीवन से जुड़ी हुई कहानियाँ। ममताजी अपनी कहानियों के द्वारा स्त्री और उसकी अस्मिता संघर्ष के प्रति समाज का नज़रिया अर्थात् पुरुषवर्चस्ववादी मानसिकता बदलाने का प्रयास करती हैं। क्योंकि जब तक समाज स्त्री की अस्मिता संघर्ष को संपूर्ण मानवता का विषय नहीं मानता है तब तक स्त्री का यह संघर्ष पूर्ण रूप से सफल नहीं हो पाएगा।

अपने परिवेश के प्रति सजग एवं पैनी दृष्टि का दृष्टांत है ममताजी की कहानियों का कथानक। वर्तमान समय की परिस्थितियों को अनुकूल शैली में परिवर्तित कर पाठकों को सजग बनाने में ममताजी एकदम सफल है। ममताजी अपनी कहानियों में प्रतिरोधात्मक भाषा के साथ व्यंग्यात्मक भाषा का इस्तेमाल भी करती हैं, चाहे राजनीतिक क्षेत्र से जुडी हो या धार्मिक क्षेत्र से जुडी हो, अपनी दृष्टि पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने में वे हिचकती नहीं है।

कुलमिलाकर कहा जा सकता है कि ममता कालिया की कहानियाँ समय की धड़कनों और सामाजिक सरोकारों से ओतप्रोत कहानियाँ हैं। उन्होंने समकालीन

सच को ईमानदारी और प्रामाणिकता के साथ उतारने का साहस किया है। समकालीन समय के प्रायः सभी मुद्दों को जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, बाल विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाज़ारवाद, उपभोगवादी संस्कृति, राजनीति, भ्रष्टाचार, नगर-गाँव का संघर्ष, पर्यावरण आदि को पाठकों के सामने प्रस्तुत करने में और पाठकों को सजग बनाने में ममताजी सफल दीख पडती है।

❖❖❖

संदर्भ ग्रंथ सूची

आधार ग्रन्थ

1. ममता कालिया — ममता कालिया की कहानियाँ (खण्ड-I)
   वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज
   नई दिल्ली-110002
   द्वितीय संस्करण-2008

2. ममता कालिया — ममता कालिया की कहानियाँ (खण्ड-II)
   वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज
   नई दिल्ली-110002
   द्वितीय संस्करण-2008

3. ममता कालिया — काके दी हट्टी
   वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज
   नई दिल्ली-110002
   द्वितीय संस्करण-2008

4. ममता कालिया — ख़ुशक़िस्मत
   लोकभारती प्रकाशन
   इलाहाबाद-211001
   प्र.सं. 2010

5. ममता कालिया — थोडा सा प्रगतिशील
लोकभारती प्रकाशन
इलाहाबाद-211001
प्र.सं. 2014

6. ममता कालिया — प्रतिनिधि कहानियाँ
राजकमल प्रकाशन, 1-बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2014

सहायक ग्रन्थ

1. अरविन्द जैन — औरत होने की सज़ा
राजकमल प्रकाशन, 1-बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2006

2. अशोक कुमार गुप्ता — जयशंकर प्रसाद की कहानियों का शिल्पविधान
बेहरा प्रकाशन, जयपुर
प्र.सं. 1996

3. आशारानी ब्होरा — भारतीय नारी : दशा और दिशा
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. 1996

4. ओमप्रकाश वाल्मीकी — दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2001

5. ओमप्रकाश शर्मा — समकालीन महिला लेखन
पूजा प्रकाशन एवं खामा पब्लिशर्स, दिल्ली
प्र.सं. 2002

6. कमलेश्वर — नयी कहानी की भूमिका
शब्दकार प्रकाशन, नई दिल्ली
दूसरी आवृत्ति 2009

7. किशन पटनायक — तीसरी दुनिया के नज़रिए से लोकतंत्र
राजकमल प्रकाशन, 1-बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2004

8. किशन पटनायक — भारतीय राजनीति पर एक दृष्टि
राजकमल प्रकाशन, 1-बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2006

9. किशन पटनायक — विकल्पहीन नहीं है दुनिया
राजकमल प्रकाशन, 1-बी
नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2000

10. गिरीश मिश्र — बाज़ार और समाज : विविध प्रसंग
स्वराज प्रकाशन, 7/4 गुप्त लेन
अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली
प्र.सं. 2004

11. गोपाल राय — हिन्दी कहानी का इतिहास (1976-2000)
राजकमल प्रकाशन, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2011

12. चंद्रकांता — सूरज उगने तक
भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली
प्र.सं. 1999

13. जितेन्द्र वत्स — साठोत्तर हिन्दी कहानी और राजनीति
साहित्य रत्नाकर, कानपुर
प्र.सं. 1989

14. जितेन्द्र श्रीवास्तव — शोर के विरुद्ध सृजन
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2017

15. तसलीमा नसरीन — औरत के हक में
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1995

16. तसलीमा नसरीन — चारकन्या
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2009

17. तेजपाल चौधरी — हिंदी व्यंग्य बदलते प्रतिमान
पंचशील प्रकाशन, जयपुर
प्र.सं. 2003

18. नगेन्द्र — नई समीक्षा - नए संदर्भ
नेशनल पब्लिशिंग हाउस
नई दिल्ली
प्र.सं. 1970

19. नगेन्द्र — साहित्य का समाज शास्त्र
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. 1984

20. नगेन्द्र — हिंदी साहित्य का इतिहास
मयूर पेपरबैक्स, नोएडा
तैंतीसवीं संस्करण 2007

21. नरेन्द्र मोहन — आज की राजनीति और भ्रष्टाचार
राजपाल एण्ड संस, दिल्ली
प्र.सं. 1999

22. नरेन्द्र मोहन — समकालीन कहानी की पहचान
प्रवीण प्रकाशन, नई दिल्ली-110030
प्र.सं. 1978

23. नासिरा शर्मा	शामी कागज़ वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2009
24. नीलम कुलश्रेष्ठ	धर्म के आर-पार औरत किताबघर, दिल्ली प्र.सं. 2010
25. पी.वी. राजीत एवं महावीरप्रसाद भारद्वाज	वैश्वीकरण के युग में भारत राधा पब्लिकेशंस अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली-110002 दूसरा सं. 2013
26. पुष्पपाल सिंह	समकालीन कहानी युगबोध का संदर्भ नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली प्र.सं. 2011
27. पुष्पपाल सिंह	समकालीन कहानी नया परिप्रेक्ष्य हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़ प्र.सं. 1976
28. प्रह्लाद अग्रवाल	हिन्दी कहानी सातवें दशक राजकमल प्रकाशन 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2007

29.	प्रभा खेतान	उपनिवेश में स्त्री राजकमल प्रकाशन, 1-बी, सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002 दूसरी आवृत्ति 2009
30.	प्रभा खेतान	बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2004
31.	प्रभा खेतान	भूमण्डलीकरण : ब्रांड, संस्कृति और राष्ट्र सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली प्र.सं. 2007
32.	प्रेमचंद	साहित्य का उद्देश्य एस.के. पब्लिशर्स, नई दिल्ली प्र.सं. 1988
33.	डॉ. प्रेमीला के.पी.	औरत की अभिव्यक्ति एवं आदमी का अधिकार कुंजबिहारी पचौरी प्रकाशन, मथुरा प्र.सं. 2004
34.	मधुरेश	हिंदी कहानी का विकास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद पंचम सं. 2008
35.	ममता कालिया	एक पत्नी के नोट्स किताबघर, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 1997

36. ममता कालिया — कितने प्रश्न करने
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2008

37. ममता कालिया — खाँटी घरेलू औरत
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2004

38. ममता कालिया — भविष्य का स्त्री विमर्श
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2015

39. महीप सिंह — सचेतन कहानी : रचना और विधान
प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1994

40. महेन्द्र चतुर्वेदी — हिंदी उपन्यास : एक सर्वेक्षण
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली
प्र.सं. 1962

41. माला बैद — स्त्री गाथा
प्रतिध्वनि प्रकाशन, कलकत्ता
प्र.सं. 2007

42. मैनेजर पाण्डेय — आलोचना की सामाजिकता
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2005

43. मृदुला गर्ग — मात्र देह नहीं है औरत
सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2007

44. मृदुला गर्ग — यानी की एक बात थी
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-1100051
प्र.सं. 1990

45. मृणाल पाण्डे — स्त्री देश की राजनीति से देह की राजनीति तक
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली-110051
प्र.सं. 1990

46. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी — हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 1981

47. मंगलदेव शास्त्री — भारतीय संस्कृति का विकास
नई दिल्ली
प्र.सं. 2003

48. यशदेव शल्य — संस्कृति : मानव कर्तव्य की व्याख्या
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 2010

49. डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय — स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास
राजपाल एण्ड संस प्रकाशन, दिल्ली
प्रकाशन वर्ष 2015

50. रमणिका गुप्ता — आदिवासी साहित्य यात्रा
राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

51. रमणिका गुप्ता — स्त्री विमर्श कलम और कुदाल के बहाने
शिल्पायन, 1029, लेन न. 1
बैस्ट गोरखपार्क, शाहदरा
दिल्ली-110032
प्र.सं. 2004

52. राकेश वत्स — सक्रिय कहानी की भूमिका
अभिषेक पब्लिकेशंस, चण्डीगढ़
प्र.सं. 1979

53. राजकिशोर — उदारीकरण की राजनीति
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1998

54. राजकिशोर — एक अहिन्दु का घोषणापत्र
संस्थान प्रकाशन
दरियागंज, नई दिल्ली
प्रकाशन वर्ष 2013

55. राम पुनियानी — धर्म सत्ता और हिंसा
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
प्र.सं. 2016

56. रामचंद्र शुक्ल — हिंदी साहित्य का इतिहास
विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर-12
प्रकाशन वर्ष 2005

57. रामधारी सिंह दिनकर — आधुनिक बोध
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 1973

58. रामदरश मिश्र — कितने बजे है
प्रभात प्रकाशन, आसफ अली रोड
नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1982

59. विनय विश्वास — आज की कविता
राजकमल प्रकाशन, 1-बी
नेताजी सुभाष मार्ग
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2009

60. विमला लाल — वृद्धावस्था का सच
कल्याणी शिक्षा परिषद्, नई दिल्ली
प्र.सं. 2008

61. विष्णु प्रभाकर — जन, समाज और संस्कृति
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 1981

62.	विश्वनाथ प्रसाद	बीसवीं सदी का हिंदी साहित्य भारतीय ज्ञानमण्डल, दिल्ली तीसरा सं. 2012
63.	वेदप्रकाश अमिताभ	हिंदी कहानी का समकालीन परिदृश्य जवहर पुस्तकालय, मथुरा प्र.सं. 2005
64.	शरणकुमार लिंबाले	दलित साहित्य वेदना और विद्रोह वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2011
65.	डॉ. शिवनारायण	वृद्धजीवन की कहानियाँ साहित्य भारती, दिल्ली प्र.सं. 2012
66.	शैलेन्द्र सागर और रजनी गुप्त	आज़ाद औरत : कितनी आज़ाद सामयिक प्रकाशन, दिल्ली प्र.सं. 2005
67.	शंभूनाथ	संस्कृति की उत्तरकथा वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2000
68.	श्यामचरण दुबे	समय और संस्कृति वाणी प्रकाशन, 21-ए दरियागंज, नई दिल्ली-110002 प्र.सं. 2016

69. श्यामसुन्दर दास साहित्यालोचन
इंडिया प्रेस लिमिटेड, प्रयाग
प्रकाशन वर्ष 2006

70. सीमोन द बोउवार स्त्री उपेक्षिता
हिंदी पॉकेट बुक्स, नई दिल्ली
प्र.सं. 1998

71. सुदर्शन नारंग महानगर की कहानियों
पराग प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 1976

72. सूरज पालीवाल इक्कीसवीं सदी का पहला दशक और हिन्दी कहानी
वाणी प्रकाशन, 21-ए
दरियागंज, नई दिल्ली-110002
प्र.सं. 2012

73. सूरज पालीवाल हिन्दी में भूमण्डलीकरण का प्रभाव और प्रतिरोध
शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली
प्र.सं. 2008

74. संजीव सर्कस
मेधा पब्लिशिंग हाउस
दिल्ली-110032
प्र.सं. 2004

75. संतोषकुमार चतुर्वेदी भारतीय संस्कृति
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 2011

76. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी — विचार और वितर्क
साहित्य भवन लि., इलाहाबाद
प्र.सं. 1954

77. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी — साहित्य का सहचर
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
प्र.सं. 1982

78. हेतु भारद्वाज — हिन्दी कथा साहित्य का इतिहास
पंचशील प्रकाशन, जयपुर-302003
प्र.सं. 2005

79. ईस्टर — ए फ्रेम वर्क फोर पोलिटिकल एनॉलइसिस
युनिव आफ चिकागे
1949

कोशग्रन्थ

1.	भार्गव आदर्श हिंदी शब्द	कोश
2.	सं. महादेवशास्त्री जोशी	भारतीय संस्कृति कोश
3.	सं. हरिकृष्ण रावत	समाजशास्त्र विश्वकोश
4.	धीरेन्द्र वर्मा	हिंदी साहित्य कोश
5.	रामचंद्र वर्मा	प्रामाणिक हिंदी कोश

पत्रिकाएँ

आलोचना	फरवरी-मार्च 2003
आलोचना	अक्तूबर-दिसंबर 2013
धर्मयुग	मई 1967

सारिका	फरवरी 1975
साक्षात्कार	मार्च 2005
ज्योत्सना	दिसंबर 1976
हंस	जनवरी 2002
हंस	सितंबर 2009
हंस	मई 2015
नया ज्ञानोदय	सितंबर 2008
नया ज्ञानोदय	दिसंबर 2017
वर्तमान साहित्य	मार्च 2011
समकालीन भारतीय साहित्य	जनुवरी 2016
वर्तमान साहित्य	फरवरी 2017
संग्रथन	जुलाई 2012
संग्रथन	जुलाई 2015

❖❖❖

परिशिष्ट

शोध छात्रा के प्रकाशित शोध लेख

1. सं. डॉ. पी. सत्ति रेड्डी - साहित्य सेतु, अप्रैल-जून 2016 ISSN No. 2348-6163 (समकालीन हिंदी कहानी में वृद्ध जीवन का यथार्थ) पृ. 21
2. सं. डॉ. के. वनजा - अनुशीलन, जुलाई 2016, ISSN No. 2249-2844 (ममता कालिया की कहानियों में स्त्री प्रतिरोध की भाषा) पृ. 169

प्रपत्र प्रस्तुति

1. समकालीन हिन्दी कहानी में दलित विद्रोह - कुरियाकोस एलियास कॉलेज, मान्नानम्, कोट्टयम - 20 दिसंबर 2016
2. बाज़ार के बीच बाज़ार के खिलाफ आवाज़ : ममता कालिया की कहानियों में - एम.इ.एस. कॉलेज, मम्पाट, मलाप्पुरम - 9, 10 & 11 जनुवरी 2018